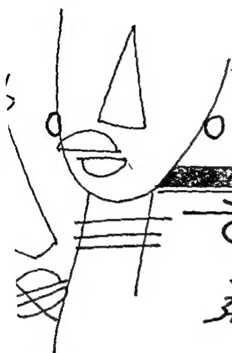
शिक्षक दिवस
1982

कौमी एकता की तलाश
और
अन्य रचनाएँ

शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए



चिन्मय प्रकाशन



कौमी एकता की तलाश और अन्य रचनाएं

सं० शिवरतन थानवी

शिक्षक दिवस के अवसर पर

प्रकाशक : शिक्षा विभाग राजस्थान, बीकानेर के लिए चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर / मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 / प्रथम संस्करण : 5 सितम्बर, 1982 / आवरण : पंकज / मूल्य : नौ रुपये बीस पैसे

KOMLEKTA KI TALASH AUR ANYA RACHNAIN
Edited by Shiv Ratan Thanvi Rs 9.20

आमुख

शिक्षक [illegible] ने शिक्षण-कार्य को यह गुण की [illegible] रोचक बनाना है और इसके लिए नव-उन्मेषकारी उनकी बुद्धि सदैव क्रियाशील रहती है। अक्सर देखा गया है कि अच्छे शिक्षकों की मानसिक चिंतन-प्रक्रिया कक्षा में पढ़ाते समय विषयवस्तु के अनुरूप शिक्षण-विधियाँ स्वतः इजाद कर लेती है। इसी से उनकी रचनाशीलता का सबूत मिलता है।

यही [illegible] शिक्षक [illegible] उसमें शिक्षकों का कृतित्व—उनका योगदान अवश्यंभावी मिलेगा। शिक्षकों ने शाश्वत मूल्यों की अमर रचनाएँ दी हैं। बल्कि, कहना चाहिए कि बड़े-से-बड़े साहित्यकार साहित्यकार बाद में हैं, शिक्षक पहले, और इसी स्तर पर उनकी रचनाएँ जन-शिक्षण का ही काम करती हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जब साहित्यकार शिक्षण के कार्य में जुट सकता है तो शिक्षक साहित्य से निरंतर जुड़ा हुआ क्यों न रहे!

कदाचित यही विचार सामने रखते हुए शिक्षा विभाग ने राज्य के सृजनधर्मी शिक्षकों की रचनाएँ हर साल प्रकाशित करने का एक नया प्रयोग सन् 1967 में किया था। मुझे खुशी है कि पिछले सोलह वर्षों से प्रकाशन की यह योजना बिना रुके बराबर चल रही है।

गत वर्ष तक राज्य के शिक्षकों की [illegible] पुस्तकें हम प्रकाशित कर चुके हैं, और उनमें साहित्य की लगभग सभी विधाएँ समाहित हैं—कविता, [illegible]

गुशांत दिये है। राज्य की एकमात्र इस विशिष्ट योजना पर हमें गर्व है।

इस वर्ष के पांच प्रकाशन पाठकों एवं विद्वज्जनों के हाथों में सौंपते हुए मुझे आशा बंधती है कि पिछले वर्षों में जो नये लेखक प्रकाश में आये हैं, उनकी रचनाएँ उद्देश्यपूर्ण एवं रोचक होंगी। पुस्तकें हैं—

1. अपना अपना आकाश (कविता) : सम्पादक : जगदीश चतुर्वेदी
2. धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे (कहानी) सम्पादक : मृणाल पाण्डे
3. कौमी एकता की तलाश और अन्य रचनाएँ (गद्य विविधा) सम्पादक : शिवरतन थानवी
4. कूपळ (राजस्थानी विविधा) सम्पादक : कल्याणसिंह शेखावत
5. फूलों के ये रंग (बाल साहित्य) लक्ष्मी चन्द्र गुप्त

इस अवसर पर 'कौमी एकता की तलाश और अन्य रचनाएँ' पुस्तक के सम्पादन हेतु मैं श्री शिवरतन थानवी के प्रति, इसे समय पर मुद्रित कराने के लिए प्रकाशक के प्रति, समय पर मुद्रित करने के लिए मुद्रक के प्रति तथा रचनाएँ भेजने के लिए शिक्षक-साहित्यकारों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

आशा है इन पुस्तकों की मूल्यवत्ता की पहचान होगी।

—हरप्रसाद अग्रवाल
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर।

शिक्षकों का अपना संसार

हम जब लिखते हैं तब एक तरह से अपने अनुभव को व्याख्यायित करते हैं। व्याख्यायित करना भी एक तरह से देखना है। कलम के माध्यम से सम्पूर्ण प्रतीति का प्रयास करना है। प्रत्यय का कारक बनना है। जो हमें प्रतीति हुई उसी को हम तक पहुँचाना है। ज्ञान प्राप्त करना है।

इस संग्रह में शिक्षक लेखकों की विविध रचनाएँ संकलित हैं। करीब तीन सौ रचनाओं में से इनका चयन किया गया है। विषय वस्तु और शैली, रूप और तत्व, दोनों दृष्टियों से इनका चयन हुआ है। किसी में विषय वस्तु प्रबल रही है और किसी में शैली प्रबल रही है। कुछ ऐसी भी हैं जिनमें दोनों प्रबल रहे हैं। ऐसी एक भी रचना नहीं है जिसका कथ्य कमजोर हो। कम-से-कम मेरी कोशिश तो यही रही है।

मुझे यह देख कर बहुत प्रसन्नता हुई कि शिक्षक अपने शैक्षिक परिवेश के प्रति भी सजग होने लगे हैं। शिक्षा-जगत को गहराई से देखने की प्रवृत्ति विकसित हो रही है। कक्षा और विद्यालय सृजनात्मक रचनाओं के प्रेरक बनने लगे हैं। अभी इस दिशा में हमें और काफी आगे जाना है।

सामाजिक दायित्व के प्रति सजग शिक्षकों की रचनाएँ भी इस संग्रह में आ सकी [illegible] गा।

[illegible]

इन रचनाओं में संस्मरण हैं, यात्रा वर्णन हैं, एकांकी है, और निबंध तथा रम्य रचनाएँ भी हैं। एकाध ललित निबंध भी है। रम्य रचना और ललित निबंध का भेद बहुत बारीक होता है। दोनों का अपना अलग-अलग महत्व होता है। दोनों की सीमा-रेखाएँ एक-दूसरे को छूती-सी चलती हैं। कथ्य की आवश्यकता और

का मार्जन भी आवश्यक है। मुझे विश्वास है इन लेखकों से प्रेरणा लेकर अन्य लेखक भी अपनी अभिव्यंजना शक्ति का जरूर मार्जन करेंगे। लिखेंगे और लिखने का अभ्यास करेंगे। अभ्यास या साधना बिना अभिव्यक्ति की शक्ति अर्जित नहीं हो सकती। जिन लेखकों की रचनाएँ यहाँ प्रकाशित हो रही हैं उनमें से कई लेखक विविध प्रकाशनों में पहले भी स्थान पा चुके हैं और मुझे उम्मीद है वे आगे भी अपनी साधना जारी रखेंगे, उनकी कलम से उत्कृष्ट रचनाएँ सामने आयेंगी, उनके लेखन में और अधिक निखार आयेगा। भिन्न-भिन्न सम्पादकों द्वारा समादृत होने से उनका आत्म-विश्वास जरूर समृद्ध हुआ होगा। भिन्न-भिन्न दृष्टियों के सम्पादकों ने उनकी रचनाओं का बार-बार चयन किया है तो यह इस तथ्य का प्रमाण है कि उनमें सर्वग्राही लेखन क्षमता है।

सेवाई सिंह देसावत ने "युवकों से दिल और रोशनी आस्थाएँ", निबंध में कहा है कि "आज हर व्यक्ति, सब के सब अपने कर्म के प्रति भी उन्मुखित होता जा रहा है। उनका अपने कर्म से कोई लगाव, कोई आत्मीय सरोकार नहीं रहा।" इस पर आपका भी ध्यान गया होगा, मेरा भी गया है। आपने कहा नहीं, उन्होंने कहा है। उन्होंने कहा है, "सभी नाजुक चीजें रास्ता-रफ्तार हमारी पकड़ में छूटती जा रही हैं... कर्म के प्रति भावनात्मक लगाव के विपरीत उनमें एक [illegible] नैतिकता पनप रही है।" फल यह हुआ है कि आज "आदमी की दिलें सवेरे प्रगल्भ करने की अपेक्षा बेजान और बोझिल बना पड़े हैं।" यदि हम भावना और अनुभूति से सम्पन्न हो जायें तो इन दिलों को बेजान और बोझिल बनाने की बजाय जानदार और जोशीले बना सकते हैं। [illegible] परिवेश को बदलने [illegible] इसमें कमी और [illegible] हो जाती है।

[illegible] दृष्टिकोण पर प्रश्नचिह्न लगाया है [illegible]

[illegible]

हमें दर्पण दिखाया है। भारत में अनुवाद भी होते हैं तो अंग्रेजी या अमेरिकी कृतियों के, हम देखते भी हैं तो बार-बार इंग्लैंड या अमेरिका की ओर। अंग्रेजी आंग्ल-भाषी देशों से आगे हमारी नजर नहीं जाती है। अंग्रेजी की दासता से मुक्त होने के लिए अफ्रीकी, योरोपीय, एशियाई भाषाओं के अनुवाद होने आवश्यक हैं, अपने ही देश की भाषाओं—बंगाली, उड़िया, तमिल, मलयालम आदि के भी अनुवाद होने आवश्यक हैं। भले अंग्रेजी के माध्यम से ही सही (प्रारम्भ में) अन्य भाषाओं, अन्य देशों और देश के अन्य अंचलों की अनुभूति संपदा का दर्शन लाभ हुए बिना हमारा ज्ञान अधूरा रहेगा। भिन्न-भिन्न भाषाओं और संस्कृतियों का अन्तरावलम्बन एक-दूसरे को समृद्ध करता है, दृष्टि की संकीर्णता मिटाता है और मनुष्य-मनुष्य को नजदीक लाता है।

हमारा देश आपसी फूट के कारण इतिहास में बहुत हानि उठाता रहा है और आज भी हमारे बीच यदि कोई फूट के बीज डाल देता है तो उस बीज को धारण करने वाली भूमि का अभाव नहीं रहता है। हमें फूट के बीजों का पोषण करने को तैयार मिलते हैं। राजस्थान ने गत वर्ष कौमी एकता की भाव-भूमि तैयार करने का विशेष प्रयत्न किया था। मुख्यमंत्री के "बीस संकल्प" नाम के कार्यक्रम में "कौमी एकता" को अलग विशेष स्थान दिया था। कठपुतलियों के माध्यम से तथा रंगमंच के माध्यम से "कौमी एकता" संबंधी कार्यक्रमों के लिए एक निश्चित राशि भी अलग रखी गयी थी। सरकारी तंत्र से युवक नहीं जुड़ पाने के कारण इस राशि का भले पूरा उपयोग न हुआ हो, भले परम्परागत ढंग, कठपुतली वालों या संगीत नाटक वालों का उपयोग न किया जा सका हो, किन्तु कुछ वातावरण तैयार हुआ, कुछ कार्य और मंच बने और कुछ लेखक भी कौमी एकता पर लिखने को जरूर प्रेरित हुए। इस संदर्भ में लिखे गए नाटक, निबंध, रचनाएं जो समय-समय प्राप्त हुए थे, उनमें से कुछ को यहाँ दिया जा रहा है।

पुस्तकें कोई राष्ट्रीय परिवर्तन [illegible]

किया है। इसी रचना के नाम पर पुस्तक का नाम रखना उपयुक्त प्रतीत हुआ। इसलिए नहीं कि यह पुस्तक की सर्वश्रेष्ठ रचना है बल्कि इसलिए कि एक तो यह श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है और दूसरे इसलिए कि "कौमी एकता" विषय पर लिखी रचनाओं में भी यह श्रेष्ठ है। इसका शीर्षक हमें कौमी एकता के प्रयत्नों को आगे बढ़ाने की दिशा में प्रेरित करता है। वह बताता है कि हमारे वचन और कर्म में बड़ा अंतर है। इस अंतर को मिटाकर वास्तव में जब तक निष्ठा से, प्रयत्न नहीं होंगे तब तक सही कौमी एकता या राष्ट्रीय एकता नहीं आ सकेगी।

अंत में मैं उन लेखकों का विशेष उल्लेख करना उचित समझता हूं जिन्होंने अपने स्वयं के व्यावसायिक जीवन से जुड़े जगत की अनुभूतियों पर आधारित रचनाएं भी लिखी हैं। **मोहन सिंह** ने परीक्षा कार्य की कठिनाई को लिया है, **अर्जुन कावड़िया** ने विद्यालय के उद्योग या कार्यानुभव कालांश का चित्रण किया है, **बद्रीलाल शर्मा** ने शिक्षार्थी के प्रति शिक्षक के नासमझीपूर्ण व्यवहार का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है, **निशांत** ने ग्राम्यांचलों विद्यालयों की पृष्ठभूमि में छिपे आर्थिक परिवेश को रेखांकित किया है, **रामनिवास सोनी** ने किसी प्रधानाध्यापक के भुलक्कड़पन के कुछ पहलू उकेरे हैं तथा **सत्यपाल सिंह** ने शिक्षकों की धूम्रपान की कुटेव पर कटाक्ष किया है। ये सभी रचनाएं शिक्षकों के लिए जितनी पठनीय हैं उतनी ही अन्य पाठकों के लिए भी। शिक्षक के मनोजगत के परिचय की दृष्टि से भी और सरस साहित्य के अंग होने के नाते भी। उम्मीद करनी चाहिए कि शिक्षक लेखक अपनी रचना शैली का विकास करने के साथ-साथ शैक्षिक समझ के आयाम का भी विस्तार करेंगे। शिक्षा जगत की राजनीति को, बालक के मानस को, अभिभावक की कठिनाइयों को और शैक्षिक प्रक्रिया के पीछे छिपे एक विराट सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य को समझना भी उनके लिए बहुत जरूरी है। निबंध हो, नाटक हो, संस्मरण हो या अन्य रम्य रचना हो, साहित्य, कला, समाज, अर्थ, राजनीति, मनोविज्ञान और उनकी अपनी शिक्षा जगत की व्यावसायिक बारीकियों को जब तक वे गहराई से नहीं समझेंगे तब तक रचनाओं में उनका अपना संसार पर्याप्त गहराई में प्रतिबिम्बित कभी नहीं हो सकेगा। शिक्षक की रचना में शिक्षक का अपना संसार बोलना बहुत जरूरी है।

कुंदनसिंह सजल, कमर मेवाड़ी, अर्जुन 'अरविंद' और **अब्दुल मलिक खान** सुपरिचित नाम हैं। **सत्या भार्गव, भगवतीप्रसाद गौतम** और **रामदत्त शर्मा** की लेखनी भी सशक्त है। मुझे विश्वास है इनकी रचनाएं आप जरूर पसंद करेंगे।

[illegible] भवन, [illegible] बोर्ड के सामने,
बीकानेर

(शिवरतन थानवी)

अनुक्रम

निबंध :

चुकता संवेदन रीतती आस्थाएँ	सवाई सिंह शेखावत	1
अध्यापक फरिश्ता नहीं इंसान है	रूपनारायण काबरा	4
गौरय्या	विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी	6
अमरीकी कविता के कुछ छोटे	श्यामलाल कौशिक	9
गोभक्त स्व० गांधीजी—इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ	रामनिवास सोनी	16
साहित्य शिक्षण और नाबोकोव	सवाई सिंह शेखावत	20
आज परीक्षा परीक्षार्थी की या परिवीक्षक की, शिक्षार्थी की या शिक्षक की ?	मोहन सिंह	24
भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता	चुन्नीलाल भट्ट	27
पवाड़ा साहित्य	चन्द्रदान चारण	30
लुई ब्रेल : ब्रेल लिपि का आविष्कर्ता	बसंतीलाल गुप्ता	[illegible]
हमारी कौमी एकता	[illegible]	[illegible]
राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका	[illegible]	[illegible]

ललित निबंध :

ममायत्ते तु पौरुषम्—पौरुष के प्रतीक ये विकलांग — गौरीशंकर 'आर्य' — 56

विचार कण :

कालजयी — श्रीकृष्ण विश्नोई — 63

एकांकी :

सवाल उठता है — आनन्द कुरैशी — 66
खामोश — आनन्द कुरैशी — 70
प्रजा का भाग्य — कुंदन सिंह सजल — 73
खरच — मोगजी पाटीदार — 89
हायज्यो — जगदीश नागर — 151

संस्मरण :

बेंत की कुर्सियाँ — अर्जुन कावडिया — 112
मांनाव, थे ही तो किया छाक — बद्रीलाल शर्मा — 115
सूर्यास्त — कमर मेवाड़ी — 117
अलग-थलग पड़े लोग — निशांत — 121
पशुपतिनाथ के देश में — रूपनारायण काबरा — 125

रम्य रचना :

कलम, कागज और किताब — भगवती प्रसाद गौतम — 81
लाला मनगुणदास का संगीत-प्रेम — अर्जुन 'अरविंद' — 85
घाइये मगर होशियारी से — अब्दुल मलिक खान — 130
कोरा निराला — रामदत्त शर्मा — 134
रूठे रूठे पिया, मनाऊँ कैसे ? — सत्या भार्गव — 137

एक भुलक्कड़ प्रधानाध्यापक	रामनिवास सोनी	139
मजाक, पानी के बिल का	शिवकुमार शर्मा	142
बात एक शाम की	सत्यपाल सिंह	148
कौमी एकता की तलाश	भगवतीलाल व्यास	159

चुकता संवेदन रीतती आस्थाएं

सवाई सिंह शेखावत

शब्द का जन्म मनुष्य की अपनी पहचान के क्रम में, दूसरों के साथ अपनी संवेदना की साझेदारी के क्रम में हुआ था। शब्द हमारी आत्मा का आइना, हमारी आत्मीय आस्था का सबसे ठोस और मुखर गवाह रहा है।

लेकिन लगता है—आज शब्द अपनी सार्थकता खो रहा है। अपनी सबल भूमिका से मुकर रहा है। शब्द के पीछे की तपिश, अनिवार्य ऊर्जा-ऊष्मा छीज रही है। आत्मीय-अपनापे भरा वह गुनगुना अहसास ठंडा पड़ रहा है, जिसके बिना बड़े से बड़ा शब्द अपना अर्थ, अपनी इयत्ता खो देता है। और वह खाली-पोली शब्द रह जाता है—निर्जीव, खोखला।

शब्द की सम्पूर्ण शक्ति वस्तुतः उसके पीछे निहित संवेदन में है। यदि यह चुकता है, तो यह शब्द के मानवीय सरोकार के खिलाफ जाने जैसी बात होगी क्योंकि शब्द की चुकती संवेदना, अततः रीतती-चुकती मानवीय आस्था की द्योतक है। जो सम्पूर्ण स्तरों पर ठंडा और निर्जीव बना देने के बाद, मनुष्य को एक क्रूर और निर्मम परिणति की जद में धकेल देती है। जहां शनैः-शनैः सब कुछ निःशेष हो जाता है। क्या हम मौन-मूक भाव से उस क्रूर अभिशप्त आमंत्रण की अनिवार्य नियति को स्वीकार रहे हैं?

"हरी दूब पर दो पल" जैसा नर्म-नाजुक कांसेप्ट आज एक दुर्लभ वस्तु बन कर रह गया है। लगता है, नर्म-नाजुक चीजें रपता-रपता हमारी पकड़ से छूटती चली जा रही हैं। दूर...बहुत दूर। जिन्हें बड़े प्रयास के बाद भी आज लौटा सकना हमारे लिए दूभर ही नहीं, असंभव जान पड़ता है।

पहले लगता था, मात्र बोला गया शब्द ही अपना रेस्पोंस खो रहा है। लेकिन आज स्थिति साफ है—लिखे शब्द की भी यही दुर्भाग्यपूर्ण परिणति है। लिखा शब्द हमें किस सीमा तक छूता और उद्वेलित करता है, यह मुद्दा विचारणीय है!

बड़े से बड़ा हृदय विदारक समाचार हमारी आंखों तले से यों गुजरता है,

गोया यह सब तो होता रहता है। ऐसा तो चलता है। चीजों और घटनाओं के प्रति हमारा यह ठंडा अहसास अंततः चीजों से जुड़ी हमारी समूची गंभीरता को आहत करता है। हम चीजों को जिम्मेदार तरीके से ले ही नहीं पाते। एक उपेक्षा, अनवरत टालने का भाव, दर गुजर करने का रवैया हम में पनपने लगता है।

घटनाएँ हमारे इर्द-गिर्द घटती है। अपने प्रखरतम स्वरूप में घटती है। लेकिन हमारी दृष्टि मे उनकी कोई अहमियत नहीं। बड़े से बड़ा हादसा हममें से नहीं, हमारे सिरो पर से गुजरता है। वह कोई चुभन, कोई खरोंच हमारी स्मृति सतहों पर नहीं छोड़ पाता। हम में कुछ हिलता-डोलता नहीं। हम अडोल बने रहते है और अबोल भी।

इसी अनिष्टकारी दुष्परिणति के फलस्वरूप आज हर व्यक्ति शब्द के साथ-साथ कर्म के स्तर पर भी उन्मूलित होता जा रहा है। उसका अपने कर्म से कोई लगाव, कोई आत्मीय सरोकार नहीं रहा। बस करना भर है, इसलिए किये जा रहा है। करने-धरने का कोई आत्मीय औचित्य नहीं—जो कभी आदमी होने की अनिवार्य शर्त हुआ करता था। कर्म के स्तर पर की यहस रोकारहीनता आदमी के कोणो को गड़बड़ा रही है। कर्म के प्रति भावात्मक लगाव के विपरीत उसमें एक अंध यांत्रिकता पनप रही है।

यही चीज एक रेडिकल दृष्टि और 'रेडीमेड संस्कृति' का निर्माण कर रही है। जहाँ हर आदमी एक अजीब उतावलेपन के बीच बनी-बनायी चीजों को येहिचक भाव से ओढ़-अपना रहा है। किसी आत्म-विश्लेषण और आत्म-विवेचन की आवश्यकता दरपेश नहीं। सब कर रहे है, इसलिए हम भी कर रहे हैं। इसलिए हम भी करेंगे।' और इस अंधी दौड़ मे आदमी की अनुभव शक्ति का लगातार क्षय हो रहा है। समस्त मानवीय क्रियाएं और चिंतन एक यांत्रिक ढांचे मे ढलते जान पड़ते है। यत्रबद्ध, इकहरे और इकरंगे।

सवेदना के इसी सकट के रहते-होते आदमी-आदमी के बीच की गुनगुनी गरमाहट चुक रही है। फलत आज आदमी को रिश्ते संबल प्रदान करने की अपेक्षा बेजान और बोझिल जान पड़ते है। वह जीते-जागते मानवीय सरोकारों मे युक्त रिश्तों को वस्तु के रूप मे देखने लेने लगा है। वस्तु, जिसे हमेशा उपयोगिता के तराजू मे तोला जाता है। जैसे ही उपयोगिता का गणित गड़बड़ाने लगता है, आदमी रिश्ते को इस तरह छोड़ देने के लिए बेताब हो जाता है, गोया कोई पुराना कोट या स्वेटर उतार कर फेंक रहा हो। जहाँ तजने और अलगाने की कोई पीड़ा नहीं सालती। इसके बरक्स मुक्ति पा लेने की ताजगी भरा अहसास ही महसूस होता है।

यही चीज कालातर मे उस (घोर) वैयक्तिकता को जन्म देती है, जो आदमी

के अलग-अलग द्वीपों का निर्माण करती है। जहाँ आदमी-आदमी के बीच किसी तरह की साझेदारी और शिरकत की बात सोची ही नहीं जा सकती। जहाँ हर आदमी अपने ही खोल में सिमटा है। सिमटे रहने को विवश है, अभिशप्त है। इस निर्मम अमानवीय स्थिति के कारण न केवल अलग-अलग द्वीप और दायरों का निर्माण होता है, बल्कि स्वयं मानवीय आत्मा में भी गहरी दरार पड़ जाती है। जहाँ जोड़ने और जुड़ने की हर कोशिश नाकाम और नाकारा हो जाती है। जहाँ हर आदमी आशंकित है, अकेला है, अभिशप्त है।

संवेदना के इस गहराते संकट और उसको तरह देने वाली शक्तियों को रेखांकित करते हुए हम शिक्षकों को सोचना होगा, कि मानवीय संवेदना का वाहक शब्द अपनी सशक्त भूमिका में क्यों मुकर रहा है? क्योंकि सदियों से संचित ज्ञान को भावी पीढ़ियों को सौंपने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी अपने सिर पर ओढ़ने वाला शिक्षक, मात्र शब्द के अर्थ का सम्प्रेषक ही नहीं, उसके पीछे निहित सम्पूर्ण प्रखर अहसास का सक्षम वाहक भी है। □

अध्यापक फरिश्ता नहीं इन्सान है

रूपनारायण काबरा

चीन ने कई परमाणु विस्फोट किये पर विश्व में कही कोई विरोध नही, आलोचना नही पर भारत के परमाणु विस्फोट पर तो सारी दुनिया ही बौखला उठी थी, और लोग कहने लगे थे, "भारत को ऐसा नही करना चाहिए था।" ठीक यही हालत हिंदुस्तान मे अध्यापक की है। तभी तो उससे यह आशा की जाती है कि वह अपने पर विशेष संयम रखे। खाने, पीने, पहिनने पर नियंत्रण रखे। "वे कत्ल कर दें चर्चा नही होती, हमने नजर भी उठा ली तो आसमान सिर पर उठा लिया।" यदि मास्टरजी ने पान खा लिया तो लोग कहते है, "मास्टरजी, आप पान खाते हैं, तो भला लडके क्यों नहीं खायेंगे?" और अगर वे बेल-बौटम पहिन लें या लम्बे बाल रख लें तो, "अध्यापक को यह शोभा नही देता।" यह कह उठेंगे। यह सब नियमन, मर्यादा कालेज के प्रवक्ता के लिये न हो कर विशेषरूप से स्कूल के मास्टर के लिये है। "राष्ट्रनिर्माता", "नीव का पत्थर" वही तो है! गोया अध्यापक क्या हुये, इन्सान ही नही रहे, फरिश्ता हो गये। कोई तमन्ना नही, कोई इच्छा-आकाक्षा, शौक कुछ भी नही। सिनेमा देखो तो बुरा, पान खाओ, चाय पीओ तो बुरा। राष्ट्रनिर्माता (!) के हर कदम पर हजारो निगाहे हैं। पर क्या किसी ने यह भी सोचा है कि राष्ट्रनिर्माता से जो अपेक्षायें है उनके वह योग्य है कि नहीं? उतना योग्य बने रहने के साधन उनके पास है कि नही? उतने सक्षम एवं सशक्त व्यक्तित्व इस व्यवसाय मे आते हैं कि नही? उनको समाज से सम्मान एव अच्छे जीवन यापन की सुविधाएं उपलब्ध है कि नही? हाँ, जब कभी अवसर आता है तो बडे-बडे लोग उद्बोधन कर देते हैं, "अध्यापक राष्ट्र निर्माता है उसी के हाथों में देश का भविष्य है। (जबकि उसके हाथों मे यह भी नही कि क्या पढाना है? क्यों पढाना है? कब पढाना है? कैसे पढाना है? वह तो पाठ्यक्रम के इर्द-गिर्द, घूमता घटी से बंधा कितना बेबस है!) उसका महत्व महान है। यह सच है कि हम उन्हे समुचित वेतन नही दे पाते। यह हमारी मजबूरी है, देश

की कमजोर आर्थिक स्थिति है, इत्यादि…।" वह विचारा अध्यापक अपनी प्रशसा सुनकर "त्याग" की दिशा मे प्रवृत्त होने में ही अपना कल्याण समझता है। अध्यापक की ट्यूशन लोगों को अखरती है और लोग विशेषत स्वय शिक्षा विभाग वाले ही ट्यूशन को शिक्षा का नासूर कहते है तो कोई कैंसर।

हिन्दुस्तानी फिल्मी हीरो एक साधारण व्यक्तित्व नही होता है। वह सबकुछ कर सकता है। मोटर साइकिल से लेकर बैलगाडी और हेलीकोप्टर तक चला सकता है। अकेला बीस गुण्डो से निहत्था लडकर भी साफ बच निकलता है। पर भारतीय अध्यापक भी तो कम नही। आपके जचे तो जनगणना करवा लीजिये, पशुगणना करवा लीजिये और चाहे, पचायत से लेकर लोकसभा तक के चुनाव। मास्टरजी से उत्तम "पीर, बवर्ची, भिश्ती, खर" कौन मिलेगा! पर इतने बडे फरिश्ते को भी अपना अस्तित्व कायम रखने को जाने किस-किस की खुशामद करनी पडती है। लडका चाहे पढे, न पढे, दोष मास्टरजी का। पढता क्यों नही, जरूर शिक्षण नीरस होगा, तभी तो छात्र बोर हो जाता है। और परीक्षा परिणाम कम रहने पर तुरन्त अध्यापक को ही सीधे रूप में दोषी मान लिया जाता है मानो कि माता-पिता का, समाज का, प्रशासन का, वातावरण का किसी का कोई दोष नही! आखिर छात्र विद्यालय मे तो केवल चार-छह घन्टे ही तो रहता है और वह भी 365 दिन मे 265 दिन ही (अधिकतम)। आज के युग में कितने और प्रभावी अभिकरण है यथा सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन और पत्र-पत्रिकायें इत्यादि। इस सबको कोई नजर मे नही लाता और हर कोई विचारे मास्टरजी पर सवार हो जाता है। और तो और अब तो छात्र भी सवार होने लगे हैं। ऐसे में शिक्षक अपना व्यक्तित्व बना सके यही तो व्यवस्था होनी है। पर इस तरफ ध्यान न देकर अध्यापक को फरिश्ता समझने मे लगे रहते हैं और वह भी केवल शोषण हेतु। संसद एवं विधानसभायें सुसज्जित है, साधन-सुविधा संपन्न है। हमारे विधायकों एवं सांसदो को मोटी रकम भत्ते मे मिलती है और ऐश्वर्य के सभी साधन। मिले भी क्यों नहीं, भाग्य विधाता जो ठहरे! पर हमारे 90% से ऊपर विद्यालय अत्यन्त ही साधनविहीन हैं। यही तो अन्तर है राष्ट्रनिर्माता और भाग्य-विधाता में!

शिक्षक से यदि अपेक्षा करते है राष्ट्र के निर्माण की तो उसे मुक्त वातावरण देना होगा। उसे अभिनव साधन देने होंगे और उसे ही सामाजिक क्रान्ति का, परिवर्तन का अभिकर्ता स्वीकारना होगा। उसके स्वाध्याय, मुक्त-चिन्तन, प्रयोगवाद को प्रोत्साहन देना होगा। कोई भी नदी अपने उद्गम से ऊपर नही वह सकती। शिक्षक के स्वय के व्यक्तित्व को एवं स्तर को सवारने का प्रयत्न किये विना मंजिल पर पहुँचने की आशा करना कितना बेबुनियाद है। केवल अध्यापक को फरिश्ता समझने से काम नही चलने का! □

गौरय्या

विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

घरो मे हमारे साथ रहने वाला चिर-परिचित एक छोटा-सा पक्षी है, गौरय्या। शायद यह मनुष्य के साथ रहने का ही असर है कि सभी पक्षियों मे गौरय्या ही ऐसा पक्षी है जिसमे सर्वाधिक मानवीय गुण पाये जाते हैं।

कुछ भागों को छोड़कर, गौरय्या, विश्व में सर्वत्र पायी जाती है। हिमालय में भी यह 7000 फुट की ऊँचाई तक पायी जाती है। गौरय्या मानव बस्तियों से अलग नही रह सकती। खाली पडे मकानों की अपेक्षा यह रहवास वाले मकानो में रहना अधिक पसन्द करती है। घोसला यह जनन काल मे ही बनाती है।

गौरय्या की लम्बाई 15 से० मी० व भार मात्र 26 ग्राम के लगभग होता है। मादा तथा नर के रग-रूप मे कुछ अतर होता है। मादा ऊपर राख की तरह धूसर भूरी होती है। उस पर गहरी काली तथा गहरी बादामी धारियाँ होती है। नर गौरय्या कुछ बड़ी तथा गहरे रग की होती है। उसकी चोंच व नेत्रो के चारो ओर काले पक्ष्माभ होते है। ठोड़ी तथा गर्दन के पक्ष्माभ भी काले होते हैं।

गौरय्या एक चतुर व बुद्धिमान पक्षी है। इसका मस्तिष्क समान आकार के पक्षियों मे सर्वाधिक विकसित होता है। गौरय्या पर किये गये परीक्षणो मे यह पाया गया कि गौरय्या बहुत जल्दी सीख सकती है तथा इसकी स्मरण शक्ति चूहे व बन्दर जैसे उन्नत जीवो के समान होती है। गौरय्या मे अपने साथियों को पहचानने की भी क्षमता होती है।

गौरय्या का सामाजिक व पारिवारिक जीवन बहुत ही विकसित है। ये समूह मे रहती है, समूह मे गाती हैं, समूह में खाती है, समूह मे नहाती हैं, समूह में प्रेम करती है तथा शत्रु का मुकाबला भी सामूहिक स्तर पर करती हैं। गौरय्या अपने निवास के आसपास ही रहती है। यह अपनेनिवास स्थान से दो-तीन किलोमीटर से अधिक दूर कभी भी नही जाती।

पोषण की दृष्टि से गौरय्या सर्वाहारी है। अनाज के दाने, कीट, कलिया,

फूलों का रस, रसोई की जूठन आदि सभी ग्राह्य है। परन्तु बाल्यकाल मे इन्हें कीट-पतंगो का भोजन ही प्रमुख रूप से दिया जाता है।

गौरय्या एक बार विवाह बन्धन मे बन्धते हैं तो फिर जीवन भर साथ निभाते है। बिना घर के पत्नी मिलना इनमे भी कठिन है। विवाह की औपचारिकता बहुत ही सरल होती है। वयस्क कुंवारी नर गौरय्या प्रजनन काल में रहने का स्थान ढूंढती है तथा फिर उस स्थान पर बैठकर निरन्तर 'प्रेमगान' गाने लगती है। इससे आर्कषित होकर कोई मादा गौरय्या वहाँ आकर घर का निरीक्षण करती है तथा घर पसन्द आने पर दोनों मे प्रेमालाप होता है तथा यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

सुमर्स स्मिथ ने गौरय्या दम्पत्ति मे एक दूसरे के प्रति वफादारी का अध्ययन किया है। उनके द्वारा अध्ययन किये गये 100 जोडों मे से मात्र एक मे मादा गौरय्या ने एक से अधिक नर से यौन सम्बन्ध स्थापित किया तथा अन्य एक में बेवफाई का असफल प्रयास किया।

विवाह बन्धन के बाद नव आगुन्तको के स्वागत के लिये घौसले तैयार किये जाते है। घोंसले के लिए सामग्री दोनो ही जुटाते हैं परन्तु नर अधिक मेहनत करता है। घौंसले की आन्तरिक सतह कोमल पख, ऊन आदि से बनाई जाती है। यह भी देखने में आया है कि कबूतरो को नोच कर घोसले के लिए पख जुटाने से भी गौरय्या नही हिचकिचाती।

गौरय्या वर्ष में दो या तीन बार अण्डे देती है। एक बार मे चार से पाँच अण्डे दिये जाते हैं। अण्डों का रग हल्का हरा, भूरा या पीला होता है। इन पर गुलाबी या भूरे रग के धब्बे या धारियाँ होती हैं। नर व मादा दोनों ही अण्डो को सेते हैं परन्तु प्रमुख भूमिका मादा की होती है। अण्डो से बच्चे निकलने मे 12 दिन का समय लग जाता है।

अण्डे के चौड़े वाले भाग को फोडकर बच्चा बाहर आता है। जन्म के समय बच्चा पर-विहीन व अधा होता है। माता-पिता दोनो ही बच्चे को भोजन देते है। प्रारम्भिक काल में मासाहारी भोजन प्रमुख रूप से दिया जाता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ मासाहारी भोजन की मात्रा घटती जाती है। बच्चे के शरीर पर चौथे दिन से पर आने लगते है तथा सातवें दिन तक पूरा शरीर पंखों से ढक जाता है। शिशु के पंख आने के बाद उसकी सम्पूर्ण जिम्मेदारी नर अपने ऊपर ले लेता है। इस समय मादा और अण्डे देने की तैयारी में लग जाती है।

गौरय्या मे पारिवारिक सम्बन्ध भी बड़े दृढ होते हैं। बच्चा यदि विकलांग हो तथा घौंसला छोडने में असमर्थ हो तो बडी उम्र तक भी माता-पिता उसका भरण-पोषण करते रहते हैं।

गौरय्या अपनी सक्षिप्त भाषा मे अपने साथियों से बात कर भय, धमकी

अफ्रीकी कविता के कुछ छींटे

श्यामलाल कौशिक

विगत काल में अफ्रीका में भी भारत के समान ग्राम राज्य होते थे। प्रत्येक गाँव का अपना मुखिया होता था और अपना पुरोहित। मुखिया की सहायता के लिए बड़े-बूढ़ो की परामर्शदात्री परिषद् होती थी। गाँव के अपने पहलवान होते थे जो गाँव की रक्षा तथा सम्मान के लिए दूसरे गाँवो के पहलवानों से मल्लयुद्ध किया करते थे। इन पहलवानों का पोषण पूरा गाँव किया करता था। मल्लयुद्ध मे विजय प्राप्त करने वाले पहलवानो को गाँव की ओर से अनेक बहुमूल्य उपहार दिये जाते थे। गाँव की सुन्दरतम किशोरियाँ उन्हे पत्नियो के रूप मे भेंट मे दी जाती थी।

उपनिवेशकाल मे शिक्षा के प्रति आकर्षण बढने पर गाँव के प्रतिभावान बालकों तथा किशोरो को पूरे गाँव के व्यय पर शिक्षा दिलाई जाने लगी। कुछ को यूरोप मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाने लगा। बाहर शिक्षा प्राप्त करने जाने वाले छात्रों को पूरा गाँव गाजे-बाजे के साथ समारोहपूर्वक विदा करता और शिक्षा प्राप्त करके लौटने पर उनका भव्य स्वागत करने के लिए उमड़ पड़ता। ऐसे नवयुवको को पूरे गाँव का गौरव समझा जाता और उनसे ग्राम की प्रगति में भारी योगदान की आशा की जाती।

किन्तु प्रायः ऐसा होने लगा कि यह तथाकथित उच्च शिक्षा इन नवयुवकों को बिलकुल बदल डालती, और वे अपने खान-पान और वेश-भूषा मे ही नही, अपने आचार-विचार मे भी पाश्चात्य रंग मे रंग जाते। मैकाले की आशा फलीभूत हो जाती।

अत. जब वे गाँव में लौटते तो गाँव वाले उन्हे पूर्णतया विदेशी पाते। उनकी गर्मजोशी शीघ्र समाप्त हो जाती और उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचने में देर न लगती कि उनके ये सपूत उनसे कट चुके है, उनका मार्ग भिन्न हो गया है।

कीनिया के कवि खाइंबी असालाचे ने 'Parting of Ways' शीर्षक से लिखी

अपनी कविता मे ऐसी ही एक स्थिति का चित्रण किया है। भावार्थ इस प्रकार है।

अलग अलग रास्ते

उसके इगलैण्ड से लौटने पर समस्त ग्रामवासी उत्साह से भर उठे
और उन्होंने उसे घेर लिया।
किंतु विडबना तो देखिये
कि उसने पहला काम यह किया
कि उन्हे पेरेडाइज लॉस्ट की पंक्तियाँ पढकर सुनाई
इसके बाद लोग फैलो पर भाषण झाडा
और पोप की प्रशसा के पुल बाँधे।

गाँव वाले चौंके
पर बोले कुछ नही
किंतु वे अपना धैर्य वर्डस् वर्थ की कविताओ तक ही
बनाए रख सके।
इसके बाद उनकी आँखों से चमक गायब हो गयी
और उन्हें ऑक्सफोर्ड लहजे मे धारा प्रवाह
बोली जा रही अग्रेजी मे कोई आकर्षण नही रहा।
उन्होंने समझ लिया
कि उन्ही के इस होनहार और मेधावी सपूत का
गाँव से नाता टूट चुका है।
और वे
एक एक करके उठ खडे हुए।
तब उन्होंने अपने स्टूल उठाए
अपनी छडियाँ सँभाली
और फूट चले
और गाँव के मध्य मे पुराने बुआव वृक्ष के नीचे
जा आसन जमाए।

सभी लोग इस तर्क से सहमत नही हो पाते कि ज्ञान-विज्ञान मे वृद्धि के साथ मानव सभ्यता भी विकसित हो रही है, पुरानी पीढी प्रायः यह विचार प्रकट करती रहती है कि जैसे-जैसे तथाकथित सभ्यता का विकास हो रहा है वैसे-वैसे मानवीय गुणो का लोप होता जा रहा है और ईमानदारी, स्पष्टवादिता, सच्चाई आदि का स्थान बनावट, छल-कपट, दिखावा, झूठ आदि लेते जा रहे है, किसी

कवि ने तो सभ्यता के विकास पर चोट करने के लिए साँप को इस प्रकार संबोधित कर डाला।

साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं
शहर में बसना भी भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं (उत्तर दोगे)
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।

यह दृष्टिकोण सही हो अथवा गलत, पाया सब जगह जाता है। लीजिए अफ्रीकी कविता में इसकी बानगी देखिए।

पहले पाल विडयाउसिकू की कविता 'Grand Pa' का भावार्थ जिसमे दादा जी नयी पीढ़ी पर व्यंग करते है।

दादा जी

वे कहते है कि वे मुझ से अधिक स्वस्थ है।
यद्यपि वे एक मील भी पैदल नहीं चल सकते।
उनकी आयु में मै प्रात. युद्ध में भाग लेने के लिए
रात्रि में चालीस मील चल लेता था।

वे सोचते है कि वे मुझ से अधिक स्वस्थ है।
किंतु उनके मोजे गीले हो जाएँ तो उन्हें जुकाम लग जाती है।
जब कि मेरे बिना मोजों के पैर गीले होने पर मुझे छींक तक नही आती।
तो भी वे सोचते है कि वे मुझ से अधिक स्वस्थ है।

स्प्रिंगदार पलंग पर बिछे मुलायम गद्दे पर भी वे
बिना नींद की गोली के नही सो सकते।
और मैं, तीखी घास पर सिर के नीचे लकड़ी का टुकड़ा
रखकर एक शिशु के समान मीठी नींद मे खर्राटे ले लेता हूँ।

अपने किसी प्रिय जन के मर जाने पर मैं
फूट-फूट कर रोने में लज्जा का अनुभव नही करता
और किसी मजाक पर खूब खुलकर हँसता हूँ।
किंतु वे अपने आँसू रोक लेते हैं जैसे कि
रोना कोई बुरा काम हो,
पर वे अपनी हँसी भी तो रोक लेते हैं जैसे कि

हँसना भी कोई बुरा काम हो।
तभी तो कोई आश्चर्य नही कि उन्हे
मनोचिकित्सकों की आवश्यकता पड़ती है।

बीते समय मे हमारी महिलाएँ बहुत कम वस्त्र पहनती थीं
किंतु व्यभिचार होते कभी नही सुना
आज वे किसी हैंगर पर टँगी चोली को देखकर पागल
हो उठते है
फिर भी वे सोचते है कि उनमे मुझ से अधिक प्रबल
इच्छा शक्ति है।

एक से अधिक पत्नियाँ रखने पर वे कहते है कि
मै नरक मे पडने की तैयारी कर रहा हूँ।
लेकिन अनगिनत रखैलें रख कर वे
दुनिया की आँखो मे धूल क्यो झोंकते है।

उन्हे चाहिए कि मुझे अपने तौर तरीके बदलने की सलाह
देने से पूर्व
वे स्वय तो ईमानदार बन जाएँ।
मेरे दादा जी गर्व के साथ कहते है।

और अब प्रस्तुत है नाइजीरियाई कवि जबराइल ओकारा की कविता 'Once upon a time' का भावार्थ जिसमे एक पिता अपने शिशु-पुत्र को अपना कच्चा चिट्ठा सुनाता है।

एक समय था

मेरे बेटे एक समय था
जब लोग हृदय और आँखों से हँसते थे।
किंतु अब वे केवल दाँतो से हँसते है।
जबकि उनकी आँखें बर्फ जैसी ठण्डी बनी रहती है।

उस काल में वे हृदय से हाथ मिलाया करते थे।
लेकिन मेरे पुत्र वह समय बीत गया
अब हाथ मिलाते समय उनका हृदय कही दूर होता है

और उनका बाँया हाथ मेरी जेबें टटोलता है।

जब मैं उनके घर जाता हूँ
तो वे कहते हैं
इसे अपना ही घर समझिए।
और मेरे विदा होते समय वे कहते हैं,
फिर तशरीफ लाइए, बार-बार आइए।
किंतु मुझे दूसरी बार के बाद का अवसर नहीं मिलता।
तब वे मुझे आता देख द्वार बन्द कर लेते हैं।

इस प्रकार मेरे बेटे मैंने बहुत-सी नई बातें सीख ली हैं।
बल्कि बहुत से चेहरे पहनने भी सीख लिए हैं।
जिन्हें मैं वस्त्रों के समान बदलता रहता हूँ।
घर का चेहरा, दफ्तर का चेहरा, सड़क का चेहरा,
मेजबान का चेहरा, पार्टी का चेहरा।
जिनकी अपनी पूर्व निर्धारित मुस्कराहटें हैं।

और मैंने केवल दाँतों से हँसना भी सीख लिया है।
और हृदय को दूर रख कर हाथ मिलाना भी।
मैंने वह विदा की नमस्ते भी कहना सीख लिया है
जिसका अर्थ होता है 'चलो पिण्ड छूटा।'
और 'आप से मिलकर बडी प्रसन्नता हुई' कहना भी
जब कि प्रसन्नता कोसों दूर होती है।
और बक-बक द्वारा पूर्णतया उबा दिये जाने पर
यह कहना भी कि 'आप की बातों में बड़ा रस आया।'

मैं यह सब सीख तो गया हूँ
किंतु मेरे पुत्र मेरा विश्वास करो कि मैं
फिर वैसा ही हो जाना चाहता हूँ
जैसा मैं पहले था
अर्थात तुम्हारी तरह।
मैं इन सब मारक बातों को भूल जाना चाहता हूँ
क्योंकि अभी तो हँसते हुए
जब मैं दर्पण देखता हूँ तो मेरे दाँत

साँप के विषदंत के समान दिखाई देते हैं।

और अब कुछ गीतों के नमूने।
पहले एक नाइजीरियाई युवक की यह कविता।

जब मैं अपने बिस्तर पर लेटता हूँ
तो मेरा मस्तिष्क तुम्हारे ख्यालों से भर जाता है।
और मैं सोचता हूँ कि कहीं तुमने
अपने निर्माण से पूर्व
विधाता को रिश्वत तो नहीं दे दी थी।

अब प्रस्तुत है प्रेम का महत्व प्रदर्शित करने वाली घाना के कवि क्वेमी ग्रू की कविता 'The Mesh' का भावार्थ

उलझन

हम दोनों चौराहे पर आ पहुँचे हैं।
अब मुझे या तो तुम्हारे साथ चलना है
या फिर भिन्न मार्ग अपना लेना है।
एक बारगी मैं असमंजस में पड़ गया
किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।
तब मेरे संशयों के अंधेरे में
तुमने प्रेम का दीपक जलाया
और मुझे तुम्हारे चेहरे में
अपना मार्ग दिखाई दे गया।

और अब पढ़िये मालागासी गणराज्य के कवि फ्लेवियन रानाव्हो के प्रेम गीत का भावार्थ जिसमें वह अपनी प्रियतमा से प्रणययाचना करता है।

मेरी प्रिय,
मुझे अपनी छाया के समान प्रेम मत करना
क्योंकि रात्रि में छाया अदृश्य हो जाती है।
और तब मुझे प्रातःकाल तक तुम्हारी इन्तजार करनी होगी।
मुझे मिर्च के समान भी प्रेम मत करना
क्योंकि यह पेट में उष्णता पैदा करती है

जब कि मुझे भूख मिटाने की चीज चाहिए।
मुझे अपने तकिये के समान भी प्रेम मत करना
क्योकि इससे दिन के समय तो भेंट ही नही होगी।
मुझे चावल के समान भी प्रेम मत करना
जिसे इधर खाया और उधर हजम
मुझे मीठे शब्दो के समान भी प्रेम न करना
जो तुरन्त हवा मे उड़ जाते है।
और शहद के समान भी प्रेम न करना
जो मीठा तो होता है किंतु सहज सुलभ।
मुझे एक मीठे स्वप्न के समान प्रेम करना
जो रात्रि मे जीवन्त होता है।
और दिन मे आशा की किरण
और मुझे चाँदी के टुकड़े के समान प्रेम करना
जिसे देश रहते अपने मे अलग नही किया जाता
और जो यात्रा के समय वफादार साथी रहता है।
या फिर तूंबे के समान प्रेम करना
जो साबुत रहने पर पानी रखने के काम आता है
और टूट जाने पर सारगी बनाने के। 

गौभक्त स्व० सिंघीजी—इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ

रामनिवास सोनी

प्रत्येक समाज मे कुछ ऐसे विरल व्यक्ति होते है जो अपनी धुन के धनी तथा निस्पृह समाज-सेवी के रूप मे अपनी अग्रणी भूमिका सम्पादित कर अक्षय कीर्ति का वरण करते है। ऐसे नर-पुगव देश, काल की सीमाओं को लाँघकर भावी पीढियो के लिए न केवल आदर्श प्रस्तुत करते है अपितु अपने महत् कृतित्व से नूतन इतिहास की सृष्टि कर जनमानस पर अपनी श्रद्धा की अमिट छाप छोड जाते है। ऐसे विरल व्यक्ति युगो के लम्बे अन्तराल के पश्चात् अवतरित होते है। उनकी विमल यशोगाथा से जनपदीय प्रान्तर पूर्णत: सुवासित एवम् सौरभमय बन जाता है। इस सदर्भ मे एक कवि का कथन कितना सजीव व सटीक है—

है समय नदी की बाढ कि जिसमे सब बह जाया करते है।
है समय बडा तूफान प्रबल पर्वत झुक जाया करते है॥
अक्सर दुनिया के लोग समय मे चक्कर खाया करते है।
लेकिन कुछ ऐसे होते है इतिहास बनाया करते है॥

परम गोभक्त सिंघीजी (स्व० श्री मूलचदजी सिंघी) नागौर जिले के लाडनूं कस्बे की दुर्लभ विभूति माने जाते थे। उनका नाम आज भी 'गाय' का पर्यायवाची माना जाता है। वे परम भागवत पुरुष थे। उनके जीवन पर वैष्णव धर्म की अमिट छाप थी। उनका जन्म वि० सं० 1952 मे डीडवाना तहसील के एक छोटे ग्राम दौलतपुरा मे पिता श्री अगरचदजी सिंघी के घर हुआ। बाल्यावस्था मे मातृ-पितृ सुख जितना चाहिए था उतना उन्हे नही मिला और वि० सं० 1957 मे ये लाडनूं के सम्पन्न सेठ श्री सुलतानमलजी सिंघी के यहाँ गोद आ गये। तभी से लाडनूं इनका कार्य क्षेत्र बन गया। इस परिवार मे इन्हें धार्मिक सस्कार विरासत मे मिले तथा समाज-सेवा का भाव जागृत हुआ। आज भी इस नगर के बच्चे-बच्चे की जबान पर सिंघीजी का नाम अमर है।

स्व० सिंघीजी सामान्य कद के, छरहरे, गेहुँआ रग के व्यक्ति थे। बिलकुल

निरभिमानी तथा आत्मलीन। अधिकांश लोग इन्हें 'साधु' के नाम से सम्बोधित किया करते थे क्योंकि साधुत्व इनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। इनके जीवन के प्रमुख दो पक्ष थे। गौ सेवा तथा राम का नाम। दोनों काम एक-दूसरे के पूरक थे। वे गृहस्थ में रहते हुए भी संन्यासी की तरह जीते थे। रामायण, कथा, वार्ता, सत्संग ही आपका चरम ध्येय था। साधुओं की मंडली तथा याचकों की भरमार आपके द्वार पर रहती। निर्धनों को भोजन, कपड़ा, कंबल आदि बाँटना तथा सदा-वर्त चलाना दैनन्दिन कर्म थे। वे सही अर्थों में रामस्नेही थे। सोते-जागते, उठते-बैठते, हर क्षण राममय था। उनके मकानों, संस्थानों, धर्मशाला—सभी जगह रामनाम अंकित था।

जैन कुल में जन्म लेने के बावजूद जैन संस्कार इन्हें छू तक नहीं गये। राम उनके आराध्यदेव थे तथा वे हनुमानजी महाराज के पक्के भक्त थे। रामनाम की माला हरदम उनके हाथों में रहती तथा घट में फिरती रहती। उनके जीवन में बड़ी सादगी और सरलता थी। कहीं कोई आडम्बर अथवा कृत्रिमता नहीं थी। वे मनसा-वाचा-कर्मणा से अपने आराध्यदेव भगवान राम के प्रति सर्वथा भावेन समर्पित थे तथा प्राणी मात्र में उसी का स्वरूप निहारते। धार्मिक सहिष्णुता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध सभी भाई समान रूप से उनका आदर करते थे। वे सही अर्थों में सर्वधर्म समन्वय वादी थे। उनकी कथनी-करनी में कोई अन्तर नहीं था। वे स्वदेशी के हिमायती थे। उनके करुणा-विगलित स्वरों में एक सच्चे भक्त हृदय की तड़पन छिपी थी। उन्हें पाकर यह कस्बा धन्य हो उठा तथा उन्हें खोकर कंगाल। उनकी महानता को शब्दों का जामा नहीं पहनाया जा सकता। वे अपनी उपमा स्वयम् थे।

यूँ तो सिंघीजी स्वयम् एक संस्था बनकर जीयें। उनके कर्मशील जीवन के अनेकों किस्से जनश्रुति में व्याप्त हैं लेकिन कुछ विशिष्ट प्रामाणिक घटनाओं का आकलन ही मेरा इष्ट है। एक सफेद पालतू घोड़ी पर सफेद पोशाक और पगड़ी पहिनकर सिंघीजी जब बाजार अथवा गलियों में प्रवेश करते तो चारों तरफ आवाज आती—सिंघीजी ! राम-राम। सिंघीजी हाथ जोड़कर राम-राम करते और सब हर्षित होते। भगवन्नाम की पवित्र गूँज से वातावरण पवित्र बन जाता। कई बार तो वे बच्चों को पैसे बाँट-बाँटकर राम-राम बुलवाते। उनके पीछे बच्चों का समूह होता और वे आगे चलते रहते। एक बार पनिया सुनार नामक अधनंगे, गंदे, पागल-से व्यक्ति की पीछे से आवाज आई—"सिंघीजी, मुझे भी घोड़ी पर चढ़ाओ।" इस बात को सुनकर सिंघीजी तुरन्त घोड़ी से नीचे उतरें, अपने स्थान पर पनिया को बैठाया। आप लगाम पकड़े साथ-साथ चलते रहे। जनता देखती रही, आश्चर्य-भाव से। प्राणी मात्र के प्रति कितनी दया आपके हृदय में पुंजीभूत थी; इसका अंदाजा इस छोटी-सी घटना से लगाया जा सकता है।

स्व० श्री मूलचदजी सिंघी यूँ तो अनेक सार्वजनिक कार्यों मे रुचि लेते थे परन्तु इनका सर्वोत्कृष्ट कार्य श्री रामानन्द गोशाला की स्थापना है। यह गोशाला आज इस कस्बे की शानदार सेवा कर रही है तथा अपने चरम विकास पर है। इसके बीजारोपण मे सिंघीजी का सर्वाधिक योगदान रहा। तभी सर्वसम्मति मे जनता ने आपकी संगमरमर की मूर्त्ति मरणोपरान्त गोशाला के बीचोबीच प्रतिष्ठित कराई। इस गोशाला की नीव वि० स० 1985 माघ सुदी 5 (वसत पचमी) की पावन वेला मे डाली गई। आपके साथ कंधे-से-कधा मिलाकर कार्य करने वालो मे श्री लक्ष्मीनारायणजी अग्रवाल, श्री श्रीकृष्णजी झवर, डॉ० रामबहोरीजी टडन आदि सज्जनों ने अपनी विशिष्ट सेवाएँ प्रदान की।

सिंघीजी अपनी लगन के पक्के थे। अनेको तूफान आये, कठिनाइयाँ आई लेकिन ये अपने लक्ष्य से इंच-भर भी विचलित नही हुए। सच है—एक हजार मील की यात्रा एक कदम से ही तो शुरू होती है। आज इस गोशाला के पास मीठे पानी के कई कुँए, फार्म तथा सभी आधुनिक सुविधाएँ हैं तथा सबसे बढ़कर स्थानीय रामस्नेही सतप्रवर स्वामी रामनिवासजी महाराज का सबसे बड़ा वरदहस्त है। सैंकडो गायों, बछडों, उत्तम नस्ल के सांड, उनकी उत्तम व्यवस्था, आज यह सारी उपलब्धि उस महान कर्मवीर (सिंघीजी) की स्मृति को तरोताजा बनाती है।

एक बार ब्रह्ममुहूर्त्त में सिंघीजी अपनी घोड़ी पर सवार होकर जगल की तरफ जा रहे थे। भयंकर सर्दी का समय था। मार्ग मे उन्हें तीन टाँग की एक घायल और मरणासन्न बछिया दिखाई दी। रक्त वह रहा था, इधर सिंघीजी के नेत्रो मे अश्रुधारा भी वह रही थी। घोड़ी से नीचे उतरे तथा अपना कीमती दुशाला उस पर ओढ़ा दिया। नौकरों को भेजकर घर लाये और उसकी सेवा में दिन-रात लग गये। बछिया ठीक हो गई और भक्त के सरक्षण मे रही। ऐसी भूखी, प्यासी, घायल अथवा कृश गायो को वे अपने निजी नोहरो मे ले आते और सेवा करते। वे दूसरे शब्दो मे इस नगरी के गो-पाल थे।

गोशाला की स्थापना से पूर्व अपने नोहरे या बाडे मे वे सैकडो गायो का निजी खर्चे मे पालन-पोषण करते थे। दिन-प्रतिदिन अर्थ भार बढ रहा था तो उन्होंने जनता के विशिष्ट व्यक्तियो के समक्ष अपनी समस्या रखी। सम्पन्न महानुभावो ने एक-दो साल के लिए अपनी असमर्थता जाहिर की तो सिंघीजी हाथ जोडकर बोले—"भाइयो! आप सब लोगो की मुझ पर बड़ी भारी कृपा है कि अभी एक-दो साल तक मुझे गौमाता की और सेवा का सुअवसर मिला है। इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ।" बताइये कितनी महानता है इन शब्दो में!

गौ सेवा, रामनाम और सत-समागम के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक कायो के लिए भी सिंघीजी का प्रबल चिन्तन रहा। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि समाज मे फाटका, जुआ आदि का बोलबाला है तथा नवयुवकों मे सही दृष्टि का अभाव है

तो आपने स्थानीय ओसवाल सभा के निर्माण में सक्रिय रुचि ली। सभा के सदस्य रहे तथा लोक-हितैषी कार्यों मे योगदान देते। इस बडे कस्बे से करीब आठ मील की दूरी पर सुप्रसिद्ध डूंगर वाले हनुमानजी का मदिर है जहां उस जमाने में अधिकांश भक्तगण पैदल जाया करते थे। रास्ता रेतीला, शुष्क और टेढ़ा था। पानी, आवास की विकट समस्या थी। आपने इस मार्ग मे एक प्याऊ तथा धर्मशाला बनवाकर अपनी परोपकार-वृत्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। आज भी यह स्थान जनोपयोगी है।

लेखक को ये पक्तियाँ लिखते बड़ा आघात पहुँचता है कि वि० स० 1986 आश्विन कृष्णा 12 को केवल 34 वर्ष की अल्पायु में गौमाता का यह सच्चा सेवक, मरुधर मां का लाडला सपूत (सिंघीजी) इस असार संसार को छोड़कर अनत मे विलीन हो गया। आपके आकस्मिक देहावसान के समाचार से सारा बाजार बंद हो गया। हिन्दू, मुसलमान सबकी आँखें गीली थी और आपकी ऐतिहासिक शवयात्रा मे सारा नगर उमड-उमड़ पड़ा था। कहा जाता है कि सिंघीजी के वियोग मे उनकी प्यारी घोड़ी ने भी तडप-तडप कर प्राण न्यौछावर कर दिये। उनकी जैसी शव-यात्रा आज तक यहां किसी की नही निकली। कठिन बीमारी की अवस्था में भी उन्हें इजेक्शन, दवा इत्यादि से भारी नफरत थी और एकमात्र रामनाम ही उनके लिए रामबाण औषधि थी। सर्व धर्म समन्वयवादी सिंघीजी जिन्होने इतनी अल्पायु मे कई महान सामाजिक हित के कार्य सम्पन्न किये उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनके आदर्शों के अनुरूप चलकर समस्त दु:खी मानवता का कल्याण सभव हो। ऐसे इतिहास-पुरुष को युग-युग तक युग का प्रणाम। □

साहित्य शिक्षण और नाबोकोव

सवाई सिंह शेखावत

हम में से कितने ही शिक्षक, भाषा और साहित्यिक शिक्षक के रूप में रोज-रोज, बाकायदा साहित्य शिक्षण का रुजगार करते हैं। यह बात अलग है कि यह रुजगार किन्हीं पूर्व निर्धारित साहित्यिक एवं समाजशास्त्रीय मानदंडों के *अनुसार साहित्यिक कृतियों के विशिष्ट अर्थ को, छात्रों को सम्प्रेषण का है या एक* तयशुदा नज़रिये के तहत साहित्यिक-कृतित्व की जाँच-परख, उस जाँच-परख में छात्रों को शरीक करते हुए, जाने-अनजाने, उनमें साहित्य-आकलन की एक खास दृष्टि के विकास का। या फिर समय और समाज के परिप्रेक्ष्य में कृति की प्रासंगिकता, विशिष्ट मूल्यवत्ता, भाव-पक्ष की विधायी व्यंजना, कला-पक्ष की सुगढ़-संरचना (भाषा-शैली का चमत्कार, शब्द-चयन का कौशल, अलंकार, प्रतीक योजना) आदि अन्य अनेक मुद्दों को लेकर है।

लेकिन सवाल इस बात का है कि इस समूचे 'सिर खपाऊ' प्रयास में कहीं हम कृति के उस जीवंत मर्म को तो अनदेखा नहीं कर जाते हैं—जो किसी कृति के धड़कते-स्पंदित होते जीवन में निहित है- अपने ही रूप, रंग, रस और गंध में रसा-बसा-जीवंत और गतिमान।

ऐसे ही कुछ महत्त्वपूर्ण सवालों से हमारा साबका तब पड़ता है, जब हम "लोलिता" के विश्व-प्रसिद्ध कृतिकार नाबोकोव की पुस्तक "नाबोकोव' ज लैक्चर्स ऑन लिटरेचर" पर आधारित निर्मल वर्मा के लेख "नाबोकोव: साहित्य शिक्षक के रूप में" (कला का जोखिम) को पढ़ते हैं।

यह एक सुखद संयोग है, कि नाबोकोव न केवल साहित्यकार थे, बल्कि शिक्षक भी थे—साहित्य शिक्षक। साहित्य को लेकर नाबोकोव अपने छात्रों को जो क्लास-नोट्स दिया करते थे, उनका परीक्षोपयोगी प्रयोजन तो था ही, लेकिन इस सबके साथ, उसका एक महति उद्देश्य साहित्यिक कृतियों के मर्म को उजागर करने का भी होता था—तात्कालिक प्रयोजनों से इतर, कल्पना की चमकदार नोक से

साहित्य के मर्म को कुरेदना। एक विरल और विशिष्ट साहित्य-आकलन की दृष्टि का विकास करना।

नाबोकोव लिखते हैं—"यह अपने आप में कितना मूर्खतापूर्ण प्रयास है, कि व्यावसायिक तर्क—मीमांसाओं के चक्कर में फंसकर हम किसी कृति में समय और समाज के आकड़े तलाशने लगते हैं। कृति के समूचे जीवंत सौंदर्य को दरकिनार कर, एक व्यर्थ और बेहूदा-सी खोज। क्या जेन आस्टीन में हमें इंग्लैंड की जमीदारी प्रथा का कोई चित्र मिल सकता है? या फिर डिकिन्स के अद्भुत, रहस्यमय लदन के रोमांस से हमें सौ साल पहले के लदन का कोई परिचय मिल सकता है? सत्य यह है कि महान उपन्यास असल में महान परिकथाएं होती हैं। समय और स्थान, मौसम के बदलते रंग, मस्तिष्क और पुठ्ठों के गतिमान स्पदन—एक महान लेखक के लिए इनके रहस्य ऐसे नहीं हैं, जिन्हें सार्वजनिक सत्यों की पब्लिक लायब्रेरी में उधार लिया जा सके। बल्कि ये ऐसे अद्भुत, विस्मयकारी चमत्कार हैं, जिन्हें एक कलाकार अपने ही अद्भुत, विस्मयकारी ढंग से अभिव्यक्त करता है।"

बात सच भी है, साहित्य को लेकर यदि समय और समाज की आकड़ेबाजी ही अभिष्ट है, तो फिर इतिहास से इतर साहित्यिक कृतियों का अपना मूल्य भी क्या रह जाता है? साथ ही समय, समाज, या फिर उसके मूल्य-मान ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं तो साहित्य की 'क्लासिकल' कृतियों से आज हमारा किस स्तर पर और क्या रिश्ता शेष रह जाता है? क्योंकि इन समस्त बातों के सदर्भ में तो, वे कृतियाँ कभी की "आउट डेटेड" हो चुकी। आज और अब के समय, समाज तथा मूल्य-मानों के सदर्भ में हमारा उनसे कोई सरोकार शेष नहीं रह जाता।

लेकिन इस सबके बावजूद, आज भी हम उन कृतियों को न केवल पढ़ते हैं, बल्कि बड़े चाव से पढ़ते हैं, एक निपट निजता और आत्मीय अंतरंगता से जुड़कर, उसमें रस-बस कर। समय और समाज की समस्त सीमाओं को लांघकर वे कृतियां आज भी हमारे अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती हैं—हमारे भीतर सार्थक-सा काफी-कुछ बुन जाती है।

ठीक इसी स्तर पर आकर, हमें यह सोचना होगा, कि आखिर वह कौन-सी चीज है जो समय, समाज, मूल्य, मानों के व्यवधान के बावजूद न केवल हमसे जुड़ती है, बल्कि जुड़ने को बाध्य भी करती है। नाबोकोव की दृष्टि में एक कृति के आकलन और शिक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य रचना में निहित इसी वैशिष्ट्य को व्यंजित और रेखांकित करना है। उनकी राय में यह वैशिष्ट्य कृति के धड़कते-स्पंदित होते उस जीवन में निहित है, जो हर स्थिति में, उस कृति का अपना, और केवल अपना होता है।

नावोकोव के इस मंतव्य को निर्मल वर्मा के अपने ही एक अन्य लेख "रचना की ज़रूरत" के उदाहरण से भली प्रकार समझा जा सकता है। कृति के अंतरग जीवन को लेकर, निर्मल वर्मा लिखते हैं—एक सार्थक कृति बहते हुए समय को अपने पृष्ठों पर रोककर 'फ्रीज' कर देती है। समय की सीमाओं और स्वयं कृतिकार से सर्वथा मुक्त और परे, वह समय, केवल उस कृति का अपना हो जाता है, अपना होकर रह जाता है। बाद मे जब-जब हम उस रचना को पढ़ते हैं तो रचना मे फ्रीज वह समय पुन पिघलकर हमारी अपनी अंतश्चेतना में बहने लगता है। और अनुभव के एक सीमित दायरे में ही सही, हम उस कृति के होकर रह जाते हैं।

नावोकोव इस क्रम मे लिखते हैं—"हमें सदा याद रखना चाहिए, कि एक कला-कृति, एक सर्वथा नूतन विश्व की रचना करती है। इसीलिए पुस्तक को पढते हुए, हमे इस नये विश्व को बहुत गहरायी से देखना चाहिए, जिसका उन दुनियाओ से कोई नाता नही, जिनसे हम परिचित है। रचना जिस नयी दुनिया को जन्म देती है, उसका अध्ययन करने के बाद ही हम उसका रिश्ता अपनी जानी-पहचानी दुनिया मे जोड सकते है।"

रचनाओ के प्रति नावोकोव का यह अगाध, मांसल और चाक्षुप प्रेम नि संदेह साहित्य के प्रति एक नयी और सभावनाशील दृष्टि को जन्म देता है। वे लिखते हैं—"साहित्यिक कृतियो के मासल प्रेम को प्राय. हम रूखी समाजशास्त्रीय टीकाओं तले दबा देते है।"

नावोकोव की स्पष्ट मान्यता है कि—समय और समाज या विशिष्ट मूल्य और सिद्धान्तो को लेकर की जाने वाली कृति-समीक्षा वस्तुतः हमारी "कामनसेंस" (वस्तुगत व्यावहारिकता—यह उचित है, यह अनुचित है), की उपज है। इसके जरिये हम कृति को एक विशेप कोण, एक विशेप चश्मे से देखने लगते है। उस स्थिति मे हमारे लिए कृति के भीतर स्पदित जीवन नही, अपितु हमारे अपने आग्रह महत्वपूर्ण हो जाते है।"

नावोकोव की राय में—"महान साहित्य का आनद लेने के लिए एक ठडी, शात, निर्वैयक्तिक कल्पना की जरूरत है। जो अपने को तटस्थ और निसंग रख सके। तभी एक किताब पूरी सार्थकता के साथ, हमारी आत्मा मे कम्पन, रीढ़ की हड्डी के ऊपर फुरफुरी जगा सकती है। एक आदर्श पाठक के भीतर पागल मतवालापन और वैज्ञानिक विवेक—दोनो का समन्वय होना चाहिये।"

तभी, और केवल *तभी* हम उस कृति के प्रति और स्वय अपने प्रति (पाठक के रूप मे) भी न्याय कर पायेंगे—उस कृति से जुड पायेंगे, उसमे शरीक हो पायेंगे। एक ऐसा नजरिया जो, न केवल किसी कृति के सौंदर्य पर रीझता-मुग्ध होता है, बल्कि समझ के स्तर पर सीमाओ का अतिक्रमण भी करता है—जो किसी बनी-

बनाई दृष्टि की मोहताज नही।

उपन्यास के मर्म को रेखांकित करते हुए नाबोकोव लिखते है—"मेरे विचार से एक उपन्यास को जांचने की सबसे अच्छी कसौटी यह है, कि उसमें कविता की अत्यान्तिकता और विज्ञान की अतर्दृष्टि दोनो मौजूद हों। कला के जादू मे सराबोर होने के लिए एक बुद्धिमान पाठक किसी उत्कृष्ट पुस्तक को सिर्फ दिल से नही, सिर्फ दिमाग मे नही, बल्कि अपनी रीढ से छूता है। क्योंकि कला का आनद यहीं स्पदित होता है।"

नाबोकोव की राय मे एक समीक्षक, साथ ही शिक्षक का दायित्व इस स्पदन को महसूसने की सामर्थ्य का विकास करना, इस दृष्टि को विकसित करने मे पाठक की मदद करना है। नाबोकोव लिखते हैं--सौंदर्य और दया—शायद इनके जरिये हम कला की परिभाषा के सबसे निकट आ सकते हैं।

ठीक इसी स्तर पर आकर हमे भी साहित्य शिक्षण के अपने रोजमर्रा के रुजगार की जांच-पडताल करनी होगी। एक ढर्रेदार परिपाटी पर चलते हुए कहीं हम स्वयं साहित्य को ही तो अवमूल्यित नही कर रहे हैं? और इस सब के साथ ही भावी-पीढियो मे साहित्य-आकलन की एक एकागी और आधी अधूरी दृष्टि को तरह और तरजीह तो नही दे रहे है? ❑

आज परीक्षा परीक्षार्थी की या परिवीक्षक की शिक्षार्थी की या शिक्षक की

मोहन सिंह

एक समय था, परीक्षार्थी परीक्षा देते थे, शिक्षक परीक्षा लेते थे। पर आज के इस रॉकेट युग की तो बात ही और है। छात्र विक्षोभ के, छात्र परिवेदन के इस युग मे परीक्षा की जैसे परिभाषा ही बदल गई है। पहले परीक्षा का निकट आना छात्र के लिए चिंता का, अनथक परिश्रम करने का कारण बन जाता था। आज परीक्षा के निकट आने पर परीक्षार्थी चिंतित, भयभीत नही होता। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के लिए 'किताबी कीडे' का लेबल लगाना तो उसे कदापि स्वीकार नही।

आज परीक्षा के निकट आने पर वे अध्यापक चिंतित हो उठते है, जिनको परीक्षा केन्द्र पर परिवीक्षक का उत्तरदायित्व सौंपा जाने वाला है, जिन्हे 'इन-विजीलेशन' करना है। कैसी विषम परिस्थिति है, कैसी दयनीय स्थिति है। परीक्षा परीक्षार्थी की हो, चिंतित, भयभीत, शिक्षक हो। अपने मान, सम्मान की रक्षा हेतु कुल देव की मनोतियाँ शिक्षक मनावे।

शिक्षक चिंतित हो भी कैसे नही। उसकी परीक्षा समय मे परीक्षा जो होनी है। उसे अपने ही छात्रो के तरह-तरह के अशोभनं हथकंडो की करामात के कौशल पर पार जो पाना है।

यह तथ्य, यह सत्य किस से छिपा है कि आज के परीक्षार्थी के लिए, परिवीक्षक को भयभीत करने हेतु चाकू, छुरा, पिस्तोल, परीक्षा कक्ष में ले जाना कितनी साधारण बात बन चुकी है। परिवीक्षक बनने वाला प्रत्येक शिक्षक यह जानता है कि ज्योंही उसने परीक्षार्थी को नकल करने से रोका, त्योंही परीक्षार्थी की जानीमानी 'ग्रे टनिंग', 'गुरुजी बाहर चलिये आपको; देख लूंगा, प्राप्त हुई। शिक्षा देने वाला गुरु जैसे उसका शत्रु नम्बर एक बन गया हो।

शिक्षक, शिक्षक होता है। उसका काम है, सिखाना, छात्र को अधकार से

प्रकाश की ओर ले जाना, उसको सुपथ का पाथी बनाना। वह छात्र का मित्र, दार्शनिक एवम् पथ प्रदर्शक होता है, इतना ही क्यों, वह सरस्वती भक्त होता है, कलम का पुजारी होता है। वह कलम उठा सकता है, चाकू, छुरा, खड्ग, उठाना उसके बूते की बात नही। और वह उनसे, जिसे शिष्य कहता है, गर्हित प्रतिकार करे भी कैसे। ऐसा करने को न उसका हृदय मानता है, न हाथ।

प्रश्न उठ सकता है, परीक्षा के केन्द्र पर पुलिस का कड़ा प्रबंध क्यो न किया जाय। पर भुक्तभोगी परिवीक्षक ही जानते हैं कि पुलिस की 'प्रजेन्स' से कठिनाई कहाँ तक दूर होती है, नकल के पुर्जे करामाती-कारतूस' बाहर से आने कहाँ तक बद होते हैं, अध्यापक के विरुद्ध शक्ति के प्रदर्शन का स्वर कहाँ तक शात होता है?

आज का परीक्षार्थी, परीक्षा मे उत्तीर्ण होने हेतु, नित-नवीन साधन अपनाता है, कमाल की 'रिमोर्त फुनमेम' का प्रदर्शन करता है, जिसे देखकर विस्मय होता है, अतीव आश्चर्य होता है।

बलिहारी है। आज के छात्र की बुद्धि की। पढा था प्रेमिकाएँ वियोग का सदेश ले जाने हेतु पक्षियो से निवेदन करती थी, सेना मे भी सदेश प्रदान करने के लिए कपोत अपनी करामात दिखाते आये हैं। पर आज तो परीक्षा के केन्द्रों पर भी इन कपोतो की करामात देखने को मिलती है। 3-4 वर्ष पूर्व 'टाइम्स आफ इडिया' समाचार पत्र मे लखनऊ का यह समाचार 'पीजन्स यूज्ड फार कॉपिंग' पढकर दंग रह जाना पडा। वहाँ के उन परिवीक्षक की मुक्त कठ से प्रशसा करनी पडी, जिन्होंने कपोत की करतूत को कामयाब न होने दिया। वस्तुत बडी दयनीय दशा है आज के परिवीक्षक की। परीक्षार्थी की धमकियों पर परिवीक्षक साहस के सम्बल से पार पाले, पर, पर के धनी कपोतों की कलाबाजियो से पार कैसे पायें? कैसे निबटें?

परीक्षार्थियो द्वारा, परीक्षा मे उत्तीर्ण होने हेतु अशोभन साधनो, निंदनीय साधनो का प्रयोग करने की प्रवृत्ति वर्ष प्रति बढती जा रही है। यह कहना असंगति युक्त नही होगा कि ज्यों-ज्यों इस बीमारी को रोकने का प्रयास किया गया है त्यों-त्यों यह बढती गई है।

इस प्रवृति को रोकने मे उड़नदस्ते भी कोई विशेष परिणाम नहीं दिखा पाये है। उड़नदस्ता परीक्षा केन्द्र पर छापा मारता है। 5-10 परीक्षार्थी चक्कर मे आते हैं। ये ही परीक्षार्थी केन्द्र अधीक्षक के लिए, परिवीक्षको के लिए बवाले जान बन जाते हैं। 'सब चलता है' सिद्धान्त के पक्षधर अभिभावकों के आक्रोश का भी परिवीक्षक को सामना करना पडता है। परिवीक्षक एक, धमकी देने वाले अनेक।

ऐसी स्थिति मे चालू, टालू नीति को मार्ग-दर्शक मानकर शिक्षक, परिवीक्षक अपना समय पार करता है। आज अच्छा, सफल परिवीक्षक उसे माना जाने

लगा है जो परीक्षा के दौरान अपनी ड्यूटी भी दे दे। अपने मान, सम्मान पर भी आच न आने दे।

छात्रों मे इस बीमारी के पनपने के अनेकों कारण है। लेकिन सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के आकाक्षी अध्यापक बन्धुओं से भी इस प्रवृति को पनपने मे सहायता मिलती है।

यह एक कटु सत्य है। आज जो परिवीक्षक छात्रों को नकल के कारतूस काम मे लेने दे, वह अच्छा अध्यापक, अच्छा गुरुजी कहलाये, छात्रों से मन चाहे जो पावे। जो अवैध, 'अनफेयर मीन्स' काम मे न लेने दे वह गंदा, बुरा,छात्रों का दुश्मन, हेकडी बाज कहलावे। छात्रो से धमकी पावे, अभिभावको का आक्रोश सहे।

अगर इसी तरह परीक्षा केन्द्रो पर छात्रों की मनमानी चलती रही व शक्ति के बल पर, छुरे की छोर पर, पिस्टल के पाव पर वे परिवीक्षकों के साथ अशोभन व्यवहार करते रहे तो परीक्षा सिवाय प्रपच प्रमाणित होने के और कुछ नही रहेगी। अध्यापक भी परिवीक्षक बनना सहजता मे स्वीकार नही करेगा।

परीक्षा प्रणाली मे समयानुकूल सुधार से ही इस समस्या का समीचीन, शोभन समाधान हो सकता है। पुलिस की 'प्रजेन्स' से, उडनदस्तो की अचानक उडान से इस समस्या का निराकरण कदापि नही हो सकता।

यह एक सत्य है, तथ्य है, इसे सहज मे ही झुठलाया नही जा सकता। □

भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता

चुन्नीलाल भट्ट

जिस देश में विषैले नागों की पूजा होती हो' 'वर्ष में एक दिन इनके पूजन का सुनिश्चित हो नाग पंचमी के रूप में 'जो आराध्य शंकर के गले का हार हो सच ! उस संस्कृति में सहिष्णुता का भाव कितना गहन होगा ? 'अपनत्व का दृष्टिकोण कितना व्यापक होगा ? दुश्मन को गले से लगाना ''उसे पूजन कर सम्मान देने का रिवाज हृदय की कितनी विशालता का द्योतक होगा ?

इस देश की संस्कृति सांप जैसे भयानक जहरीले जानवर की पूजा कर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करती है जीता जागता उदाहरण है''' इस संस्कृति में अपने में समा लेने की उसे अपने अनुरूप ढाल लेने की निभा लेने की 'क्षमा कर देने की' हर तरह की घृणा, असहिष्णुता और हठधर्मिता के प्रत्येक अवशिष्ट अंश को अपने अन्दर से बाहर निकाल फेंकने की शक्ति कितनी गहरी है।

ऋग्वेद से लेकर आज तक, इस देश की संस्कृति हमें मिलजुल कर, समान आदर्शों और उद्देश्यों को प्राप्त करने का उपदेश देती रही है।

"संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम ।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम ॥
समानि वः आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनोयथा वः सुसहासति ॥

अर्थात् साथ-साथ चलो, साथ-साथ बोलो, तुम्हारे मन परस्पर अनुकूल रहें, समान हों तुम्हारे कार्य और उपलब्धियां हों, समान ही तुम्हारे विचार और संकल्प हों, समान ही तुम्हारे हृदय की इच्छाएँ हों ''इस प्रकार तुम सबमें समानता हो।

भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता का उच्च स्थान इस देश के भौगोलिक'''राज-

नैतिक और आध्यात्मिक सगठन से सुस्पष्ट है ‥। विश्व के सभी धर्मों के अनुयायी यहाँ रहते है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि सभी धर्मों के लोग भारत के नागरिक है। सभी लोग शान्ति और भाई-चारे के साथ रहते हैं। इसका श्रेय इस देश की परम्परा को है। इस महान देश की सहिष्णु सस्कृति को है।

यहूदी हमारे यहाँ तब आए जब पहली शताब्दी मे येरूसलम के मन्दिरो को नष्ट किया गया। ईसाइयो का आगमन ईसाई युग की आरम्भिक शताब्दियो मे हुआ। इस्लाम द्वारा ईरान पर अधिकार किये जाने के बाद पारसी यहाँ आए और मुसलमान सातवी और आठवी शताब्दी में यहाँ आये और तबसे यही पर रहते आ रहे है।

पिछली तीस या चालीस शताब्दियों से हमारी परम्परा यही रही है कि व्यक्ति किसी भी धर्म का अनुयायी क्यो न हो' 'हमने सदैव व्यक्तित्व मे समन्वय स्थापित करने का लक्ष रखा ‥सदैव ऐसा ही महसूस किया है कि हम सब एक ही परिवार के सदस्य है।

"वसुधैव कुटुम्बकम्" के सूत्र को सदैव भारतीय सस्कृति ने अपना ध्येय रखा अन्तिम बिन्दु माना। आज बड़े-से-बड़े नगर मे एक ही सडक पर मन्दिर, मस्जिद, चर्च, अगियारा और यहूदियो के पूजागृह एक-दूसरे के साथ शान्ति-पूर्ण सहयोग करते हुए हमें दिखाई देते है।

यह बात यदाकदा जरूर दिखायी देती है कि राजनीति की दखलन्दाजी के कारण धार्मिक मत-भेद उभरकर सामने आते है। अन्यथा हमारे देश में सभी धर्मों का स्वागत है, सभी धर्मो के सच्चे अनुयायियों की सराहना की जाती है।

इतिहास साक्षी है। भारतीय सस्कृति मे सहिष्णुता के उच्च भाव के प्रति इसके पृष्ठ आज भी गवाही दे रहे है। अशोक ने अपने एक शिलालेख मे कहा था "धर्म को लेकर मत झगडो, समझौते की ही सराहना करो। यह मत समझो की तुमने पूर्ण सत्य पर अधिकार कर लिया है, किसी भी धर्म का सत्य पर एकाधिकार नहीं है। तुम्हें उस ईश्वर को जानने की कोशिश करनी चाहिए जो विभिन्न धार्मिक मार्गों और विभिन्न लोकोत्तर व्यक्तियों मे अभिव्यक्त सभी दिव्यताओं से ऊपर है।"

आज देश के अलग-अलग हिस्सों में लगभग चौदह भाषाएँ बोली जाती हैं। लेकिन भारत के सभी लोग मिल-जुल कर रहते है।

इस महान सस्कृति मे सहिष्णुता का सूत्र एक ऐसा सूत्र है, जिसमे अलग-अलग भाषाओं को बोलने वाले लोग परस्पर बंधे रहते हैं। देश के भाषा वार पुनर्गठन से भय था कि इससे देश की एकता छिन्न-भिन्न हो जायेगी, लेकिन ऐसा न हुआ। आज सम्पूर्ण राष्ट्र एक इकाई है ‥। सहिष्णुता के इसी भाव के कारण

ही सारा देश आज एक ही माला मे पिरोया हुआ है। भले ही माला का प्रत्येक मनका एक पृथक अस्तित्व रखता है लेकिन बावजूद इसके वह माला के चक्रव्यूह में इस तरह से गुत्थम-गुत्थ है कि वह माला से अलग नही हो सकता।

महान् दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् ने ठीक ही लिखा है—"हमारी संस्कृति संसार के लोगो मे संभ्रम, सहानुभूति और परस्पर सम्मान और सहिष्णुता की भावना पैदा करना चाहती है; हम उन्हे यह महसूस करा देना चाहते है कि हम इस संसार मे पैदा हुए हैं प्यार और निर्माण के लिए, न कि नफरत और विनाश के लिए।"

अनेक शताब्दियो से इस देश पर होने वाले अनेक हमलों के बाद भी हमारा देश चार-पाँच सहस्राब्दियों से जिंदा है तो एक विशिष्ट विचारधारा के कारण... इस महान् संस्कृति मे सहिष्णुता के भाव की प्रमुखता के कारण हमारा अस्तित्व बना रहा। यही भाव आज भी हमारे सामने है। मनुष्य के गौरव और लोगों में भाई चारे की उद्दात्त भावना मे सारा संसार सिमटकर एक हो जाना चाहिए।

सही अर्थों में तो प्रत्येक धर्म को ''प्रत्येक संस्कृति को सहिष्णुता के इस महान गुण को अपने मे धारण करना होगा, अन्यथा वह नष्ट हो जायेगी। यही वह धर्म है. .संस्कृति है जिसे आज के परिवेश मे स्वीकार किया जा सकता है।

विदेशो में भारतीय संस्कृति का प्रभाव ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से कुछ समय पहले फैलना शुरु हुआ। आज भी वहाँ हमारी संस्कृति के अवशेष दिखाई पड़ते है, फिर भी हमारी राजनीतिक महत्वाकांक्षा नही रही कि हम इन राज्यो को जीत कर वहाँ अपना शासन स्थापित करें।

हमारी संस्कृति तो सदैव अभयदान देती रही। लोभ और मोह से मानव को विमुक्त होने का सन्देश देती रही है, और सत्य की खोज के लिए उत्प्रेरित करती रही है। उपनिषद् मे कहा है "असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृत गमय .."

आज संसार एक समान केन्द्र की ओर बढ़ता आ रहा है। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान तथा परिवहन और संचार के साधनों ने सारे संसार को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया है। राजनीतिक रूप मे कही लोकतन्त्र है तो कही तानाशाही। गहराई में उतर कर देखा जाय तो आज संसार भय युक्त है। भय से विमुक्त नही। धर्मों और संस्कृतियो मे टकराव" विश्व विनाश के कगार पर आ लटका रहा है।

इन सारी विषम परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति'''हमारा धर्म मानव समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है। हमारी प्राचीन संस्कृति जिसके गौरव से हम गौरवान्वित हैं जो सहिष्णुता, पारस्परिक सामंजस्य, भ्रातृभाव की गहन आध्यात्मिक विचारधारा मे ओतप्रोत है यह संसार का मार्गदर्शक बन सकती है।

पवाड़ा साहित्य

चन्द्रदान चारण

अपभ्रंश-काल में एक ही जैसे ग्रन्थों के नामों के अन्त में एक पद जोड़ कर उनका नामकरण किया जाना आरम्भ हो गया था। विभिन्न प्रदेशों में ऐसे 'नामान्त' विभिन्न पदों का काफी प्रचार हुआ। राजस्थान में वेलि, फागु, सलोका, विवाहला, ख्याल, पवाड़ा, रास, मगल आदि नाम वाली रचनाएँ विपुल मात्रा में उपलब्ध होती है। राजस्थानी साहित्य में उपर्युक्त काव्यों की रूप-परम्परा काफी पुरानी है। पवाडा का इतिहास भी कम रोचक नहीं।

गुजराती जोडणी कोश में यद्यपि पवाडा की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द प्रवृद्ध से मानी गयी है—प्रवृद्ध > प्रवड्ढ > पवाडा—किन्तु अधिकांश विद्वान् इस बारे में सहमत है कि पवाडा की उत्पत्ति वास्तव में संस्कृत शब्द प्रवाद से हुई है—प्रवाद > पवाअ > पवाड़अ > पवाडो। एक दो विद्वानों ने इसे 'परमार' शब्द से सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया है पर यह उचित प्रतीत नहीं होता।

पवाडा शब्द का प्रयोग भारत के बहुत व्यापक क्षेत्र में होता है। पश्चिम में राजस्थान से पूर्व में बगाल तक एवं उत्तर में पंजाब से दक्षिण में महाराष्ट्र तक यह शब्द अपने विविध रूपों में प्रचलित है। राजस्थान में पवाड़ो, पवाडा, प्रवाडा, ब्रज में पमारा, मालवा में पँवारा, पंजाब में 'वार' बगाल में पवार, महाराष्ट्र में पोवाडा तथा कुछ प्राचीन रचनाओं में 'पयडो' 'पवाडु' 'पुवाड्ड' आदि नाम भी मिलते है।

किसी रचना के लिए 'पवाड़ो' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम संवत् 1485 में किया गया जबकि हीरानन्द सूरि ने अपने 'विद्याविलास चरित' को पवाडो की सज्ञा दी—

> विद्याविलास नरिंद पवाडो, हइडा भीतर जाणो।
> अतराइ विण पुण्य करो तुम्हि, भाव ओणरो आणी॥

इसके बाद संवत् 1565 में रचित ज्ञानचन्द का वकचूल पवाडो है—

पव्वाडउ पोढउ हुवइ करवाछि कवि खति।
वकचूल गुण वर्णवू, श्रवणि सुणउ इकचिति।।

पवाड़ो शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता रहा है। सामान्यतः पवाड़ो से तात्पर्य ऐसी रचना से लिया जाता है जिसमें किसी वीर के शौर्यपूर्ण कार्यों—विशेषतः युद्धों—का ओजस्वी वर्णन हो। अगिनदास अपने 'अफजल खाँ-वध' नामक पवाड़े में कहते हैं—"यह सूर वीर पुरुषों का पवाडा सूरवीर ही सुनें।' लेकिन यह मत उचित नहीं। हीरानंद सूरि रचित विद्याविलास पवाडो प्रेम और कौतुक प्रधान चरित काव्य है तथा ज्ञानचन्द का वकचूल पवाडो एक धार्मिक कथा है। परवर्ती राजस्थानी साहित्य में ऐसे पवाड़े लिखे गये जिनका सम्बन्ध वीर पुरुषों से है। इनमें युद्धों के अतिरिक्त अन्य गौरवपूर्ण कार्यों का भी वर्णन है। फलस्वरूप पवाडो शब्द का प्रयोग एक काव्य रूप, गौरवपूर्ण कार्य, युद्ध, यशोगाथा आदि अर्थों में होने लगा।

काव्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में 'पवाडो' शब्द प्राचीन रचनाओं में कई जगह प्रयुक्त हुआ है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

इसो कीध अवसाण, जिसौ जाणत सयल जण।
राउत्ता राउत्त माहा, मछरीक निभै मण।।
सामळ नै करमसी, चंद जस नाभौ चाड़ै।
वागड़ छल वीरत्ति, किटे अरि थट्ट विभाड़ै।।
हरि भुवणि गया वालणहरा, धामा तीरथ धरा छळ।
कवि मेह प्रवाड़ो चीतियो, कळै नहीं कति ताई अकळ।।

[प्राचीन राजस्थानी गीत भाग 8, पृ० 57]

गौरवपूर्ण कार्य के अर्थ में पवाडो शब्द का प्रयोग प्राचीन रचनाओं में भी मिलता है। 'नागदमण' में डिंगल के प्रसिद्ध कवि सांया झूला लिखते हैं—

"पवाड़ो पन्नगा सिरै, जदुपति कीधौ जाय"

इसी प्रकार प्राचीन राजस्थानी गीत का एक अंश उल्लेखनीय है—

करे व सवा अतरे केशव,
वधियो चीर द्रोपद वसेख।
मो मुख गण्या न जावै माहव
असा प्रवाड़ा कीध अनेक।।

राजस्थान में किसी वीर के पवाडे गिनने की परम्परा पुरानी है। गाडण

पमाइत ने 'गुण जोधायण' मे जोधपुर के शासक जोधा जी राठौड़ के पवाड़ों का उल्लेख करते हुए लिखा है—

वाप तणो वैर लयो, गैह लोतां उतवंग
जोध प्रवाडा तेनला, जेता गंग तरंग
जिता गग तारग, ध्रू भार टारा
जिना वीझ नागा, जिती मेघ धारा
जिता आंविया कपि, लका उजाडा
लिता जोध कमंधज, तूझ प्रवाड़ा

पवाडा राजस्थानी साहित्य की एक विशिष्ट विधा है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि राजस्थानी मे पवाडे केवल पद्य में ही नही लिखे गये बल्कि गद्य मे भी लिखे गये यथा—मनोहरदास रा प्रवाडा, राव रा प्रवाडा, भीलड़ा रा प्रवाडा आदि। गोगादेजी की वीरता का उल्लेख करते हुए 'मुहता नैणसी री ख्यात' मे (भाग 2 पृ० 319) लिखा है—"तितरै धीर दे जोईयो आयो। ताहरां गोगादेजी बोलियो—धीर दे, आव। तू वडो जोईयो छै। म्हारो पर वाड़ो लै। ताहरा धीर दे घिरियो। नेडा आय नै उतरियो। ताहरा गोगादेजी तर वार री झडप वाही, मु जोईयो कनै आय पड़ियो।"

जिस प्रकार राजस्थान मे रणमल्लन शब्द व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ, उमी प्रकार उमी अर्थ में प्रवाडमल्ल शब्द का प्रयोग भी कई जगह मिलता है—

(क) महि-पुड भीच प्रवाडमल, भूवल आपण भाव।
मिध हुवो घणसूर रै, रुपक वैंस इंदराव॥
—मुहता नैणसी री ख्यात, भाग 3 पृ० 169

पवाडो का नामकरण प्राय विजेता के आधार पर ही किया गया है यथा—पाबूजी के पवाडे, निहालदे-सुलतान, वगडावत आदि। लेकिन कभी-कभी विजित व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर भी पवाडो का शीर्षक निर्धारित किया गया है जैसे—'भीलडा रा प्रवाडा'।

राजस्थानी साहित्य मे पवाड़ों मे विषय वैविध्य प्राप्त होता है। कही भक्त भगवान की अनन्त महिमा का वर्णन करता है तो कही कवि किसी के अनुपम शौर्य अथवा उदारता का चित्रण करता है। कही यशोगाथा है तो कही वीरगाथा। पर अधिकांशतः उनमे विजययुक्त वीरतापूर्ण कार्यों का ही वर्णन है। राजस्थानी लोक साहित्य मे पाबूजी, निहालदे—सुलतान, वगडावत आदि पवाड़े बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि इनकी कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति नही मिलती पर इसमे कोई सन्देह नही कि ऐतिहासिक व्यक्तियो मे सम्बन्धित होने के कारण ये काफी

पुराने होंगे। ये जन-जीवन मे काफी लोक-प्रिय तथा मौखिक परम्परा मे रहे हैं। अब ये तीनों ही लोक-काव्य समृहीत किये जा चुके है और प्रकाशित हो गये हैं।

पवाडों के गायक भोपे कहलाते है। ये पड अथवा फड़ वाँचते है। इनके पास पड़ो के रूप में लम्बी-लम्बी पट्टावलियाँ होती है। इन पर पवाडो के विषय से सम्बन्धित विभिन्न चित्र होते है। प्रायः पाबूजी की पड़ बाँचने वाले नायक और देवजी की पड़ बाँचने वाले गूजर होते हैं। इनके वाद्य भी अलग-अलग होते है। पाबूजी की पड बाँचने वाला रावण हत्था तथा देवजी की पड बांचने वाला जतर नाम के वाद्य का उपयोग करता है। ये पड़ें प्रायः रात्रि मे ही बाँची जाती हैं। यद्यपि आकार की दृष्टि से देवजी की पड सबसे बड़ी है और नौ-नौ रात्रि तक बाँची जाती है पर मान्यता की दृष्टि से पाबूजी की पड सबसे अधिक लोक-प्रिय है।

इन पवाड़ों मे जीवन के अनेक मार्मिक प्रसग हैं। प्रेम के लिए सर्वस्व त्याग की भावना, वचन-पालन हेतु प्राणो का उत्सर्ग, अपने स्वत्व की रक्षार्थ युद्ध में शौर्य-प्रदर्शन, विपत्तिग्रस्त के उद्धार हेतु बड़े-से-बड़े संकट का सामना, भाई-बहन का निश्छल और निर्मल प्रेम, नायक-नायिका की वियोग-वेदना आदि से राजस्थानी पवाड़ा साहित्य ओत-प्रोत है। सुलतान जब नरवरगढ़ मे रहने लगा और लौटकर नही आया तो निहालदे ने मारू के नाम परवाने लिखे। तीसरे परवाने मे उसने जो सांकेतिक विरहोद्गार प्रकट किये उनकी मार्मिकता असदिग्ध है। बाग लगाकर बागों का माली चला गया, पीछे से उसे कोई सींचने वाला न रहा। नीबू पक-पक कर रस से भर गये, शुक ने भी अपनी चोंच सुधार ली है पर निहालदे का प्रिय नही लौटा।

पवाड़ो मे जहाँ लोक-जीवन के विभिन्न रूप मिलते हैं, वहाँ उनमें अलौकिक तत्त्व का समावेश भी असदिग्ध रूप से किया गया है। पक्षियो से वार्तालाप, दानव से युद्ध, जादू का प्रयोग, परकाय प्रवेश, मृत का पुनर्जीवित होना, देवी-देवताओं द्वारा सहायता, दृष्टिपात से गर्भ-धारण, उबलते तेल के कडाह मे डाले जाने पर भी जीवित रहना आदि घटनाओं का वर्णन वास्तव मे कथानक-रूढ़ियों के रूप में हुआ है।

यद्यपि कई पवाडों का मूल कथानक ऐतिहासिक आधार लिए हुए है पर लोक-मानस ने उन्हें विस्तार देकर उनमें अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तन कर लिया है। उदाहरण के लिए जैमती के कारण पड़िहारों और गूजरो मे जो युद्ध हुआ वह तो ऐतिहासिक सत्य है लेकिन 'देवजी री पड़' अथवा 'बगड़ावत' काव्य मे युद्ध का जो कारण और स्वरूप दिया गया है वह लोक-मानस द्वारा परिवर्तित रूप है। यही बात निहालदे सुलतान और पाबूजी के पवाडो के लिए कही जा सकती है।

यों तो आज भी पवाड़े लिखे जा रहे हैं जैसे श्री गणपति स्वामी का "धारू के

जलम को पवाडो" । पर राजस्थानी पवाड़ा साहित्य अधिकांशतः मौखिक परम्परा में ही प्राप्त है। अतः इनके रचनाकाल तथा इनकी भाषा के मूलरूप का पता लगाना बड़ा कठिन है। पर एक बात स्पष्ट है। ठेठ राजस्थानी भाषा होते हुए भी इन काव्यों में सरलता के अलावा पर्याप्त सरसता है। सूक्तियों का प्रयोग काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करने के साथ-साथ उसे स्पष्ट और सुग्राह्य बनाता है। 'देवजी री पड' अथवा 'बगड़ावत' काव्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

(1) माया बादळ ज्यू भेळी हूँ, पुरवाई सूँ जाय

(2) बड बुगला सूँ बीगडे, बान्दर सूँ बनराय

(3) भोम सपूतां बावड़े, वंश कपूतां जाय

(4) ऊग्या नर वे आंथसी, जनम्या सो मर जाय

इन पवाड़ों में हमारी लोक-संस्कृति संरक्षित है। लोक-जीवन को प्रभावित करने और सरस बनाने की अटूट क्षमता इनमें आज भी है। मशीनों के कर्ण-कटु कोलाहल से दूर गाँव की शान्त रजनी-वेला में जब कोई भोपा मधुर वाद्य-यन्त्रों के साथ अपनी सुरीली ध्वनि से पवाड़े सुनाता है तो समस्त श्रोता मन्त्र-मुग्ध होकर रस की धारा में डूब जाते हैं। मनुष्य यदि मशीन बनना नहीं चाहता और मानव के रूप में रहना चाहता है तो उसे पुनः ऐसे साहित्य का समादर करना होगा और इस लोक-गंगा में अवगाहन करना होगा। □

लुई ब्रेल : ब्रेल लिपि का आविष्कर्ता

वसंतीलाल सुराना

फ्रांस की राजधानी पेरिस से 32 किलोमीटर पूर्व में, कूपवे नामक ग्राम में साईमन रैने ब्रेल की घोड़े की जीन बनाने की दूकान थी। मालिक चमड़े से घोड़े की जीन और फीते बनाया करता था। उसकी पत्नी का नाम मोनेका था। साढे तीन वर्ष का लुई ब्रेल, दो भाइयों और दो बहिनों में से सबसे छोटा था। एक दिन पिता फीता बनाने के अपने काम में व्यस्त था। नन्हा लुई चमड़े के टुकडे के छेद मे से अपने पिता को निहारकर प्रसन्न हो रहा था, लेकिन— छेद इतना छोटा था कि वह अपने पिता के बाल पूरी तरह से नही देख पा रहा था। उसने लोहे का सुआ लेकर छेद बड़ा करना चाहा। पिता के बिम्ब को छेद में से देखते हुए पूरी ताकत से सुआ छेद मे डाला कि वह छेद को पार कर, बायी आँख की गहराई तक जा लगा। लहू की धार ने चेहरे को तर किया। नन्हा लुई चिल्ला उठा। पिता ने उसे एकदम बाँहों में लेकर रोने और रक्त प्रवाह का कारण जाना। लुई की चीख सुनकर ऊपर की मंजिल से माँ दौड़ी हुई आयी। नन्हा लुई पिता की गोद मे था, उसका रक्त प्रवाह बजाय कम होने के तीव्र था। माँ-बाप ने रक्त रोकने का असफल प्रयत्न किया। गाँव मे मात्र एक ही डाक्टर था। वह भी पशुओ का, होरेस ड्यूक्लोज। उसने जैसे-तैसे आँख का रक्त प्रवाह रोककर आँख पर पट्टी बाँध दी। और स्वय चिकित्सा न कर पाने की अपनी असमर्थता व्यक्त की।

पिता के वकील मित्र ने बालक को पेरिस ले जाने तथा अपने डाक्टर मित्र से चिकित्सा कराने की सलाह दी। अगले दिन नन्हे लुई को लेकर माँ-बाप तथा वकील घोड़ों पर सवार होकर पेरिस के लिए निकल पडे। पेरिस मे वकील के मित्र डाक्टर आरमड फोन्टेन ने आँख की पट्टी खोलकर देखते ही कहा, "मुझे दु.ख है, बाई आँख जाती रही है। अब एक हफ्ते बाद पट्टी खोलकर देखना शायद दायी आँख बच जाये। घर आकर पट्टी खोलने पर बालक को कुछ भी नही दिखाई दिया। बायी आँख ने दायी आँख को भी प्रभावित किया। सन् 1812 मे नन्हा लुई,

जबकि वह मात्र साढे तीन वर्ष का था, अंधा हो गया। रोते हुए माँ मोनेका ने कहा, "मेरा बेटा अधा हुआ नही अधा कर दिया गया है।" बालक बड़ा प्यारा, सुकुमार तथा घुंघराले बालों का था।

पिता साईमन रेने गाँव का सम्पन्न और प्रतिष्ठित नागरिक था। वह अपने मित्रों को बडे गर्व से, नन्हे लुई को गोद मे लेकर कहा करता था, "मेरा बेटा घोड़े की जीन घोडे ही बनायेगा, मेरा बेटा तो पादरी या प्रोफेसर बनेगा।" लेकिन बेटा तो अधा हो गया। बाप सिर पीटकर रह गया। नियति का कितना क्रूर मजाक था। लुई के अधा होने का सारा दोष अपना मानकर पिता दुखी रहने लगा। उसने एक बेंत को सफेद करके हृदय पर पत्थर रखकर अपने बेटे को थमा दी। नन्हा लुई अब कुछ बडा होने पर घर पर ही भूगोल और अंकगणित सीखने लगा। वह बडा प्रतिभाशाली था। एक बार पिता के मित्र क्यूरे ने नन्हे ब्रेल के बैठने के ढग से प्रभावित होकर कहा, "बालक कैसी अदा से बेंत को लेकर बैठा है, मुझे बालक मे मानसिक प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं कि भविष्य में चलकर यह बालक महान बने।" अधा होने के पश्चात् ज्यो-ज्यों समय व्यतीत होता गया, वह वस्तुओं के रंगो को विस्मृत करने लगा, रंगो के प्रति अनजान होकर, उसमें रंग की अनुभूति विलुप्त हो गई। कुछेक वस्तुओं की मात्र शक्लें भर याद रहीं। उसके लिए तो "द सन टू मी इज डार्क" हो गया।

एक दिन शाम को पिता रेने, क्यूरे, वकील तथा अन्य लोग बैठे वार्तालाप कर रहे थे कि लुई ने अपने पिता से कहा, "पिताजी, मैं भी स्कूल जाऊँगा।" इस पर लुई बहिन और भाइयो की देखरेख में स्कूल जाने लगा। लेकिन पढाई की व्यवस्था ब्रेल के अनुरूप नही होने से वह पिछड़ने लगा, तथा एक शाम जिद करने लगा कि वह पढने के लिए दूसरे स्कूल जायेगा। निराश पिता, लुई की जिद से तग होकर आवेश मे कह उठा, "बेटे, तुम पागल तो नही हो गये हो, दृष्टिवानों तक के लिए पढाई की पर्याप्त व्यवस्था नही है, तो फिर अधो की पढ़ाई की बात ही क्या ?" अंधों के पढ़ने का स्कूल है कहाँ ? इस पर पिता के मित्र क्यूरे ने कहा, "पेरिस मे अंधो के पढ़ने का स्कूल है। सारे फ्रांस मे वही एक विद्यालय है, जिसको समाजसेवी वेलेन्ताइन हॉय ने "नेशनल स्कूल फोर द यग ब्लाइंड्स" के नाम से चला रखा है। पिता ने पुत्र को आश्वस्त करते हुए कहा कि वे उसके लिए इतना धन छोडकर जायेंगे कि फ्रास के अन्य अंधों की तरह उसे आजीविका के लिए भिक्षा-वृत्ति पर निर्भर नही रहना होगा। वह आजीवन बैठे-बैठे खा-पी सकेगा। ऐसी व्यवस्था वे कर जायेंगे।

लुई की पढ़ने की जिद को पिता रेने नही टाल सका, और एक दिन भारी मन से पेरिस के लिए घोडा गाडी पर रवाना हुए। वे हॉय के अध विद्यालय में पहुँचे, वेलेन्ताइन हॉय ही उसके संचालक और निदेशक थे। उस समय विद्यालय

मे बारह बालक थे। बालक वही रहते थे, वही खाते-पीते तथा शिक्षा प्राप्त करते थे। बालकों से शिक्षण शुल्क लिया जाता था। दो सेवक बच्चो की देख-रेख के लिए थे। हॉय के कहने से एक सेवक लुई को उसके आवास गृह ले गया, पिता ने भारी मन से हॉय से कहा, ''मेरे बेटे को किसी भी बात की तकलीफ न हो, मैं उसकी सुख-सुविधा के लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ।" निदेशक हॉय के आश्वासन पर वे लौट आये।

नन्हे लुई के लिए विद्यालय आते समय माँ ने बड़े प्यार से एक बडी पेस्ट्री तथा भुना मुर्ग एक गठरी मे बांध दिया था। लुई कमरे मे कपड़े बदल ही रहा था कि उसने कमरे मे पांवो की आवाज सुनी—थोडी देर पश्चात् उसने देखा कि उसकी पेस्ट्री और भुना मुर्ग गायब है। इस घटना से उसके नन्हे दिल पर बडी चोट पहुँची। घर से बाहर बाह्य संसार का यह उसका प्रथम कटु अनुभव था। वह असहाय था। वह उसका कैसे प्रतिकार करता, अगर वह देखता तो रोकने का प्रयत्न करता।

विद्यालय में उसने अपने से दो वर्ष बड़े लडके, जीन से, जो नौ वर्ष की उम्र मे अधा हो गया था, मित्रता कर ली। तीसरे दिन जीन ने लुई से कहा, "चलो, बाहर घूमने चलें।" उसने लुई को आश्वस्त किया कि वह सडक पर, भीड़ में, दुकानों पर आने-जाने का अभ्यस्त है। वे एक बेकरी की दुकान पर गये, कुछ फ्रैंक्स उसके पास थे, जो कि लुई की माँ ने उसको आते समय दिये थे। वे बेकरी वाली से रंग-बिरंगी केक्स एक कागज की थैली मे लेकर लौट ही रहे थे कि कुछ आवारा लडकों ने उनको छेड़ना शुरू कर दिया। एक ने लुई की पीठ पर, दूसरे ने सिर पर मुक्के मारे। कोई तीसरा हाथ की थैली ही लेकर चलता बना, कुछेक जो, अंधे भिखारी! ओ, अधे भिखारी! कहकर उन्हे चिढा रहे थे। किसी ने गोबर तो किसी ने पत्थर उन पर फेंके। हॉय ने जब यह दृश्य देखा तो दौड़ते हुए आये और इन दोनो को उन दुष्टों से बचाया। नन्हा लुई हतप्रभ रह गया। वह समझ नही सका कि क्या हो गया था। उन्हे किस अपराध की सजा दी जा रही थी। लुई ने जीन से पूछा, "हमारे साथ ऐसा बुरा व्यवहार क्यों किया जा रहा है।" तो जीन ने कहा, "हम अधो के साथ इस प्रकार का व्यवहार कोई नयी बात नहीं है, ऐसा तो होता ही रहता है।" बाह्य ससार का, यह लुई का दूसरा कटु अनुभव था।

शाम को जब सभी खाने पर बैठे तो उसने महसूस किया कि सभी के कपो मे सूप डाला जा रहा था। उसने अपने कप मे भी सूप परोसे जाना महसूस किया, लेकिन जब उसने अपना हाथ कप मे डाला तो उसमें सूप नही था, कप खाली था। उसने जीन से कहा, "मुझे सूप नही परोसा गया" जीन ने बात को टालने के लिए। कहा, "तुम मेरा सूप ले लो।" लुई ने सूप लेने से इन्कार कर दिया तथा भूख नही

होने का बहाना बनाकर अपने कमरे में चला आया। और फूट-फूट कर रोने लगा। वह अपने आपको सहन नहीं कर पा रहा था। कहाँ घर का ममता भरा वातावरण, और कहाँ यह बाह्य संसार की कटु वास्तविकता। संसार कितना हृदय-हीन है। ऐसे वातावरण में वह वहाँ नितांत अकेला, माँ-बाप से दूर, घर की याद मन में सँजोये अकेला कैसे रहे, यहाँ घर की ममता व संरक्षण कहाँ था। आवेग में आकर वह बेकरी वाली के पास गया और अपने पिता के नाम पत्र लिखने को कहा।

प्रिय पिताजी,

आप शीघ्र आयें, मुझे ले जायें, मैं यहाँ नहीं रह सकता। मैं बहुत दुखी हूँ। पेरिस वालों के लिए अंधे व्यक्ति जानवरों से भी बदतर होते हैं, वे उनके साथ क्रूर मजाकें करके मनोरंजन करते हैं। मैं भूखा हूँ, मुझे ठंड लग रही है। यहाँ नौकरों ने मुझे लूटा, आवारा लड़कों ने मेरे केक छीने, हमें पत्थर मारे व हमारे ऊपर गोबर फेंका, अब मैं यहाँ नहीं रह सकता।

आपका प्रिय
लुई ब्रेल

कारण विशेष से पत्र डालने में विलम्ब हो गया। इसी बीच वह यहाँ रहने का अभ्यस्त हो गया। यहाँ का वातावरण अब उसे इतना बुरा नहीं लगने लगा। घर की याद भी कम होती गई। अतः उसने वहीं रहने का निर्णय कर अध्ययन करना शुरू कर दिया।

संस्था निदेशक वेलेन्ताइन हॉय वृक्षों की टहनियों को तरह-तरह से मोड़कर उनसे फ्रेंच वर्णमाला के अक्षरों का निर्माण करते थे, तथा अंधे बालकों की हाथ की अँगुलियाँ उनसे फिरवाकर, उन्हें अलग-अलग अक्षरों से परिचित कराते। टहनियों से बने ये अक्षर बहुत बड़े होते थे। इसके पश्चात् उनको उभरे अक्षरों से अभ्यास कराया जाता था, ये उभरे अक्षर हमारे आज के समाचार पत्रों के शीर्षकों के बड़े-से-बड़े अक्षरों जैसे होते थे, जो बहुत जगह घेरते थे। अंधों के पढ़ाने के लिए कई प्रयत्न किये जा रहे थे तथा कई विधियाँ उस समय प्रचलन में थीं जैसे गाल प्रणाली, मून प्रणाली, डा० फ्रेल प्रणाली आदि। इन पर विचार तथा इनका विकास किया जा रहा था ताकि दृष्टिहीन व्यक्ति पढ़ लिख सकें। सभी तरीके किसी न किसी प्रकार से उभरे अक्षरों के ही प्रकार थे, जो कि ब्रेल के अनुसार दृष्टिवानों के लिए उपयुक्त थे। मूल समस्या थी दृष्टिहीनों के लिए ऐसी वर्णमाला का निर्माण, जिसको पढ़ने के साथ लिखा भी जा सके, अन्यथा उभरे अक्षरों से तो मात्र पढ़ा ही जा सकता था, उनके द्वारा लिखा जाना तब तक असम्भव था। विद्यालय के पुस्तकालय में उभरे अक्षरों पर आधारित तीन पुस्तकें थीं। जिन्हे

लुई ने पढ़ लिया था। पिता को लिखने पर लुई को चमड़े में कटे अक्षरों का एक पार्सल मिला। उन अक्षरों को मिलाकर लुई ने पहली बार अपना नाम "मेरा नाम लुई ब्रेल है" पढ़ा। साथ ही वह इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषयों पर अध्ययन करता रहा।

एक दिन लुई ने निदेशक हॉय से कहा, "सर, अब मैं ग्यारह वर्ष का हो गया हूँ—"रेमण्ड द फोवन"—पुस्तक में मेरी रुचि नहीं, कुछ ऊँचे ज्ञान की पुस्तकें पढ़ने के लिए दें।" वेलेन्ताइन हॉय जो कि इस विद्यालय का खर्चा वहन कर रहे थे, अपना समय इसके संचालन में दे रहे थे, उनकी तीव्र इच्छा थी कि दृष्टिहीनों के पढ़ने लिखने की कोई सुगम विधि उन्हें मिल जाये। चिन्तित होते हुए लुई से कहा, "मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम्हें किसी प्रकार लिखना आ जाये, वह लिखावट चाहे कितनी ही खराब ही क्यों न हो।" हॉय लुई की प्रतिभा को प्रशंसा की नजर से देखते थे। वे लुई की संगीत प्रतिभा तथा उसके दृष्टिहीनों की सहायता के संकल्पों से बड़े प्रभावित थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि लुई दृष्टिहीनों के लिए कुछ करेगा, जो नवीन होगा। लुई हफ्तों, महीनों व वर्षों तक दृष्टिहीनों के लिए—"लिखना-सीखने" के लिए सोचता रहा। उसका यह विश्वास था कि दृष्टिवानों का लिखने-पढ़ने का तरीका दृष्टिहीनों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। क्योंकि हाथ की अंगुलियाँ आँख के बराबर तेज रफ्तार से बड़े उभरे अक्षरों पर फिराई नहीं जा सकती हैं, अतः अन्य तरीकों की उसे तलाश थी।

हॉय ने लुई की संगीत प्रतिभा से प्रभावित होकर उसे यूरोप की प्रसिद्ध प्यानोवादिका "वॉन पेरेडिस" से प्यानो तथा आर्गन सीखना शुरू कराया। सन् 1821 तक शुरू-शुरू में विद्यालय कार्य को समाप्त कर, वह एक दिन में एक बार संगीत सीखने के लिए चर्च जाता था। लेकिन लुई की संगीत प्रतिभा से प्रभावित होकर, शिक्षिका अब नियमित दिन में दो बार बुलाने लगी। इस प्रकार लुई का जीवन व्यस्त हो चला।

लुई की इस प्रकार प्रशंसा, तथा उसकी विशेष शिक्षा-दीक्षा देखकर उसके ही दृष्टिहीन साथी उससे ईर्ष्या करने लगे। एक दिन संगीत शिक्षक को लेकर वह चर्च के होस्टल लौटा। उसके सभी साथी उसके आने का इन्तजार कर रहे थे। ज्योंही उसने होस्टल में कदम रखा कि उन्होंने लुई की बड़ी भर्त्सना की और कहा, "बेटे, जमीन पर पाँव रखकर चलो, यों हवा से मत उड़ो। यह मत भूलो कि तुम अंधे हो, फ्रांस के हर अंधे की तरह, तुम्हें भी भिखारी बनना होगा, यही तुम्हारा व्यवसाय होगा।" ईर्ष्या के आवेग में अर्नेस्ट ने उसकी बेंतों से इतनी पिटाई कर दी कि वह तीन दिन तक बिस्तर पर पड़ा रहा। वेलेन्ताइन हॉय जब इन बालकों से मिले तो उनको खूब फटकारा, "दुनिया की मार क्या कम है कि तुम आपस में एक-दूसरे को मारो।" लुई जब अकेले में हॉय से मिला तो उसने उनसे कहा, "आपने

विद्यालय मे जानवरो को इकट्ठा कर रखा है, मैं अन्य अपंगों की तरह नही हूँ, मैं एक सगीतकार हूँ।" हॉय ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "होस्टल मे बच्चे भी अन्य बच्चो की तरह थोड़े-बहुत शैतान है ही, लेकिन अंधेपन ने उनमे एक आक्रोश भर दिया है जिसके कारण वे अधिक निर्दयता का व्यवहार करने लगते है, वर्ना उनका मकसद तुम्हे हानि पहुँचाने का कदापि नही था।" हॉय की बात का लुई पर विपरित प्रभाव पडा, उसमे प्रतिशोध की भावना प्रबल हो चली। रात को जबकि अर्नेस्ट सो रहा था, तो लुई ने उस पर बैंतों की वर्षा की। शोर सुनकर होस्टल के सभी छात्र, कर्मचारी दौड़कर आये। हॉय ने डाटकर कहा, "तुमने ऐसा किया ?" साथ ही उसके दो-एक चप्पतें भी जमा दी। अब तो छात्र उसकी मजाक उडाने लगे। लुई, हॉय द्वारा पिटे जाने, तथा साथियो द्वारा उपहास का पात्र बनाये जाने का अपमान तथा प्रताडना को सहन नही कर सका और रात के अँधेरे मे जब कि सभी सो रहे थे वह चुपचाप विद्यालय से भाग निकला।

लुई अभी बच्चा ही था, मात्र तेरह वर्ष का। सर्द चेहरा, कृश शरीर, माँ-बाप से बहुत दूर, नितान्त अकेला, पास मे कानी कौड़ी नही। घर की याद घनी हो आयी। रात कहाँ गुजार दी पता नही। "प्रात.काल हो चला था कि पीछे से एक जोर का मुक्का मुझ पर पडा।" सब्जी विक्रेता, बुचर्ड डॉट कर उसे कह रहा था, "दूर हट, अंधे भिखारी मुझे दूकान लगानी है।" भूखा, रातभर का जगा लुई अपनी संज्ञा खोने लगा। बडी मुश्किल से उठा, तथा बडे अनुनय-विनय से उसे समझाया कि वह भिखारी नही है, वह तो काम चाहता है। भाग्य से बुचर्ड को भी एक नौकर की आवश्यकता थी। उसने लुई को अपने सब्जी भडार में सोने और दिन के एक समय के भोजन पर नौकर रख लिया। काम था, सडी-गली तथा अच्छी सब्जियो को अलग करना, और रात को वही सब्जियों के ठेले पर सो जाना। रात को बड़े-बडे चूहे उसको बडा परेशान करते थे, लेकिन वह विवश था, जाता तो कहाँ जाता। एक दिन मालकिन आयी। कैंची लेकर, "हब्शी जैसा दिखता है" ऐसा कहकर उसने बढे हुए बालों को काट डाला, तथा कहा कि बड़े बालो के कारण सब्जी बिक्री पर खराब असर पड़ रहा था। एक दिन बुचर्ड ने कहा, "बडे मोटे हो रहे हो।" स्वाभिमानी लुई ने जवाब दिया, "तुम्हारे दिन मे एक समय के खाने से नही।" मालिक प्रत्युत्तर से तिलमिला गया, उसने एक जोर का मुक्का लुई के मारा। लुई ने भी बेंत उठाकर उस पर वार किये और चलता बना। सामने दीवार मे जा टकराया; खून निकल आया। अपने स्कूल का पता पूछता-पूछता वह चार माह बाद वापस विद्यालय लौट आया। निदेशक हॉय, उसके मित्र अर्नेस्ट तथा सभी ने आँखों मे आँसू तथा सुबकियों से स्वागत किया, और प्रत्येक ने अपने गले लगाया।

अब लुई चौदह वर्ष का हो गया था, आर्गन पर खूब रियाज करने लगा। एक

दिन संगीत शिक्षक ने उससे कहा, "अब तुम्हे सिखाने को मेरे पास कुछ नही है।" अत: उसने दृष्टिहीनो को संगीत सिखाने का कार्य अपने हाथ मे ले लिया। इसी बीच वेलेन्टाइन हॉय की दिल के दौरे से मृत्यु हो गयी। लुई के लिए यह वज्रपात-सा था, और नये डाइरेक्टर ने विद्यालय सम्हाला।

फ्रांस युद्ध मे फँसा था। सरकार ने विद्यालय को पाँच घटे तक बदूक की गोलियाँ बनाने का कार्य अनिवार्य रूप से सौपा। लुई आर्गन के लिए अधिक समय चाहता था, उसने नये निदेशक से प्रार्थना की कि उसे बदूक की गोलियाँ बनाने के कार्य से मुक्त कर दें तो बडी कृपा होगी। उसे आर्गन के रियाज के लिए समय चाहिए था। निदेशक महोदय ने कहा, "तुम मे संगीत प्रतिभा है, यह मुझे अच्छी तरह से मालूम है, लेकिन अन्य छात्रों से अधिक नहीं। जाओ, मुझे परेशान मत करो और जो कहा जाये वही करो।"

हॉय की पुण्य तिथि पर उसने 'मृत्यु-गीत' नामक संगीत रचना को आर्गन पर बजाई। इसी बीच जीन, जो उसका मित्र था और पिता की मृत्यु हो गयी। वह अपने गाँव गया। माँ तथा भाइयो ने उसे गाँव में ही रोकना चाहा, "तुम हमारे पास रहो, जिन्दगीभर आराम से रह सको इतनी सम्पत्ति है।" लेकिन वह उस गाँव मे क्या करे, वहाँ उसके लिए कुछ भी काम नही था। विधि का कुछ और ही सकेत था। और एक दिन वह आराम की जिन्दगी छोड़कर, संघर्ष का जीवन जीने लौट आया। अभी होस्टल मे आये हुए कुछ ही दिन हुए कि सूचना मिली कि उसकी माँ की कैंसर से मृत्यु हो गयी है, और लुई अब बिलकुल अनाथ हो गया था।

विद्यालय निदेशक, रिचर्ड वेयेनेट ने लुई की, विद्यालय छात्रो को आर्गन सिखाने के पद पर नियुक्ति कर दी थी। सेवा मे प्राप्त धन से वह संगीत रचनाकारो की प्रतियाँ खरीदता, संग्रहालय मे जाकर अक्सर उन महान कलाकारों की मूर्तियों पर हाथ फिराता, और कल्पना लोक मे खो जाता। स्वप्न देखता कि, भविष्य की संतति के लिए, स्वयं भी एक मूर्ति होगा। यही नही अतिरिक्त आमदनी मे वह दो गरीब छात्रो का शिक्षण शुल्क देने लगा। लुई अभी सोलह वर्ष का ही था कि विद्यालय मे आये नये निदेशक, जर्मनी के लियोरोल्ड, जो शराबी था, विद्यालय का कार्य लुई को सौपकर निश्चिन्त हो गया।

इधर बेकरी व्यापारी की लड़की, डेनिज, लुई की संगीत प्रतिभा, उसके सुन्दर तथा कृश चेहरे, घुघराले बाल, उसके आँखों के विनीत भाव तथा उसके नाटकीय ढंग से ऊपर देखने की अदाकारी पर रीझकर उससे खूब प्रेम करने लगी। लुई डेनिज को बुद्धिमान समझता था। अब दोनों का ही अधिकांश समय साथ-साथ बीतने लगा। डेनिज लुई का सहारा बन गई थी। एक दिन उसने भावावेश मे कह दिया था, "लुई, मैं तुम्हारी आँख हूँ।" लुई उसे चर्च ले जाता, होटलों मे खाना

खिलाता और उसे सगीत सुनाता। उसने वायलिनसेलो खरीदकर डेनिज को सगीत सीखने के लिए भी दिया।

स्थानीय शिक्षक थायब्रोड ने एक दिन लुई से कहा, "लुई! तुम प्रतिभाशाली, बुद्धिमान तथा सम्पन्न हो। फ्रांस की इस नवजागरण की वेला में इन दृष्टिहीनों के लिए कुछ करो, ताकि तुम्हारे बताये हुए रास्ते से ये पढ-लिख सकें—उस नई पद्धति की खोज तुम करो।" लुई ब्रेल ने प्रत्युत्तर में कहा, "हम अंधे लोग दृष्टिहीनों के लिए पढने-लिखने के लिए नये तरीके कैसे खोज निकालें, यह तो आँख वालों का कर्त्तव्य है, कि वे इस दिशा मे सोचें, खोज करें।" और डेनिज की तरफ मुड करके कहा, "डेनिज तुम सच मानना, जो समाचार पत्र तुम मुझे पढकर सुनाती हो, उसका आधा भाग भी मेरी समझ में नही आता है। ये बदलते हुए रग, ये चेहरे की लाली क्या होती है? सूर्योदय व सूर्यास्त पर सूर्य कैसा सुन्दर होता है? हमारे से तो ये कीडे ही अच्छे हैं, जो रेंगते है लेकिन देखते तो है।" और आवेग मे वह रोने लगा, "मैं अंधा हू, मैं कैसे देखूं। दृष्टिवालों का ज्ञान, विज्ञान और कलाओं का जानना यदि मेरे लिए असम्भव है, तो मैं स्वयं को मार डालूंगा, मैं जिन्दा नही रहूँगा—लेकिन जिस तेजी से आँखें अक्षरों को पढ़ती है, उस तेजी से अगुलियाँ उभरे अक्षरो पर कहाँ घूम पाती हैं"—इस समस्या का हल उसे हर समय घेरे रहता था।

छुट्टियो के दिन थे, लुई अपने गाँव कूपवे गया। माँ-बाप का पहले ही देहान्त हो चुका था, भाई दूकानें चला रहे थे। पिता के वकील मित्र लामन शार ने लुई को एक दिन अपने यहाँ खाने के लिए आमन्त्रित किया। जब वह खाने के लिए अपने घर से रवाना हुआ, तो रास्ते मे एक अधा व्यक्ति मिल गया। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् लुई ने उससे कहा, वह वकील के घर खाना खाने जा रहा है, यदि वह चाहे तो वह भी चले, इस पर वह भी साथ हो गया, खाना खाने के बाद वकील ने लुई से नाराजगी प्रकट करते हुए कहा। "तुम उस अंधे को मेरे यहाँ क्यो लाये। वह तो भिखारी है, अंधा है, भीख उसका धंधा है, तुम्हे ऐसा नही करना चाहिए था।" लुई क्षणभर को हतप्रभ हो गया, वह सोचने लगा, यदि वह भिखारी है, सड़क पर मारा-मारा फिरता है, तो मैं यहाँ क्यों हूँ। मैं भी तो अंधा हूँ, उसी वर्ग का हूँ, उन्ही जैसा हूँ। वे कुत्ते के समान इधर-उधर मारे-मारे फिरें और मै मौज से शौक भोज उडाता फिरूँ, यह अंध समाज का क्रूर मजाक है, जिसका मैं भी एक अग हूँ। मेरा अन्त करण मुझे धिक्कार रहा है, मै स्वयं दोषी हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने दृष्टिहीन भाइयों को अब कभी नही भूलूंगा, उनके अभाव-अभियोगों को झेलूंगा।" इस प्रतिज्ञा को उसने जीवनभर निभाया।

फ्रांस में नेपोलियन का पतन हो गया था। नवयुग का सूत्रपात हुआ जिसमे विज्ञान, दर्शन तथा कलाओ ने जन्म लिया। वह आठ वर्ष तक लगातार सगीत की

साधना करता रहा। फलस्वरूप वह एक बहुत बड़ा आर्गेनिस्ट और वायलिन सैलो वादक बन गया, तो भी एक संगीतज्ञ के रूप में उनको मान्यता नहीं मिली। इसके विपरीत सारी लोग व्यंग्य करते थे, "संगीतज्ञ बनने के लिए प्रतिभा चाहिए अधापन नहीं।"

लुई ब्रेल के सम्मुख मुख्य समस्या थी—दृष्टिहीन कैसे लिखना-पढ़ना सीखे। दृष्टिवानों के तरीकों पर आधारित उभरे अक्षर उनके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थे। दृष्टिहीनों का रास्ता एकदम अलग ही होना चाहिए, यह प्रश्न उसको हमेशा परेशान करता था। सन् 1826 में मात्र सत्रह वर्ष की आयु का होने पर, एक दिन डेनिज हमेशा की तरह समाचार पत्र पढ़ कर सुना रही थी। वे एक कैफे में बैठे थे। समाचार था कि—चार्ल्स वारबियर, जो एक सैनिक टुकड़ी का कप्तान था किस प्रकार उभरे संकेत काम में लाकर, दूसरे सैनिक शिविरों को संवाद भेजता था, जो रात के अँधेरे में भी पढ़े जा सकते थे। जैसे उभरा त्रिभुज यह संकेत देता कि तीन ओर से आक्रमण होने वाला है या कि दायें अथवा बायें से आक्रमण या सेना आ रही है आदि। लुई ने डेनिज को उस समाचार को वापस पढ़ने के लिए कहा। क्षणभर में सारी समस्या का हल जैसे उसको सूझ गया हो। वह जोर-जोर से आवेश में आर्कमिडीज की तरह 'यूरेका', 'यूरेका' चिल्लाने लगा। कैफे के मालिक ने बड़ी कठिनाई से उसे शान्त किया। उसे क्या मालूम था कि उस क्षण विश्व में एक ऐसी खोज ने जन्म लिया, जो विश्व के दृष्टिहीनों को सदियों तक दृष्टि प्रदान करता रहेगा। लुई तथा डेनिज, वारबियर का पता लगाकर उसके यहाँ जा पहुँचे। लुई तीन वर्ष तक वारबियर विधि पर कठिन परिश्रम करता रहा।

लुई ने डेनिज से कहा, "मात्र सात स्वरों से जब संगीत की सभी रचनायें गाई-बजाई जा सकती हैं तो क्यों नहीं कुछ उभरे बिन्दुओं से दृष्टिहीनों की वर्णमाला बन सकती है और उनके लिए नये शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। और लुई का पूर्व मत कि "दृष्टिहीनों को दृष्टिवानों के पढ़ने-लिखने के तरीके से शिक्षित नहीं किया जा सकता है, पूर्णतः सत्य निकला, और एक दिन उसने ब्रेल सैल की रचना कर ही डाली। एक लकड़ी की पट्टी पर छः छेद वाली टीन की पत्ती के बीच में एक मोटा कागज लगा दिया जाता है। एक नुकीली सुई से जिसे स्टाइलस कहते हैं के छः बिन्दुओं से भिन्न-भिन्न क्रम, समय और संयोग बनाकर, उभरे ब्रेल शब्दों की रचना की गई। लिखा दायें से बायें ओर, और पढ़ा बायें से दाहिने ओर। ब्रेल ने उस समय 43 चिह्नों को काम में लिया था। जिसमें सभी अक्षर, संयुक्त अक्षर और विराम चिह्न थे। इसमें भी दस मुख्य चिह्न थे। इस लिपि को उसने 1829 में पहली बार तथा कुछ सुधार करके 1831 में दूसरी बार प्रकाशित किया। 1832 तक यह दृष्टिहीनों का युनिवर्सल ब्रेल कोड बन गया, लेकिन इसको राजकीय मान्यता तो नहीं मिल सकी।

लुई ब्रेल ने कठोर साधना के पश्चात् दृष्टिहीनो के पढने-लिखने की एक नई पद्धति को खोजकर, उसको विकसित कर ली थी। अब वह उस नई लिपि को प्रचारित, प्रकाशित और परीक्षण कराना चाहता था। इसके लिए अपने ही विद्यालय के निदेशक, डा० ला० पोर्टे से प्रार्थना की कि वे उस विद्यालय के छात्रो व शिक्षकों के सम्मुख दृष्टिहीनो के लिए नई लिपि का प्रदर्शन करने की आज्ञा दें। और एक दिन छात्र, शिक्षक और विद्यालय निदेशक सभी के सम्मुख लुई ने इस प्रकार अपनी लिपि का प्रदर्शन किया। लुई ने अपने पास बैठे व्यक्ति से कोई पुस्तक लेकर, कही से उस पुस्तक को खोल कर किसी पैराग्राफ को पढने के लिए कहा, और लुई अपने लकडी के चौखटे पर टीन की पत्ती के छेद से, नुकीले पिन से मोटे कागज पर पच करता रहा। ये यत्र बाद मे स्लेट व स्टाइलस कहलाये। वह पढता जाता था और लुई पच करता जाता था। पैराग्राफ के पूर्ण पंच कर लेने के पश्चात्, सभी के सम्मुख ब्रेल ने, उन उभरे सकेतो पर हाथ फिराकर पूरा पैराग्राफ पढ गया। टिप्पणी के लिए निदेशक की ओर देखा। डा० ला० पोर्टे ने कहा, "यह सब पाखड है, धोखा है। लुई ने इस पैराग्राफ को पहले से ही रट रखा था।" लुई ने बहुत अनुनय-विनय किया कि, अन्य किसी पुस्तक से कोई पैराग्राफ पढवाकर इस प्रयोग को वापस करवा कर देखें। लेकिन निदेशक ने उनकी एक नही सुनी, और हिदायत दे दी कि भविष्य मे ऐसा प्रयोग, इस विद्यालय में कदापि न करें।

लुई निजी रूप से इस विधि से दृष्टिहीन छात्रों को पढाने-लिखाने लगा। छात्र बडी सरलता और शीघ्रता से इस विधि से पढ़ने लिखने लगे। यह विधि उनको बडी सरल तथा सुगम लगी। सगीत के नोटेशन्स तो इस विधि से और भी सरलता से व्यक्त किये जा सकते थे। अत इस विधि की चर्चा होने लगी, और यह चर्चा डा० ला० पोर्टे तक पहुँची। उन्होंने लुई को बुलाकर डांटा, "हमारा विद्यालय दृष्टिहीनों को उभरे अक्षरो पर आधारित पद्धति से शिक्षण देता रहा है, इसी पद्धति पर शिक्षण सामग्री है, इसी पद्धति से छात्र पढे है और पढ रहे हैं, और सरक्षको से इसी का हमने शिक्षण शुल्क लिया है। क्या तुम चाहते हो कि विद्यालय की सारी व्यवस्था उलट दूं, उभरे अक्षरो की पद्धति से सीखें हुओ को बिना सीखे हुओ मे परिवर्तित करके, उन्हे तुम्हारी पद्धति से वापस शिक्षण दूँ, एक जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह कैसे सभव है। तुम मेरी स्थिति समझो, एक विद्यालय निदेशक के लिए क्या यह संभव है। मैं एक विद्यालय प्रधान होने के नाते तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि तुम भविष्य मे इस प्रकार का बखेडा मेरे विद्यालय में कभी नही करोगे।"

सभी तरफ से निराशा ही हाथ लगी। उसकी वर्षों की साधना निष्फल रही। अब उसके पास कुछ भी पैसा नही बचा था। धन एकत्रित करने के लिए उसने

संगीत कन्सर्ट किये। कुछ पैसा इकट्ठा करके, एक बार फिर लिपि के कार्य में लग गया।

उसने पेरिस की रॉयल सोसायटी को लिखा कि दृष्टिहीनों के पढ़ने-लिखने के लिए उसकी एक खोज है—कुछ समय पश्चात् रोयल सोसायटी ने उसको पत्र वाचन के लिए आमंत्रित किया। निश्चित तिथि पर वह डेनिज के साथ बड़े विश्वास के साथ वहां गया। एक बड़े हॉल मे अध्यक्ष के सम्मुख कई सारे पत्र-वाचक बैठे थे, पत्रवाचन शुरू हुआ, उस समय एक वैज्ञानिक ने, पानी के गुण-धर्म पर पत्र पढा दूसरे ने, इग्लिश चेनल गुब्बारे से कैसे पार करें, तीसरे ने फ्रांस मे शराब के खराब होने के कारणों पर, चौथे ने वाष्प शक्ति के उपयोग पर। कई पत्र पढे गये थे। कभी किसी पत्र पर चर्चा और शक निवारण भी होता। इस प्रकार प्रत्येक पत्रवाचक पत्र पढकर बैठ जाता था। अब लुई की बारी थी। अध्यक्ष के कहने से पास ही पड़ी जीव विज्ञान की पुस्तक को खोलकर, एक व्यक्ति ने धीरे-धीरे एक पैराग्राफ पढना शुरू किया। उसने सुंये हाथो से पच करना शुरू किया। पूरा पैराग्राफ पढ जाने पर लुई ने उस पैराग्राफ को ज्यों-का-त्यों वापस उभरे संकेतों पर अगुलियां फिरा कर, सभा के सामने वापस पढ दिया, और वह अपनी जगह आकर बैठ गया। किसी ने उसे धन्यवाद तक नही दिया, किसी से भी प्रेरणा का कोई शब्द तक नही निकला। और भारी मन से वह डेनिज के साथ घर लौट आया। उसकी वर्षों की साधना और खोज का कुछ भी परिणाम नही निकला। उसे सफलता नही मिली, जबकि वह डेनिज को बड़े उत्साह के साथ कहा करता था, "मै विश्व इतिहास का प्रथम दृष्टिहीन व्यक्ति हूँ, जो वास्तव मे पढ लिख सकता हूं, मैं इतिहास का दृष्टिहीनो में सबसे सभ्य और शिक्षित व्यक्ति हूँ।" लेकिन ये स्वप्न यथार्थ की भूमि पर टूट कर चकनाचूर हो गये।

लुई का खोज का कार्य समाप्त हो गया। डेनिज, जो उसकी आँखें बन गई थी, उसको प्रेरित करती थी, जो सदैव उसके कार्य की सहयोगिनी थी। एक दिन जब लुई बैठा था. कहने लगी, "लुई, मैंने तुम्हारा बहुत इन्तजार किया है।" लुई ने प्रदर्शन हेतु उसका चुम्बन लेते हुए कहा, "डेनिज, मैं हमेशा तुम्हारा आभारी रहूँगा, मेरे जीवन मे स्त्रियों को कोई स्थान नहीं है, मुझे कुछ कार्य करने हैं, तुम किसी अन्य से शादी करलो।" वह चली गई। लेकिन लुई उसे जीवन भर नहीं भूल सका, क्योंकि वह लुई के बहुत दिनों के संघर्ष की साथिन थी। कुछ दिनों तक उसकी याद इतनी तीव्र व घनी रही कि उसकी याद में लुई ने सोनेट लिखा और वायलिन सैलो पर बजाया।

डेनिज के चले जाने के थोड़े ही दिन बाद बाइस वर्षीय काउन्टेस लाफिगा नामक धनाढ्य विधवा उसे प्रेम करने लगी। वह ब्रेल को घोड़ागाडी पर लाती और ले जाती थी। एक दिन उसके द्वारा प्रेम-प्रदर्शन पर डेनिज की तरह उसे भी यह

दिया कि स्त्रियों और सुख का उसके जीवन में कोई स्थान नहीं है। लाफिमा ने घोडागाडी रोककर उसे रास्ते में ही उतार दिया तथा क्रोध से चपत लगाते हुए कहा, "तुम मूर्ख हो, अपने को खुदा समझते हो, लेकिन खुदा तो एक ही है।" लुई ने विनम्र शब्दों मे कहा, "भूल जाओ।" और अकेला चला गया। कुछ दिन बाद तीसरी लडकी जोर्जीटा—जो उसकी संगीत शिष्या भी थी उससे प्रेम करने लगी। लेकिन हर बार उसने एक युग निर्माता, एक युग सृष्टा जैसा आचरण किया। वह सोचने लगा कि उसके जीवन मे आमोद-प्रमोद के लिए समय ही कहाँ है? उसको तो दृष्टिहीनो के पढने-लिखने तथा संगीत शिक्षण के लिए बहुत कुछ करना था।

लुई रॉयल एकादमी के अपने प्रदर्शन के बाद सन् 1839 में एक दृष्टिहीन युवा लडकी, थेरेस वॉन क्लिनर्ट को वायलीन सेलो और आर्गन सिखाया करता था। कुछ वर्षों बाद पेरिस के सम्पन्न तथा विद्वद्जन के सम्मुख, वॉन क्लिनर्ट का संगीत प्रदर्शन हुआ। उसके संगीत प्रदर्शन ने सभी का मन मोहित कर लिया। अन्य दृष्टिहीन संगीतज्ञों से उसका अँगुली फिराकर किसी संगीत रचना को बजाने का तरीका भिन्न था। वह लुई ब्रेल की शिष्या थी। उसके संगीत कम्पोजीसन बजाने की विधि ब्रेल के आधार पर थी। सभी श्रोताओं द्वारा प्रशसित होने पर वॉन क्लिनर्ट ने श्रोताओं से कहा, "मेरी प्रशंसा के बजाय उस लुई ब्रेल की प्रशसा करें, जो पेरिस में दूर किसी अज्ञात कमरे में अपने अंतिम दिन गिन रहा है। पेरिस के समाचार पत्रों मे वॉन क्लिनर्ट व लुई ब्रेल की धूम मच गयी। वास्तव में सन् 1835 के कठिन परिश्रम और निराशा के कारण वह टी.बी. मे आक्रान्त हो गया था। 1851 तक आते-आते उसका ससार सिकुडकर एक कमरा बन गया था। मृत्यु के एक दिन पूर्व पाँच जनवरी को उससे मिलने, एक कम्पोजर, एक पत्रकार और एक दुकानदार आया, ऐसा गृह स्वामिनी ने कहा। वह देख रही थी कि पिछले कई दिनो से लुई की खाँसी लगातार बढती जा रही है, वह खाँसता ही रहता है। लेकिन 6 जनवरी की सुबह, जब बहुत देर तक खाँसी की आवाज नही सुनाई दी तो गृहस्वामिनी उसके कमरे मे गयी। देखा वह मरा पडा था। शरीर खूब ऐंठा हुआ था। 6 जनवरी को 43वर्ष की आयु मे उसने संसार त्याग दिया। उसने अपना आधा धन, जो कुछ भी उसके पास था, अपनी गृहस्वामिनी के नाम लिख रखा था, क्योंकि अंतिम दिनो मे उसने ही तो उसकी देखरेख की थी। उसको अपने गाँव कूपवे ले जाकर दफना दिया गया किसी को मालूम तक नही हुआ कि कौन दफनाया गया था।

उसकी मृत्यु के दो वर्ष बाद उसके दृष्टिहीन शिष्यों ने पढने-लिखने के लिए डोट सिस्टम लागू करने की माँग की। दृष्टिहीनो की शिक्षा की बढती माँग के कारण लिपि के झगडे ने जोर पकड़ा। यूरोप, अमेरिका और इग्लेण्ड के नेत्रहीन शिक्षा के शिक्षा-शास्त्रियों ने दृष्टिहीनों की लिपि ब्रेल के पक्ष मे कई दलीलें रखी

तथा अपने तर्कों से उसे उभरे अक्षरों से अधिक सुगम, वैज्ञानिक और श्रेष्ठ घोषित किया—लिपि का यह संघर्ष यूरोप, इंग्लैण्ड और अमेरिका में 30 वर्ष तक चलता रहा। अंत में ब्रेल लिपि की श्रेष्ठता घोषित होकर उसे [illegible] ब्रेल कोड की मान्यता मिली। उसके बाद तो विश्व का [illegible] है, जहाँ दृष्टिहीनों को ब्रेल लिपि में शिक्षण [illegible] जाता हो।

लुई ब्रेल की 30 वर्ष की श्रम साधना [illegible] इतना अधिक कल्याण किया कि शताब्दियों [illegible] भिक्षा नगण्य है। वह दृष्टिहीनों का भाता हुआ। [illegible] भावना में वह मरा किसी ने उसको नहीं [illegible] नहीं लिये। वह अंतिम समय तक लोगों के [illegible] ऊँचाई को ये दृष्टिहीन भाई-बहन छू रहे हैं [illegible]

हमारी कौमी एकता

प्रेम 'खडगध्वज'

काश्मीर के नील धवल शिखरों से लेकर मनीषी विवेकानन्द की पावन साधना स्थली कन्याकुमारी तक, अरुणाचल के सघन वनों से सीमा के सजग प्रहरी थार के मरुस्थल तक विस्तारित विस्तृत भूभाग। मैदानों, पर्वतों, नद-नदियों, सघन जंगलों के रंग-बिरंगे वस्त्रों में सज्जित मेरी भारतमाता, अनेक धर्मों, जातियों, भाषाओं, वर्गों, सम्प्रदायों का अनूठा संगम, आर्यावर्त, भारत, हिन्दुस्तान, इण्डिया।

समय की शिला पर अंकित प्राचीनतम संस्कृति का शिलालेख, अनेक धर्मों, सम्प्रदायों और संस्कृतियों की साधना स्थली, भारत।

सहस्राब्दियों पूर्व वैदिक ऋचाओं के उद्गाता ऋषियों ने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के मन्त्र द्वारा समाज को एक व्यवस्था दी।

ब्राह्मणो मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद् वैश्य पद्भ्याऽ शूद्रोरजायतः॥

उस आदि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैरों से शूद्रों ने जन्म लिया। अर्थ का वास्तविक भाव यह है। मानसिक शक्तियों से सम्पन्न वर्ग समाज रूपी पुरुष का मुख, बाहुबल से सम्पन्न वर्ग इसकी भुजायें, कर्मशील और धनार्जन में सक्षम वर्ग इसका उदर व सेवा के गुणों से युक्त वर्ग इसके पैर हैं। कितनी उदात्त और शाश्वत व्यवस्था है। किसी एक अंग की अवहेलना समाजरूपी शरीर को विकृत कर देगी। इस समाज रूपी शरीर रथ के सुसंचालन हेतु अंगों का परस्पर सामञ्जस्य परमावश्यक है। पैरों के बिना सम्पूर्ण शरीर विकलांग है। तो हरिजनों के बिना समाज। न वे हेय हैं न अस्पृश्य। कौमी एकता का अवलम्बन लेकर ही देश प्रगति के रथ को समृद्धि के स्वर्ण शिखर तक पहुँचाने में सफल होगा।

सघेशक्ति कलियुगे

श्री प्रकाशवीर शास्त्री सभाओं में अपना प्रिय भजन गाया करते थे––

'इन अछूतों को ओ हिन्द लगाले गले वर्ना ये लाल गैरों के घर जायेंगे
ये हैं अनमोल मोती बिखर जायेंगे'

इन बिखरते हुए अनमोल मोतियों को सहेजना होगा। तभी हमारा और हमारे पावनदेश का गौरव सुरक्षित रह सकता है।

भारत संस्कृति, धर्मों, जातियों का महासागर है।

भारत विभिन्न धर्मों व सस्कृतियों का विश्व-विद्यालय है।

आज का भारतीय न हिन्दू है, न मुसलमान, न सिख, न पारसी, न बौद्ध, न हरिजन, न ब्राह्मण। आज का नागरिक केवल भारतीय है, हिन्दू है। मात्र हिन्दू ही है।

क्योंकि भारत में आज तक अनेकों जातियों का आगमन हुआ है, औष्ट्रिक, आग्नेय, नीग्रो, द्रविड, आर्य, शक, हूण, मंगोल, मुगल, अंग्रेज। आज का भारतीय इन सबका समन्वित रूप है। अत. आधुनिक भारतीय विश्वमानव का स्वरूप है। वैसे आज भारत जितना एक है उतना पिछले आठ सौ वर्षों में नहीं रहा। आज सम्पूर्ण भारत (सिक्किम सहित) शौर्य, शान्ति, समृद्धि, गति के प्रतीक तिरंगे ध्वज के नीचे है। गत तीन युद्धों में भारत ने अपनी कौमी एकता का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कौमी एकता, धार्मिक सहिष्णुता, भ्रातृत्व भाव के बीज बहुत गहरे है हमारी भारतीय संस्कृति में, जहां नीग्रो देवता शिव आर्यों के आराध्य बनते हैं। विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए ऋषि का पद प्राप्त करते हैं। अश्वपति कैकय और जनक वेदज्ञ ऋषि याज्ञवल्क्य को ज्ञान प्रदान करते है। शबरी के बेर राम खाते हैं। वानर राजा सुग्रीव आर्य राजा राम की सहायता करते है। राम निषाद और केवट का आतिथ्य ग्रहण करते है। जहां राजरानी प्रेम दिवानी मीरां सन्त रैदास की अभ्यर्थना करती है। मुस्लिम कवि 'क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन' कह जीवनभर रीझे रहे। रसखान लकुटी और कामरिया पर तीनों लोकों का राज्य न्यौछावर करने को तत्पर। नसीर, दीनदरवेश मुसलमान कवियों ने कहा––

हिन्दू कहें कि हम बड़े मुसलमान कहें हम्म
एक मूंग दो फाड़ है कुण ज्यादा कुण कम्म
कुण ज्यादा कुण कम्म कभी करना नहि कजिया
एके का है नाम दूजा रहनमा सिरजिया।

ना जाने कितनी सस्कृतियों की धारायें विभिन्न दिशाओं से आकर इस महा

सागर मे विलीन हो गई, अपनी समस्त विशेषताओं को अक्षुण्य रखते हुए। यह इस राष्ट्र की ही विशेषता है, जिसके संविधान में हर सम्प्रदाय को फलने, फूलने व विकसित होने के अवसर प्रदान किये गये हैं। जहाँ केवल साध्य को महत्व दिया है। साधन या मार्ग आप कोई भी निर्धारित करें।

ब्राह्म मुहूर्त में मन्दिरों में घंटा-घड़ियालों के घोष के बीच नीलाकाश की ओर वर्तुलाकार मे उठता सुगन्धित धूम्र। गुरुद्वारे में गुरुग्रन्थ साहब का पाठ, मस्जिद मे होती अजान। गिरजाघर में सलीब के सामने जलती मोमबत्ती, जैनों का प्रतिक्रमण, बौद्धों का धर्मचक्र प्रवर्तन। सम्पूर्ण विश्व के धर्मों का समाहारित संस्करण भारत। रात्रि को रामचरितमानस का पाठ, मीलाद शरीफ, गिरजाघरों में होती प्रार्थनायें। सूर्य को जल चढ़ाता पण्डित, नमाज पढ़ता मुसलमान, संगत के जूते पोंछती सरदारनी। गॉड ब्लैस मी प्रेयर करता पीटर, उत्तराध्ययन करते जैन मुनि, तो विनय पिटक का अध्ययन करते बौद्ध भिक्षु।

जहाँ बशीर अहमद मयूख हिन्दी में वेदों का पद्यात्मक अनुवाद करते हैं। चमन लाल शर्मा अरबी का अध्ययन करते हैं। तो जहूर हुसैन संस्कृत में पी०एच-डी० करता है। कौन कहता है कि देश में कौमी एकता का अभाव है?

आज दक्षिण भारतीय गोपालन् नैयर जम्मू कश्मीर में काम करता है। तो हिमाचल प्रदेश का प्रभुलाल केरल मे काम करता है। सरदार गुरबचन सिंह सकीना की अस्मत बचाने के लिए जान की बाजी लगा देता है। धर्म, प्रान्त, भाषा जाति की तंग दीवारों से भारत ने बाहर निकलना प्रारम्भ कर दिया है। आज भारत भावनात्मक रुप से एक है। तो फिर कौमी एकता की आवाज इतने जोर-शोर से क्यों उभर रही है।

क्या आग की लपटों मे मुरादाबाद, सम्भल, मुजफ्फर नगर, बरेली, लखनऊ, बेहमई, देहुली, साढूपुर के काण्ड ने हमारी कौमी एकता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। यह आगजनी, लूटपाट, नरसंहार मानव मात्र को उद्वेलित ही नहीं करता अपितु एक प्रश्न का उत्तर पाने को विवश करता है। क्या हम धीरे-धीरे पशु बनते जा रहे हैं? कहाँ से आ गई हमारे अन्दर बर्बरता, क्रूरता, वहशीपन, दरिन्दगी। लेकिन कुछ प्रश्न फिर उठते हैं। मुरादाबाद आदि का काण्ड कौमी एकता के अभाव के कारण था या अन्य किसी कारण से? देहुली, बेहमई, साढूपुर का नर संहार जातीय विद्वेष के कारण था या व्यक्तिगत कारणों से।

गहराई मे जायें तो कौमी एकता का अभाव किसी भी काण्ड का कारण नही था। अपितु उसके कारण अन्य ही थे।

क्योंकि यदि कौमी एकता का अभाव होता तो आज क्यों हिन्दू व्यापारियों के यहाँ मुसलमान शिल्पी काम करते। क्यों आज मुस्लिम होटलों पर सभी धर्मों के लोग चाय पीते। रहमान क्यों दशहरे के लिए रावण बनाता। क्यों नमाज

पढते, नमाजियो को वर्षा आने पर जुगलकिशोर क्यों अपने बरामदे मे बिठाता। क्यों आज अलीगढ के तालो और तामचीनी के कारखानों मे हिन्दू मुसलमान साथ-साथ काम करते और फिफ्टी-फिफ्टी कर चाय पीते। आज भी ईद पर बशीर चाचा के यहाँ से सीरनी आती है और क्यों होली पर इमाम डफ़ पर होली गाते-गाते झूम उठता है। तो मुहर्रम के जुलूस मे राम खिलाडी ढोल बजाते पसीने से तर हो जाता है।

आखिर आज ये जहर कहाँ से आ गया कि आदमी शैतानियत की हदों को पार कर हैवानियत की चरमसीमा पर पहुँच गया है, इसका कारण कहीं दूर है।

आज संघर्ष सामाजिक कम आर्थिक अधिक है

उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब ही विशेतः इन समस्यओं से ग्रस्त क्यो है ?

इसका कारण उत्तर प्रदेश और बिहार में बढ़ती आबादी, घटती जमीन, घटते साधन, बढ़ता भ्रष्टाचार, बेकारी, कम मजदूरी अधिक लाभ की प्रवृत्ति है। आज तो हर गाँव की स्थिति यह है, कि नया घर केवल खेत मे बन सकता है। लेखक ने मुरादाबाद, अलीगढ़ का व्यक्तिगत रूप से दौरा किया है। इन दंगों का कारण कौमी एकता का अभाव नही अपितु गद्दारी है। कुछ सिरफिरों द्वारा पैसा लेकर अपनी सुख-सुविधाओं के लिए देश की अखण्डता और एकता को दाँव पर लगाने की असफल साजिश है। अन्यथा मुरादाबाद में जिस सूअर के कारण दंगा हुआ उस सूअर को किसी ने नही देखा। दूसरा कारण राजनीति का निम्नतम स्तर पर उतर जाना है। जब एक उत्तरदायी पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति जाति, सम्प्रदाय, भाषा के तंग दायरों से बाहर निकलकर सम्पूर्ण देश के कल्याण की बात नही सोच पाता। अपने स्वार्थ साधन के लिए सिर कटाने, खून बहाने और घर जलाने से भी नहीं चूकता। उसकी यह विचारहीनता भयंकर रूप से हानिकारक हो जाती है।

मुझे सन् 1947 याद आता है। मेरे गाँव मे धोबी, तेली, लुहार और फकीर मुसलमानों के केवल छ. घर है। हिन्दुओ के परिवार उनके लिए ढाल थे। पिताजी कभी-कभी मजाक मे कहते, "भैया खैराती, पाकिस्तान कब जा रहे हो ?"

—पण्डितजी आपका खैराती तो केवल एक हिन्दुस्तान जानता है। ये गाँव मुझे रोजी-रोटी दे रहा है। तो मेरा तो पाक—पवित्रस्थान—स्थान यही है।

—अरे अपने भाइयों मे जाकर रहो।

—पण्डितजी भाई न धर्म से, न जाति, न माँ के पेट से पैदा होता है। भाई होता है, प्रेम से, त्याग से, महसूसात मे।

छोटे-छोटे आदमी कभी-कभी कितनी बडी बात कह देते है।

क्या हिन्दू क्या मुसलमां हम सब है भाई भाई
प्यार बाँटते चलो दुलार बाँटते चलो।

□

राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका

सोमनाथ शर्मा

स्वातन्त्र्योत्तर भारत को अभावों के जिन प्रमुख आयामों से गुजरना पड़ रहा है उनमें राष्ट्रीय एकता की समस्या सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रश्न उठता है—राष्ट्रीय एकता क्या है? तथा उसकी अखण्डता व अक्षुण्णता के लिए उत्तरदायी कौन है? राष्ट्रीय एकता से तात्पर्य राष्ट्र की स्वतन्त्रता, सम्प्रभुता व एकता की सुदृढ़ता से है। देश का प्रत्येक नागरिक आपसी भेदभाव व असमानता की परिधि से पृथक यह अनुभव करे कि भारत उसका देश है, तथा देश की उन्नति का भार उसके कंधों पर है, सभी मिलकर उसे बनाये रखने में सहयोग दें, यह राष्ट्रीय एकता की कसौटी है।

भारत एक विशाल देश है। बड़े क्षेत्रफल वाले इस देश की जनसंख्या लगभग 68 करोड़ है। यह शस्य-श्यामला भूमि अपने अंक में विभिन्न धर्म, जाति, वर्ग व भाषा-भाषी सम्प्रदायों को समेटे हुए है। निश्चय ही ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में उनमें एकता बनाये रखना दुष्कर है। फिर भी हमारे संविधान की यह सबसे बड़ी विशेषता रही है कि यहाँ अनेकता में एकता है। अर्थात हमारा धर्म, जाति या आवास देश के किसी भी कोने में रहा हो, हम सब मिलकर भारत के नागरिक कहलाते हैं। यही राष्ट्रीय एकता की विचार शृंखला है।

यदि हम अपने प्राचीन इतिहास का अध्ययन व अवलोकन करें तो ज्ञात होगा कि एकता के अभाव में राजपूत काल व मध्यकाल में देश को असफलता के किन सोपानों से गुजरना पड़ा या राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय एकता ने देश को कैसे प्रभावित किया, आदि आदि।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो राष्ट्रीय एकता एक विचार-धारा है, देश के प्रति समर्पण की एक विशाल जन-भावना है, जिसमें देश-प्रेम व सम्मान के भाव महसूस होते हैं। अँग्रेजों ने "फूट डालो व राज्य करो" की नीति से देश की एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया। जिसका परिणाम हड़ताल, दंगे, तोड़फोड़

व क्रान्ति के रूप मे आज हमारे सामने है। भ्रष्टाचार ताडव कर रहा है। क्षेत्रवाद, जातिवाद व भाषावाद के नाम पर अनेक आन्दोलन हुए, जिनमें धन व जन की अपार क्षति के साथ नैतिकता व आदर्शवाद का ह्रास भी हुआ है। हमारा देश भारत, हमारी जननी-जन्मभूमि इस क्रूर अट्टहास के बीच पुकार रही है, किसी ऐसे राष्ट्रनिर्माता को, जो उसे इन परिस्थितियों से उबार सके।...और तब सामने आता है शिक्षक...एक फरिश्ता व राष्ट्र सुधारक के रूप में।

अब देखना यह है कि राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय एकता के निर्माण मे शिक्षक अपनी क्या भूमिका अदा करता है। उत्तर के रूप में शिक्षक के दो पहलू हमारे सामने आते हैं। एक ओर वह जहां देश की भावी पीढ़ी का निर्माता है, वहीं दूसरी ओर समाज के लोगों मे राष्ट्र-प्रेम के भाव भी जागृत करता है।

प्राचीन काल से आज तक शिक्षक की प्रतिष्ठा वसुधा के कण-कण मे व्याप्त है। चाहे वह कन्फ्युशियस का युग हो, अरस्तु या सुकरात का। गुरु ने सदैव सच्चे मन से अपने शिष्यों को ज्ञानामृत का पान कराया है। जहाँ तुलसी ने शिक्षक की महत्ता को स्वीकार करते—

"जे गुरु चरण रेणु सिर धरही,
ते जन सकल बिसव बस करही।"

सराहा है, वही कबीर ने

"बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दिया बताय।"

कहकर अपने तानपूरे पर गुरु का पलड़ा भारी बताया है और "गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरे" ने तो गुरु की महत्ता को चरम शिखर पर पहुँचा दिया है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् को भी आज के शिक्षक वर्ग से कुछ ऐसी ही अपेक्षा थी। उन्होंने शिक्षक को उस उच्चासन पर बैठाया, जो कई पीढ़ियों का भविष्य-निर्माता कहलाया। उनके शब्दो मे—"एक इजीनियर की भूल नक्शे मे गुम हो जाती है, कारीगर की भूल दीवारों में चिन दी जाती है, वकील की भूल फाइलों मे दब जाती है लेकिन अध्यापक की भूल एक नही, आगे आने वाली अनेक पीढ़ियों को पतन के गर्त मे ढकेल देती है।"

कितना ऊंचा आदर्श है शिक्षक का और कितना महान गौरव। शिक्षक जितना भावी पीढी का निर्माता है, राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में उतना ही सक्षम भी। अत: अनादि काल से अध्यापक की समाज मे प्रतिष्ठा रही है और उसके पवित्र कर्म का गौरवशाली इतिहास आज भी उसके गुणों का बखान कर रहा है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि शिक्षक समाज का महत्वपूर्ण अंग है और राष्ट्र-निर्माता भी। यदि वह छात्रों मे एकता व राष्ट्रीयता के बीज अकुरित करे तो निश्चय ही आगे आने वाली पीढ़ी राष्ट्रीय प्रेम के भावों से ओतप्रोत होगी।

शिक्षक वह कड़ी है, जो छात्रों में आपसी प्रेम, स्नेह, दया व सहानुभूति के संस्कार कायम करता है। समाज का अंग होने के नाते उसका यह भी दायित्व है कि वह एक ऐसी नस्ल तैयार करे, जिसमें राष्ट्रीय एकता की भावना कूट-कूट कर भरी हो।

अध्यापक को चाहिए कि अपने इसी स्वरूप को चिरस्थायी रखने के लिए आज की उत्तेजित पीढ़ी को स्नेह व प्रेम का मार्ग बताये। विद्यालय में नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की ज्ञानवर्धक बातें बतायी जायें जिससे छात्रों का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके।

राष्ट्रीय एकता कायम करने के लिए एन० सी० सी० तथा स्काउट, ए० सी० सी० जैसी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दें ताकि छात्रों को देश-प्रेम व राष्ट्र-रक्षा का महत्व ज्ञात हो सके। शनिवारीय कार्यक्रम व अन्य उत्सवों पर शहीदों के बलिदान का स्मरण करायें व उन्हें भी ऐसे कार्य करने को प्रेरित करें। ऐसी कहानियाँ, गीत व संस्मरण उन्हें सुनायें, जिससे उनमें एकता व देश-प्रेम की भावना का संचार हो। उसमें स्वयं भी राष्ट्रीय-ध्वज व राष्ट्रगीत के प्रति सम्मान की भावना होनी चाहिए, जिसे वह छात्रों को दे सकें। शिक्षक स्वयं ऐसी एकता कायम करें जिससे हर आगे आने वाली पीढ़ी इसे पिछली पीढ़ी से बेहतर अपना सके और अपनी आने वाली पीढ़ी को इससे अधिक दे सके। काल व स्थान के नियामकों के रूप में अध्यापक की सही भूमिका यही है। अध्यापक को यह भी ज्ञात करना चाहिए कि उसके बताये मार्ग का छात्रों ने कहाँ तक अनुसरण किया है, कितना अर्जित किया है तथा उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना का कहाँ तक विकास हो पाया है।

विद्यालय के अहाते से निकलने के बाद शिक्षक का सम्पर्क समाज से भी होता है। अतः उसका यह भी दायित्व हो जाता है कि वह समाज व आस-पास के लोगों में भी राष्ट्रीय एकता व राष्ट्र-प्रेम के भाव जागृत करें। जब देश में किसी प्रकार का संकट हो या युद्ध के बादल मँडरा रहे हो, तब शिक्षक ही तन-मन-धन से राष्ट्र-सेवा कर सकता है तथा अन्य को भी इस ओर प्रेरित कर सकता है। उसे चाहिए कि गाँव-गाँव में आकर एकता की भावना फैलायें, देशवासियों को राष्ट्र की समस्या से अवगत करायें, व उन्हें एकजुट होकर देश की रक्षा करने को प्रोत्साहित करें।

शिक्षक स्वयं अपने नैतिक कर्तव्यों का निर्वाह कर आगे आने वाली पीढ़ी को इस लायक बना सकें कि समय पड़ने पर वे अपनी अभूतपूर्व एकता व अखंडता का परिचय देने से न चूकें।

पद-प्रतिष्ठा, कर्तव्यनिष्ठता और प्रत्युत्पन्नमति से अहम् के अलगाव की यह विशृंखलता शिक्षक के दायित्व का बोध कराती है।

निष्कर्षत. आज का समाज शिक्षक से कई अपेक्षाएँ रखता है। अपने व्यक्तित्व की तलाश के बीच उसे छात्रों के भविष्य को मद्देनजर रखते हुए व्यवसाय के दृष्टिकोण से नही बल्कि समाज-सुधार व राष्ट्र-सेवा को लक्ष्य बनाकर नि.स्वार्थ भाव से कार्यरत रहना चाहिए।

इस प्रकार सामाजिक दायित्व को वहन कर देश मे एकता की भावधारा प्रवाहित करना ही उसकी महान उपलब्धि होगी, इसमें सन्देह नही। □

...समायत्तं तु पौरुषम्—पौरुष के प्रतीक ये विकलांग

गौरीशंकर आर्य

इसमें संदेह नही कि वैदिक काल के मनीषी ने जब शतायु प्राप्त करने की कामना ईश्वर से की थी तो उनका ध्यान जीवन की स्वस्थ प्रक्रिया पर अवश्य था। केवल जी लेना ही उनकी कामना का उद्देश्य रहा होता तो 'जीवेम शरदः शतम्' के पूर्व 'पश्येम शरदः शतम्' वह कभी नही कहता। निश्चय ही मात्र जीने के स्थान पर सम्पूर्ण आयु तक भली प्रकार देखते रहने की बात का मूल्य उसके सामने अधिक था। ससार में आकर ससार के रचयिता की रचना का दर्शन न हो सका तो ससार में आना-न-आना बराबर ही है। माता के गर्भ की अँधियारी और जन्म के पश्चात् अँधेरे ससार में तब क्या अन्तर है। वैदिक ऋषि ने प्रार्थना के मध्य में 'शतमदीना' कहकर समस्त प्रार्थित जीवन प्रक्रिया के प्रति वरदायिनी महाशक्ति का ध्यान पुनः आकर्षित करने की चेष्टा की है। हम दीन बनकर न रहें। हे प्रभो, वरदान मिले तो इसी शर्त पर। और अन्त में नतमस्तक उस प्रार्थी ने उपसहार इन शब्दों में किया—भूयश्च शरदः शतात्। ससार के कल्याण के लिए यदि आगे भी आयु बढ सके तो वह 'अदीन' होकर ही।

प्रश्न उठता है—ऐसी बात क्या थी कि उस ऋषि ने सौ वर्ष देखने की कामना जीने की इच्छा से पहले व्यक्त की? क्या उसे नेत्र ज्योति का महत्व जीवन के मूल्य से अधिक ज्ञात हो गया था। क्या अंधता के कारण कष्टों का अनुभव स्वय उसे था? अथवा किसी अंध प्राणी के कष्टों को देखकर उसका नवनीत समान हृदय करुणा से द्रवित हो गया था? कोई कारण अवश्य ही रहा होगा। इस आधार पर इस सत्य का सहज आभास हो जाता है कि अंधता कम-से-कम वैदिक काल से अवश्य है और लगे हाथ यह भी स्वीकार करना ही होगा कि यह रोग उस समय भी असाध्य नही तो दुसाध्य तो अवश्य ही रहा होगा। महाभारत के अग्रगण्य सम्राट धृतराष्ट्र इसके प्रमाण हैं। उनकी अंधता असाध्य ही थी अन्यथा धन और साधन की कोई कमी उनके पास नही थी।

कितना अन्तर्पीड़ित मानस रहा होगा उस पराक्रमी चक्रवर्ती महाराज का। सुस्वादु व्यंजनों का आनन्द पाकर, सुरभित सुमनों की गंध ग्रहण कर उनको देखने की कितनी बलवती इच्छा जन्म लेकर मर जाती होगी उस निर्वाक् मन में! प्रणयरता प्रिया का कोमल स्पर्श कर उसके सुन्दर मुख को देखने की उत्कण्ठा किस प्राण में नहीं होती! रूप का आधार और महत्व दर्शन ही तो है। पुत्र-जन्म पर अपने आत्मज को अंक से लगाते समय उसके मुख को देखने की लालसा क्या रोकी जा सकती है? नरपुंगव धृतराष्ट्र इन सब कामनाओं को विवशता के नीचे निःशब्द दबाते जी रहे थे। और धन्य थी वह भारतीय नारी जिसने अपने स्वामी के अनकहे कष्टों का अनुमान करके पतिव्रत धर्म की वेदी पर अपने नेत्रों को भी पट्टी बाँधकर अंधता की सज़ा दे दी। कितना महान त्याग और समर्पण था उस महादेवी गान्धारी का।

नेत्र सचमुच ही जीवन की महानतम उपलब्धि है। विश्व का सारा साहित्य नीरस हो गया होता यदि उनमें नेत्रों की रसिकता का रस नहीं मिला होता। महाकवियों ने नेत्रों को कमल की जो उपमा दी है उसमें सौन्दर्य और कोमलता, रंग, रूप, आकार आदि तो समान धर्म है ही किन्तु एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। जीवन और मृत्यु इन दोनों के सूक्ष्म आवर्तित संकेत दिन और रात हैं। कमल सूर्योदय (जन्म) के समय खिलकर सूर्यास्त (मृत्यु) तक खिला रहता है।

उन महान वाणीपुत्रों ने भी प्रच्छन्न रूप से इस उपमा में यही भावना प्रकट की है कि जन्म से मृत्यु तक नेत्र-कमल खिले रहें। युग-पर-युग बीतते चले गये। यह नेत्रहीनता अभाव और अज्ञान के सहारे अपना अँधेरा साम्राज्य संसार के समस्त भागों पर फैलाती कलियुग तक चली आयी। सुरों को भी स्पृहणीय मानव शरीर की सुंदरतम रचना नेत्रों को उसने नष्ट कर दिया। स्वनामधन्या महादेवी वर्मा ने सत्य ही तो कहा है कि स्वर्ग की उत्तुंग ऊँचाई के पाँवों से नरक की अतल गहराई बँधी रहती है। किंतु पता नहीं कब किसी एकलव्य की लगन ने महारथी कर्ण के प्रखर शब्दों को मूक स्वरों में दोहरा दिया—"दैवायत्तं कुले जन्म ममायत्तं तु पौरुषम्"। और दमन की पीड़ा से व्यथित ज्योतिहीनता ने अंधता के विशाल साम्राज्य को चुनौती दे दी। यह चुनौती उस वैदिक ऋषि की प्रार्थना की भी थी जिसने दर्शन, भाषण और श्रवण शक्ति के अभावों से घबराकर उस ईश्वरीय महा-शक्ति को 'कल्याणकारी' चक्षु बताते हुए अंतर्निहित ठकुरसुहाती के स्वर में कहा था—"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत···। और 'अदीना' की याचना में अपनी विवशता तथा असमर्थता प्रकट कर दी थी। लगता है विज्ञान का बल पाते ही नेत्रहीन, बधिर और मूक मानवों ने दीनता को स्वीकार करने से साफ़ इंकार कर दिया है।

अमरीका के अल्बामा राज्य में तस्कम्बिया एक गाँव है। इसी गाँव के निवासी

एक प्रमुख दैनिक पत्र के संपादक कैप्टन आर्थर के घर में सन् 1880 की 27 जून को एक कन्या ने जन्म लिया। बड़ी हृष्ट-पुष्ट और सुंदर थी वह बच्ची हेलेन। अभी वह घुटनों के बल पर ही रेंगती थी कि एक तीव्र ज्वर ने उसकी नेत्र-ज्योति और श्रवण-शक्ति दोनों को उससे छीन लिया। बालिका हेलेन बधिर भी हो गयी। केवल गंध का ही वह अनुभव कर सकती थी। सात वर्ष बीत गये।

18 मार्च सन् 1887 के दिन एक युवती अध्यापिका कुमारी एनी मेन्सफील्ड सुलिवान ने हेलेन के लिए 'दीनता' से मुक्ति के द्वार खोल दिये। उसने हेलेन की हथेली पर धीरे-धीरे D-O-L-L शब्द बार-बार लिखा और फिर एक गुड़िया उसके हाथों में थमा दी। दूसरे दिन W-A-T-E-R लिखकर उसके हाथ पर ठंडे पानी की धार डाल दी। हेलेन के बजर मन की धरती पर अंकुर फूटे—यह WATER है। पानी द्रव है। पानी ठंडा होता है। बस यहीं से उसकी जिज्ञासा ने जन्म लिया और उसने धरती को छूकर प्रश्न भरी आँखों से जो अंधी थी, अध्यापिका की ओर देखा। कुमारी सुलिवान ने फौरन उसकी हथेली पर लिखा—E-A-R-T-H। और इसके बाद दीनता का अर्थ हेलेन के लिए निरर्थक हो गया। बीस वर्षीया हेलेन, नेत्रहीन हेलेन ने रेडक्लिफ कॉलेज में प्रवेश लिया जहाँ से उसने स्नातक होकर ही विश्राम नहीं किया वरन् टेम्पल और हारवर्ड विश्वविद्यालयों में शोधकार्य करके डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इसके उपरांत हेलेन ने अपनी जीवनी 'द स्टोरी ऑफ माइ लाइफ' लिखी जिसका अनुवाद विश्व की 60 भाषाओं में हुआ। हेलेन ने और भी कई उल्लेखनीय ग्रंथ लिखे। उसके सामर्थ्य और अध्यवसाय का सम्मान करते हुए हेलेन को सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार "प्रेसिडेंशियल मेडल ऑव फ्रीडम" प्रदान किया गया। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान मार्कट्वेन ने हेलेन की तुलना नेपोलियन बोनापार्ट से करते हुए लिखा है—

> There are two most interesting characters in the Nineteenth Century, Nepolion Bonapart and Miss Hellen Adom's Keller.
>
> [Hellen Keller Commemoration issue 1975.
> National Federation of the Blind, DELHI]

केवल विदेशी नेत्रहीन ही इस सामर्थ्य और चुनौती के धनी हों ऐसा नहीं है। मध्य प्रदेश के एक छोटे-से कस्बे में एक मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक के घर में अपने नाम को सार्थकता देती हुई एक बालिका ऊषा ने जन्म लिया। जीवन का अठारहवाँ माह चल ही रहा था कि ट्रेकोमा रोग से ऊषा भालेराव के नेत्र ज्योतिहीन हो गये। ऊषा का उदय और संसार अँधेरा। विचित्र विरोधाभास था। शिशुता ने बाल्यकाल का परिधान पहना। सनेत्रों के सामान्य विद्यालय में जब शिक्षा के लिए कुमारी ऊषा ने प्रवेश लिया तब तक उनके पिता माधव कॉलेज,

उज्जैन में अंग्रेजी के प्रोफेसर होकर आ गये थे। नेत्रहीन ऊषा नेत्रवान छात्रों के समान प्रगति एकदम तो कैसे कर सकती थी। खीझकर या गर्वोक्ति में ऊषा भालेराव को अपने नये प्रधानाध्यापक ने कटु शब्द कह दिये कि उनका स्कूल अंधों के लिए नहीं है। और एक वेदना को लेकर कुमारी भालेराव घर लौट आयी। किन्तु ऊषा के मन में बैठा एकलव्य कब हार मानने वाला था। उन्होंने संगीत की कक्षा में प्रवेश लिया और उसमें स्नातिका बन गयी। फिर भी सामान्य शिक्षा की प्यास से उनका मानस तड़प रहा था। संयोग से एक सामाजिक कार्यकर्ता ने कुमारी ऊषा को ब्रेल लिपि सीखने की प्रेरणा दी। किन्तु सिखाता कौन। उज्जैन में उस समय तक ब्रेल लिपि का जानकार कोई नहीं था। फलतः बम्बई से ब्रेल लिपि की एक पुस्तक "A Valley grows up" मंगवाई गयी और बड़ी कठिनाइयों से जूझते अपने पिताश्री के सहारे 1967 में कुमारी ऊषा ने हायर सेकेण्ड्री परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके बाद स्वनामधन्या कुमारी ममता नन्दी प्राचार्या बालिका महाविद्यालय, उज्जैन में कुमारी भालेराव को ममता और मार्ग-दर्शन दोनों एक साथ प्राप्त हुए और उन्होंने प्रशंसनीय अंकों के साथ बी०ए० पास किया। इस पर मध्य प्रदेश नेत्रहीन संघ की ओर से, तत्कालीन उप राष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक की धर्मपत्नी श्रीमती प्रकाशवती पाठक के द्वारा ऊषा भालेराव को स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। इसके पश्चात कुमारी ऊषा ने संगीत और समाजशास्त्र में एम० ए० किया।

नेत्रहीनों की दशा का अनुभव कुमारी ऊषा को हो चुका था। उन्होंने उनके लिए संगीत और उद्योग-शिक्षण का केन्द्र स्थापित किया। कुमारी भालेराव के साहस और परिश्रम के साथ प्रगति की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी और एक दिन उनको यह सूचना प्राप्त कर आश्चर्य हुआ कि—'नेत्रहीन महिलाओं की स्थिति' पर 18 से 20 नवम्बर (1975) तक होने वाली प्रथम ऐतिहासिक अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में उन्हें बेलग्रेड (युगोस्लाविया) के लिए बिना किसी सहायक (एस्कोर्ट) के यात्रा करनी है। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी और नगर निगम उज्जैन ने सार्वजनिक समारोह में कुमारी भालेराव को क्रमशः 4000 रु० और 1000 रु० के चैक भेंट किये। इससे उनकी मार्ग व्यय की कठिनाई दूर हो गई। 27 नवम्बर को स्वदेश लौटने पर टेलिविज़न पर कुमारी ऊषा ने अपना इंटरव्यू दिया और समाज कल्याण संगठन तथा पंचायत मंत्री मध्यप्रदेश द्वारा उन्हें रजत-पदक प्रदान किया गया। इतनी उपलब्धियों के बीच भी एक अभिलाषा कुमारी भालेराव के मन में और थी। और वह तब पूरी हुई जब उन्होंने अपना शोध प्रबंध—"ए सोश्योलॉजीकल स्टडी ऑव द ब्लाइंड इन मेजर अरबन सेंटर्स ऑव मध्यप्रदेश" लिखकर विक्रम विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' के करकमलों से 11 जुलाई, 1976

को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। डॉ० ऊषा ने सचमुच यह सिद्ध कर दिया कि, उनके गुरुजी का कहना सत्य था कि "उनका स्कूल (उन जैसे) अंधों के लिए नहीं है।"

[Personal Experiences as Recalled by Dr. Usha.
NASEOH—January, 77
Volume VII No. 1
BOMBAY]

आज देश में कई प्रसिद्ध सस्थान है जहाँ अधता के अभिशाप से जमकर लडाई लडी जाती है। जहाँ से दीनता दुम दबाकर भाग खड़ी होती है। तमिलनाडु के त्रिचनापल्ली का—'बिशप देहल रिहेबिलिटेशन होम फॉर दि ब्लाइड' इस दृष्टि से प्रसिद्ध केन्द्र है, जहाँ अधजीवन की समस्त बाधाओं को ठोकर मारकर कई नेत्रहीन कपड़ा बुनना, फर्नीचर बनाना, साइकिल सुधारना आदि अनेक कार्य करके स्वाभिमानी जीवन जी रहे हैं। पेन्नादम निवासी मूथूस्वामी मशीन पर कपड़े सीने में दक्ष है तो तिरुमगलम् से आया हुआ युवक एस० शिवाजी "इलेक्ट्रिक वेट राइस ग्राइंडर" मशीन पर बखूबी काम करके अपने पूरे परिवार का पोषण करता है।

51, महात्मा गाधी रोड, फोर्ट, बम्बई-1 स्थित सस्था 'नेत्रहीन अतर्राष्ट्रीय सघ' तो नेत्रहीनता को निरर्थक और नगण्य बना देने के लिए मानो ताल ठोक कर खडी हो गयी है। यहाँ प्रशिक्षक के निर्देशन मे अध प्रशिक्षणार्थी ऊँचे झूले पर व्यायाम सीखते है, मशीनों हर गनी बेग बनाते है, बिजली की आरी से लकडी चीरते है, बिजली से चलने वाली टर्निंग लेथ (खराद मशीन) चलाते है, पैंडुलम प्रास कट मशीन से बड़े-बड़े तख्ते काटते है और पैकिंग करते है। इस सस्था के लाइट इंजीनियरिंग सेक्शन मे बिजली की आधुनिक मशीनों पर फुर्ती से काम करते हुए नेत्रहीनों को देखकर नेत्रवान व्यक्ति लज्जा से आँखें झुकाकर दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। टेलिफोन कम्पनी, मेडिकल कम्पनी, इडस्ट्रियल ट्रेक्टर कम्पनी, रेलवे विभाग और टेक्सटाइल मिल्स आदि कई सस्थाओं से विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए इस सघ को आर्डर मिलते हैं जिनकी पूर्ति अनगिनत नेत्रहीन करके जन-जन को संतोष देते हैं।

भारत की एकमात्र गुलाबी नगरी जिसे केसरिया राजस्थान की राजधानी होने का सौभाग्य मिला है उस जयपुर ने भी नेत्रहीनों के प्रति बहुत कुछ किया है। प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी की प्रेरणा से 15 अगस्त सन् 1967 के पावन पर्व पर "राजस्थान नेत्रहीन कल्याण सघ" की स्थापना यहाँ हुई थी। 1016 नबर के भवन मे नाटाणियों के रास्ते पर यह संस्था चल रही है जिसकी कार्य-

कारिणी के अध्यक्ष प्रांत के प्रसिद्ध जौहरी और वयोवृद्ध देश-सेवी श्री राजरूपजी टाक है। इस संस्था में विशेषत: तीन प्रवृत्तियाँ गतिमान हैं—ब्रेल लिपि में शिक्षा विभाग के द्वारा मान्य पाठ्यक्रम से शिक्षण, संगीत और कुर्सियों की सीटों की बुनाई-रीकेनिंग (उद्योग) का प्रशिक्षण। नेत्रदान अभियान भी एक प्रवृत्ति है।

न केवल राजस्थान अपितु उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के नेत्रहीन जन भी इस संस्था के संरक्षण में लिखना, पढ़ना और उद्योग सीखकर निरर्थक जीवन को सार्थक रूप में जीते हैं। अब तक लगभग 119 नेत्रहीनों को रीकेनिंग जीविकोपार्जन के लिए और संगीत सामाजिक सम्मान तथा मनोरंजन के लिए सिखाकर यह संस्था यश प्राप्त कर सकी है। ब्रेललिपि के नेत्रहीन अध्यापक श्री गौरीदत्त शर्मा एम० ए० (संस्कृत), आचार्य तथा बी० एड० हैं। सितार के प्रसिद्ध वादक और आकाशवाणी कलाकार श्री राधेश्याम शर्मा प्रज्ञाचक्षु इस संस्था के संगीत अध्यापक हैं। श्री रतनलाल कोठारी रीकेनिंग टीचर और सम्पूर्ण उद्योगशाला के व्यवस्थापक श्री भरोसीलाल जैन दोनों नेत्रहीन है। जयपुर के सरकारी विभागों में कुर्सियों की बुनाई के आर्डर प्राप्त करना, कुर्सियों की बुनाई करवाना सारी व्यवस्था नेत्रहीनता के बावजूद बखूबी करते है। इस संस्था के उपाध्यक्ष श्री नरपतमल जैन स्थानीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में संगीत अध्यापक हैं। आदर्श यह कि स्वयं नेत्रहीन है तो आपने अपना विवाह भी देहरादून अंध विद्यालय की छात्रा नेत्रहीन कुमारी सुदेश जैन से ही किया। श्रीमती सुदेश अब वहीं राजकीय बालिका विद्यालय में अध्यापिका है। टाइप फुर्ती से कर लेती हैं। गैस के चूल्हे पर सुस्वादु भोजन बनाती है, और मजाल कि किसी चपाती पर दाग पड जाये या वह कच्ची रह जाये।

इस संस्था से कई नेत्रहीन स्नातक सम्बद्ध है जो वहाँ के पुस्तकालय में ब्रेललिपि के उच्च कोटि के साहित्य से लाभ उठाते है। खलील अहमद 'खलील' बी० एस-सी० करते-करते अपनी आँखें खो बैठे। वहाँ ब्रेल में 'अ-आ' सीखकर अब अपनी अधूरी शिक्षा को गति दे रहे हैं। संगीत के साधक श्री सचेतन नेत्रहीनता को 'उँह' कहकर दर्शन-शास्त्र में इसी वर्ष यहाँ से एम० ए० कर रहे हैं। और जो वायलिन के तार छेड बैठे तो बस लोग झूम-झूम उठते है। उपेक्षाओं से क्षुब्ध और नेत्रहीनता से संतप्त समाजशास्त्र में एम० ए०, संगीत के आचार्य, स्वयं के साधनों से "अनुराग संगीत शिक्षण केन्द्र" के संचालक श्री अजित जैन सचमुच बाधाओं से अजित सिद्ध हुए।

सुन्दर, गौरवर्ण, आकर्षक मुखाकृति वाले श्री अजित जब गजलें गाते है तो श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते है। किसी भी गीत को राग का रूप देकर उसकी स्वरलिपि उसी क्षण तैयार कर देते है। श्री अजित राजस्थान नेत्रहीन कल्याण संघ की सभा के सम्मान्य सदस्य हैं। यह संस्था, जहाँ कहीं भी नेत्रहीन बालक मिलते हैं

उन्हे अपने खर्च पर यहाँ लाती है उन्हें नि शुल्क भोजन, आवास, वस्त्र, चिकित्सा आदि सुविधाएँ देकर शिक्षित बनाती है, उद्योग सिखाती है। इस संस्था ने सम्पूर्ण राजस्थान में राजस्थान राज्य परिवहन की बस सर्विस (जहां तक वह जा सकती है) मे नि शुल्क यात्रा सुविधा नेत्रहीनो को दिलवायी है। समस्त नेत्रहीनों के सामूहिक स्वर से राजकीय सेवा मे दो प्रतिशत स्थान नेत्रहीनो के लिए सुरक्षित कर दिये गये है। देश मे राजस्थान ही पहला प्रांत है जिसने नेत्रहीनों को यह सुविधा दी है। कई नेत्रहीन अब बिना सहायक की सहायता के रेलों में सफर कर लेते हैं। अब नेत्रहीनता की विशाल बाधा का क्षेत्र सिमट कर छोटे-से-छोटा होता जा रहा है। यह सब वही स्वर हैं जो कर्ण के मुख से कभी निःसृत हुए थे। आज नौ लाख मुखों से यही ध्वनि आ रही है—"ममायत्तंतु पौरुषम्।"

प्रसिद्ध लेखिका सुश्री सावित्री परमार ने जब इस संस्था का अवलोकन किया था तो उन्होंने लिखा—

"नेत्रहीन बालक-बालिकाओं का यह विद्यालय वास्तव में नियमानुसार चल रहा है। गाँवो से आये छात्र-छात्राओं की निवास व्यवस्था यहीं पर है। बाहरी चक्षु यदि खो गये तो आंतरिक चक्षु कितने सजग हो गये है इस ब्रेल लिपि के द्वारा। ये नेत्रहीन गौरव से जीवन यापन करते हैं। किसी का बोझ बनकर नहीं, परित्यक्त बनकर नही वरन् हौसले और चुनौती के साथ।...आज प्रत्येक क्षेत्र इन नेत्रहीनो के लिए सुगम हो गया है। प्रत्येक सोये, निराश और हीन हृदय में कर्मठता और स्वाभिमान की भावना भरी है।

[अवलोकन और इटरव्यू, सावित्री परमार—1 फरवरी, 76]

हे वैदिक ऋषि, अपनी ऋचा मे निर्भय होकर परिवर्तन कर दो, अब प्रार्थना मे पहले पश्येम शरदः शतम् के स्थान पर साहस के साथ कह दो, जीवेम शरद शतम्। □

कालजयी

श्रीकृष्ण विश्नोई

असीम अगोचर अभावित काल; क्रिया से जुड़कर भावित, परिभावित होता है।

काल क्या है? घटित होना, केवल कुछ होना ही काल का बोध है।

हर मनुष्य किंवा प्राणी जीवित रहना चाहता है, केवल जीवित ही नही; अमर होना चाहता है, कालजयी बनना चाहता है। परन्तु क्या आज तक कोई कालजयी बन पाया है?

काल को जीतने का क्या अर्थ है? यह समझने की बात है। मान लो कोई मनुष्य 25 वर्ष की आयु में बेहोश हो गया; या पागल हो गया। उसकी वह बेहोशी या पागलपन बीस वर्ष के बाद अचानक एकदम से ठीक हो गयी। अब प्रश्न उठता है कि क्या वह इन वर्षों में जीया? उसकी आयु अब 45 वर्ष मानेंगे या 25 वर्ष?

जरा चिन्तन करें; क्या हम बेहोशी या पागलपन में ही तो नही जी रहे हैं? हर चेतनधर्मा मनुष्य अपने से प्रश्न करे कि उसके घटित जीवन में क्या है जिसे वह अपना जीवन, अपना जीना कह सकता है। यदि हम गम्भीरता से सोचें तो पाएँगे कि केवल चन्द घटनाएँ, चन्द क्षणों में घटी घटनाएँ हैं जिन्हें हम वास्तव में अपना जीवन कह सकते हैं। हाँ, खाते-पीते, सोते वर्षों बीत गये और उनमें अपना जीवन केवल चन्द घटनाएँ!

अब जरा सोचें, उन घटनाओं में ऐसा क्या था जिनके कारण हम उन्हें अपना जीवन जीना कह रहे हैं? यदि मन को थामकर देखें तो हम पाएँगे कि उन घटनाओं के घटित होते समय हम केवल हम थे। हम स्वयं घटना बन गये थे या घटना हम से थी। अर्थात् हमने अपने आप को काल के साथ जोड़ दिया था। हम स्वयं काल बन गये थे। समय हम से पृथक रहा नही था। हम, वह घटना और काल; तीनों एक बन गये थे; बिल्कुल समवाय; सृष्टि पूर्व तीन गुणों की तरह!

इस प्रसंग में चिन्तनीय बिन्दु यह है कि यदि हमें जीवन को जीना है तो हम

अपने आपको काल के साथ जोड़ दें।

प्रात.काल के आलोक मे अपने को विस्तारें। पक्षियों के गान में गायें; उनके स्वर ही अपने स्वर बन जायें। सूर्य ऊपर उठा है, हम ही ऊपर उठ गये है। उसके प्रकाश में अपना ही प्रकाश है। उसकी तपन मे हमारी तपन है।

देखो! वह पक्षी अपनी चोंच मे दाना भरकर लाया है, उसके बच्चे कैसे चीं-चीं करते हुए उसे घेर रहे हैं। वह उनके मुँह मे दाना देता है; वे चुप हो गये हैं। उसकी नजरों मे देखो कितना सन्तोष झलक रहा है; हम भी उसमें मिल जायें यह घटना हमारा जीवन बन जायेगी।

देखो! सूरज ढल गया। हम भी आराम की गोद में चले जायें; सान्ध्य-गगन की लालिमा अपना ही अनुराग बनकर क्षितिजों को चूम लें।

यह रात घिर आयी है। आसमां असख्य तारों से चमकने लगा है। हमारे पास एक असीम मन है; हम उसे हर तारे के साथ चमकने दें। तब हम स्वयं चाँदनी बनकर अपनी ही शीतल गोद में स्वप्नों के साथ पलेंगे।

इस प्रकार यदि हमने अपने आप को काल के साथ जोड दिया—तो हम स्वय समय की धारा बन जायेंगे; उस रूप में काल हमसे पृथक नही रहेगा। हमारा वह होना (Being) ही काल का सच्चा बोध होगा। इसी अर्थ में हम कालजयी बन सकते हैं।

प्रकारान्तर से इसी चिन्तन को हम घटनाक्रम के दर्शक बनकर भी काल का अनुभव कर सकते हैं। यह भी कालजयी बनने का एक विकल्प है। पहले जो क्रम था वह था अपने को काल के साथ जोड दें; यह क्रम है काल को छोड़ दें। हम स्वयं काल के दर्शक बन जायें। पूर्ण समर्पण या पूर्ण पृथकता एक ही लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। दोनों ही स्थितियाँ काल-बोध की स्थितियाँ हैं।

जैसे अपने को काल के साथ जोड़कर हम एक ही दिन मे हजारों वर्ष जी सकते हैं, उसी प्रकार हम अपने आप को काल के किनारे खड़ा करके भी समय का सकुचन एवं विस्तार महसूस कर सकते हैं।

साक्षी! केवल साक्षी!! हर घटना का साक्षी होना भी दूसरे शब्दों में उस घटना के साथ जुड़ना ही है। यह पृथकता का एहसास भी मिलन से ज्यादा आनन्द-दायी रहता है। मिलन में सुख-दुख दोनों अनुभूत होंगे, परन्तु इस बिछुड़न मे केवल आनन्द-ही-आनन्द है। यहाँ घटनाएँ हम में हैं। हम घटना से नहीं हैं।

घटनाएँ हमारे सामने घटित हो रही है; हम घटना नहीं है। व्यापार में घाटा हुआ, चूँकि हम दर्शक हैं, अत. उस नुकसान को सहने मे कोई दु.ख न होगा। उस स्थिति मे हमारे सिर का दर्द हमारा दर्द नही होगा, केवल सिर का दर्द होगा; हम किनारे खड़े होकर देख रहे होंगे कि सिर को दर्द हो रहा है तथा हम उस दर्द का उसी प्रकार उपचार करेंगे जैसे एक डॉक्टर एक बीमार का इलाज करता है।

डॉक्टर अत्यन्त परिश्रम से रोगी की चीर-फाड़ करता है; उसे पसीना आ गया है परन्तु वह रोगी के सम्बन्धी या स्वयं रोगी की तरह दुखी नहीं है। बस यही हालत हमारी होगी। हम अपने जीवन के दर्शक बन जायेंगे। भोक्ता नहीं।

अपने जीवन के हर क्षण का साक्षी होना भी एक चेतनामय जीवन जीना है। दूसरे शब्दों में यह काल पर विजय है।

हम विजयी बनें। काल को आत्मसात करें या काल के दर्शक बन जायें। मूल बात चेतना की है। उसे चमकायें; जबकि हम सामान्यतः उस पर निरन्तर अज्ञानता की, बेहोशी की ठंडी राख डालते जा रहे हैं, और फिर कहते हैं; दुखी हैं; रोगी हैं; मौत पास आ रही है।

एक बार यदि विवेक के चक्रवात से अज्ञानता की राख उड़ जाये, तो चेतना की चिनगारी एक सुनहरे आलोक में परिणित होकर, हमारे समस्त जीवन को; एक-एक क्षण को आलोकित कर देगी। उस क्षण मौत का भय, मौत का भ्रम मिट जायेगा। हम सही अर्थ में कालजयी बन जायेंगे। □

सवाल उठता है

आनन्द कुरैशी

[पर्दा उठता है। मंच पर उद्घोषक के अतिरिक्त कोई नहीं है। न कोई साज न सामग्री। एकदम शून्य-सा।]

उद्घोषक : आज मुझ पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गयी है। न जाने क्यों बार-बार मुझे ही इस काम के लिए चुना जाता है। मैं नाटक शुरू करूँ इससे पहले चन्द सवाल आप लोगों से पूछना चाहता हूँ। खास तौर से उन लोगों से जो बातें तो खूब करते हैं, लेकिन जब भी मौका आता है भाग जाते हैं। क्या आप भी मेरी बात सुनकर भागने लगेंगे? तब फिर मेरे सवाल का जवाब कौन देगा? इस समाज को आखिर कौन बदलेगा? हजारों साल से इस देश में यही सवाल दोहराया जाता रहा है—रामराज्य से लेकर गांधी राज्य तक।

आप में से कौन है वे लोग जो बार-बार इस देश में जाति और धर्म की बात उठाते हैं? मैं पूछता हूँ क्या आप भी देश की तकदीर बनाने के लिए इंसानियत को अलग-अलग अखाड़ों में बाँट देना चाहते हैं? क्या देश से भी बड़ी जाति है? क्या देश से भी बढ़कर आपका धर्म है?

[दर्शकों की भीड़ से एक व्यक्ति उठता है।]

एक दर्शक : खामोश! हमारा देश धर्म-निरपेक्ष है। कानून की निगाह में सब बराबर हैं—क्या तुम नहीं समझते इस बात को?

[दूसरा एक और दर्शक भी खड़ा हो जाता है]

दूसरा दर्शक : आज न कोई छोटा है न बड़ा। हर जगह सबको समान अधिकार प्राप्त है।

उद्घोषक · (हँसता है) मेरे भाई ! मैं अछूतों की, हरिजनों की, दलितो की बात करता हूँ। क्या तुम्हारे मन्दिर मे इनके लिए कोई जगह है ? क्या तुम्हारे विवाह सस्कार मे इनके सौभाग्य का सिंदूर भी है ? क्या तुम्हारे सामाजिक सस्कारों की जाजम पर इनके बैठने के लिए थोडी-सी भी जगह है ?

कुछ लोग : (खड़े होकर दर्शकों की भीड़ से) भागो ! बकवास बन्द करो ! हम लोग नाटक देखने आये है तुम्हारा भाषण सुनने नही।

उद्घोषक : शान्ति रखो मेरे भाई ! शान्ति ! मैं नाटक ही तो दिखा रहा हूँ। पर्दे के पीछे दूसरी ओर अछूत और दलित कहे जाने वाले कुछ लोग बैठे है। मैं उनको साथ लेकर आया हूँ। उनमे मेहतर, चमार, बलई—सभी है। सभी रोज आपकी सेवा करते हैं। आज चलिए आप लोग इनकी सेवा करें। चलिए, इसी काम से अपना यह नाटक शुरू करें।

तीसरा दर्शक : (भीड़ से खड़ा होकर) आज कोई हरिजन कल्याण सप्ताह का कार्यक्रम है क्या, जो हम लोग…

[सब लोग हँसते है।]

एक दर्शक : पैंतीस साल हो गये जनाब, क्या अब भी सेवा की जरूरत है।

दूसरा दर्शक : आरक्षण ! रिजर्वेशन ! विशेष छूट ! मौका ! इतना सब कुछ पा लिया अब क्या बचा ?

तीसरा दर्शक . हमने कोई ठेका ले रखा है क्या ?

उद्घोषक : नही, बिलकुल नहीं। तुम क्यो ठेका लोगे मेरे भाई ! तुम तो बात करोगे !कभी वेद मे, कभी पुराण में—तुम्हारी ही बात तो बार-बार पढ़ी है सबने ! किसी को ब्राह्मण, किसी को क्षत्रिय, किसी को वैश्य, किसी को शूद्र तुमने ही तो बनाया है !

तीसरा दर्शक : अपने कर्मों का फल है। जन्म देना कोई हमारे हाथ की बात है क्या ?

उद्घोषक : नहीं, बिलकुल नही। तुमने भी बड़े कुल में कोई अपनी मरजी से जन्म थोड़े ही लिया है। यह तो माँ-बाप की करतूत है कि तुम धरती पर बातें करने आ गये !

तीसरा दर्शक : बदतमीजी करते हो ?

उद्घोषक : नही नही, मेरे भाई ! अच्छा, तुम्हारा नाम क्या है ?

तीसरा दर्शक : मन्नालाल गुप्ता।

उद्घोषक : और तुम्हारा ?

दूसरा दर्शक : फकीर चन्द शाह।

उद्घोषक : और मेरे भाई, तुम्हारा ?

पहला दर्शक : नेमीचन्द शर्मा।

उद्घोषक : तुम सब क्या हो ?

तीनों : (एक साथ) हिन्दू।

उद्घोषक : मेरे साथ जो लोग आये है वे भी अपने-आप को हिन्दू ही कहते हैं ?

तीनों : (एक साथ) ठीक है वो सब भी हिन्दू है।

उद्घोषक : तुम हिन्दू ! वो हिन्दू ! हिन्दू-हिन्दू भाई-भाई ! क्यों है न ?

तीनों : (एक साथ) हाँ-हाँ, हिन्दू-हिन्दू भाई-भाई !

उद्घोषक : मुसलमान, सिक्ख, ईसाई ?

तीनों : (एक साथ) वो भी भाई-भाई।

उद्घोषक : चलो फिर आज से तुम सड़कों की सफाई करो, मैला उठाओ, जूते बनाओ। तुम इनको रोज पूजा के लिए अपने मन्दिर में आने दो। तुम अपने बेटे का विवाह इनमें से किसी की लड़की से करो। तुम इनके घर जाकर आज शाम खाना खाओ।

तीनों : (चिल्लाते हैं) बैठो ! बकवास करते हो ! नाटक शुरू करो !

उद्घोषक : नाटक भी करूँगा। पहले मेरे सवाल का जवाब तो दो।

तीनों : (एक साथ) बकवास करता है।

उद्घोषक : मेरा काम ही है बोलना। लेकिन तुम्हारी तरह जुलूसों में नहीं बोलता। सभाओं में नहीं बोलता। किताबों में आदर्श वाक्य नहीं लिखवाता ! मैं न नेता हूँ, न सेवक हूँ, न पंडित, न मौलवी हूँ।

पहला दर्शक : पागल है चलो। (चलने लगता है)

दूसरा दर्शक : हमें उल्लू बनाता है, चलो। (चलने लगता है)

तीसरा दर्शक : चलो, चलो। (चलने लगता है)

[दूसरे लोग भी खड़े होते हैं]

उद्घोषक : भाग रहे हो। लेकिन मेरे सवाल का क्या होगा ? क्या हरिजन कल्याण सप्ताह तुम लोग फिर कभी नहीं मनाओगे ? क्या चुनाव के दिनों में धर्म-निरपेक्षता का मुखौटा तुम नहीं पहनोगे ? क्या सभाओं में, जुलूसों में भाई-भाई का नारा तुम नहीं लगाओगे ?

सब : चलो चलो।

उद्घोषक : तब मैं भी नाटक नहीं शुरू करूँगा।

[पर्दे के पीछे से कुछ लोग दौड़कर आते हैं]

लोग : हमारा क्या होगा ?

उद्घोषक : तुम बढ़ो ! आगे बढ़ो ! इतना आगे कि ये सब लोग बौने नजर आयें। तुम क्या समझते हो अछूतोद्धार कोई समारोह मनाने से होगा ? अपने आपको ऊँचा उठाने से होगा। कबीर बनो या फिर कबीर की बात को समझो ! गांधी के मन में क्या था उसे समझो ! तुम लोग आगे बढ़ो मेरे अछूत कहे जाने वाले भाइयो ! मैं यहीं खड़ा हूँ। मेरा काम ही है नाटक करना। ये लोग चले जायेंगे तो दूसरे आयेंगे। मैं उनसे भी यही सवाल पूछूँगा। जब तक तुममें से एक भी अछूत, दलित समझा जायेगा तब तक बार-बार यह सवाल पूछता रहूँगा।

[धीरे-धीरे मुख्य पर्दा गिरता है] □

खामोश

आनन्द कुरैशी

[पर्दा खुलता है। अदालत का भीतरी दृश्य। जिला वन न्यायाधीश मृगराज कुर्सी पर बैठे हैं। कठघरे में वानर प्रसाद खड़ा है। एक ओर रीडर रीछपाल, वकील सूअर प्रकाश सब अपनी-अपनी जगह बैठे हैं। दर्शक भी हैं।]

गैंडादास : (यथा स्थान खड़े होकर) मिस्टर वानर प्रसाद, तुम पर चार्ज है कि तुमने परीक्षा-कक्ष में अध्यापक खरगोश चन्द्र को इस कारण धमकाया कि उन्होंने तुम्हें नकल करने से रोका था। उनका कहना है कि तुमने उन्हें एक चाकू भी दिखाया था।

वानर प्रसाद : आप नही जानते सर, श्री खरगोश चन्द्र जी वैसे भी हमेशा घबराये-से रहते हैं। जहाँ तक चाकू दिखाने का सवाल है, शायद उन्होंने घबराहट मे गलत अनुमान कर लिया—मैंने तो खाली गत्ते का टुकड़ा दिखाया था।

[सब हँसते है।]

मृगराज : (मेज पर हथौड़ा मारते हुए) खामोश, यह अदालत है। हाँ, तो इसका मतलब यह हुआ खरगोश चन्द्र झूठ कहते है।

वानर प्रसाद : अब मैं अपने मुँह से कैसे कह सकता हूँ, सर। वैसे एक बात बतला दूँ, मुझे क्रोध जरूर आया था उन्हें देखकर। बात यह है सर, खरगोश चन्द्र जी कहने को विज्ञान पढ़ाते है। लेकिन ईश्वर सौगन्ध मैंने उनको तीन महीने बाद उस दिन देखा था। साल-भर मे मुश्किल मे पाँच बार पीरियड लिया होगा। सर, प्रैक्टिकल तो एक भी नही कराया। अब आप सोच सकते हैं, हम लोग परीक्षा क्या खाक देते! आप न मानें तो विज्ञान-कक्ष के चपरासी बदाभाई भेड़ से पूछ सकते हैं।

रीछपाल : (आवाज लगाता है)—चपरासी बदाभाई को हाजिर किया जावे।

चपरासी जिराफ खाँ : (दर्शकों के नजदीक आकर जोर से)—चपरासी बदाभाई हाजिर हो! चपरासी बदाभाई हाजिर हो! चपरासी बदाभाई हाजिर हो!

[बदाभाई दर्शकों के बीच रास्ता बनाता गवाह के कटघरे में आकर खड़ा हो जाता है।]

सूअर प्रकाश : अध्यापक खरगोश चन्द्र को जानते हैं आप?

बदाभाई : लो मास्टरजी को भला मैं क्यों नहीं जानूंगा? सारा दिन तो उनके घर पर रहता हूं।

सूअर प्रकाश : क्यों? क्यों? उनके घर क्यों?

बदाभाई : बहुत काम रहता है जी। खाना बनाता हूँ, कपड़े धोता हूँ, सामान ला देता हूँ। मास्टर जी को फुरसत थोड़े ही मिलती है। घर का काम तो मुझे ही करना पड़ता है जी।

सूअर प्रकाश : क्यों? क्यों? तुम्हें क्यों?

बदाभाई : लो, आपको पता ही नहीं। दिन भर बेचारे ट्यूशन करते है घर-घर जाकर।

[सब हँसते है।]

मृगराज : (हथौड़ा ठोककर) खामोश! यह अदालत है! हाँ, तो मिस्टर वानर प्रसाद का कहना है कि खरगोश चन्द्र ने अब तक एक भी प्रैक्टिकल का पीरियड नहीं लिया है। क्या यह सच है?

बदाभाई : लो, आपको पता ही नहीं। चाबी तो मेरे पास रहती है जी। मुझे तो याद ही नहीं कि मैंने कभी कमरे का ताला खोला हो। कीमती सामान है साहब, खो जाये, टूट जाये तो बेचारे मास्टर जी मर नहीं जायेंगे?

[सब हँसते हैं।]

मृगराज : (हथौड़ा ठोककर) खामोश! खामोश!! चरागाह समझ रखा है, कह दिया यह अदालत है। हाँ, तो मतलब यह हुआ वेतन तुम सरकारी खजाने का उठाते हो और काम मास्टर जी का करते हो?

बदाभाई : मास्टर जी भी तो प्रिंसिपल साहब का काम करते हैं जी।

[सब हँसते हैं।]

मृगराज : (हथौड़ा ठोककर) चोप्प! खामोश नहीं रह सकते क्या! हाँ, तो क्या मतलब है तुम्हारा?

बदाभाई : प्रिंसिपल साहब के लड़कों को उनके घर जाकर पढ़ाते हैं। लो, आपको पता ही नहीं जी !

[सब दबी आवाज में हंसते हैं। मृगराज हथौड़ा फेंकते-फेंकते रह जाते हैं।]

मृगराज : हूँ, तो स्थिति बहुत गम्भीर है। शिक्षा विभाग को लिखना होगा। लिखो रीडर साहब खास पोइंट है यह। समझे ?

बदाभाई : मैं भी यही कहता हूँ जी, खास पोइंट है।

मृगराज : तुम चुप रहो। हाँ, तो इसका मतलब यह हुआ कि खरगोश चन्द्र की रिपोर्ट झूठी है।

वानर प्रसाद : आप उनसे कब मिले थे सर ? यहाँ तो अभी उनके बयान भी होने बाकी हैं?

मृगराज : मेरे घर रोज आते हैं भाई। मेरे बच्चों को विज्ञान पढ़ाते हैं।

[अदालत में जोरदार ठहाका लगता है। इसी के साथ पर्दा धीरे-धीरे गिरता है।]



प्रजा का भाग्य

कुन्दन सिंह सजल

पात्र

ठाकुर भीमसिंह : रायपुर के ठाकुर
छोटूराम : ठाकुर भीम सिंह का टहलुआ
प्रधानमन्त्री : पाटन राजा का दीवान
महेश, दिनेश, सुरेश, परेश, जनेश—सभी नागरिक,
एक सिपाही

प्रथम दृश्य

[सुनसान पथ पर ठाकुर भीमसिंह और उनका टहलुआ छोटूराम चले जा रहे हैं। वे रियासत की राजधानी पाटन की ओर परस्पर बातें करते हुए जा रहे हैं। समय प्रातःकाल के लगभग सात बजे]

छोटूराम : ठाकुर साहब, आज राव राजा पाटन की तेरहवीं है और आज ही नये राजा का चयन किया जायेगा।

भीमसिंह : हां, भाई छोटूराम, इस रियासत में राजा के चयन का तरीका भी कितना अजीब है। पूरी रियासत की प्रजा आज राजधानी पाटन में एकत्रित होगी और एक बाज छोड़ा जायेगा। बाज एकत्रित प्रजा में से जिसके भी सिर पर बैठ जायेगा, वही रियासत का शासक नियुक्त होगा।

छोटूराम : हमारे गांव रायपुर में भी कल डोंडी पीटकर यह घोषणा प्रसारित करवायी गयी थी और हरेक प्रजाजन को उपस्थित होने

का आमंत्रण दिया गया था।

भीमसिंह : हमारे ही गाँव में क्यों, पाटन रियासत के हर गाँव में इसी प्रकार डोंडी पिटवाकर प्रचारित करवाया गया है कि राव राजा की तेरहवीं के दिन बाज छोड़कर नये राजा का चयन किया जायेगा।

छोटूराम : अब देखो, प्रजा के भाग्य से बाज किसके सिर पर बैठता है?

भीमसिंह : अच्छा छोटूराम, तुम यह बताओ यदि भाग्यवश बाज तुम्हारे सिर पर बैठ जाये और तुम्हीं पाटन के राजा घोषित कर दिये जाओ तब तुम क्या-क्या कार्य प्रजा के हित में करोगे?

छोटूराम : ठाकुर साहब, मैं ठहरा आपका टहलुआ, आपका सेवक। पहले तो सभव ही नहीं कि मेरे सिर पर बाज बैठे और यदि बैठ भी जाये तो मैं अपनी योजना बाद में बताऊँगा। पहले आप फरमाइये कि यदि बाज आपके सिर पर बैठ जाये तो राजा बनकर आप क्या-क्या करेंगे?

भीमसिंह : भाई छोटूराम, यदि प्रजा का सौभाग्य हो और बाज इत्तफाक से मेरे सिर पर बैठ जाये तो मैं राज्य के सभी देवालयों में यज्ञ, हवन तथा धार्मिक कृत्यों को अनिवार्य कर दूँगा। प्रजा की बेरोजगारी मिटा दूँगा, महँगाई पर अंकुश लगा दूँगा। चोरी, डकैती, ठगी, तस्करी सभी कुछ अपने राज्य से समाप्त करवा दूँगा। राज्य के किसान अपनी फसलें दुगुनी पैदा करेंगे। उनके लिए अच्छे खाद-बीज की व्यवस्था करवाऊँगा। सभी प्रकार के नशों पर पाबंदी लगा दूँगा। गाँव-गाँव में अस्पताल खुलवाऊँगा। अशिक्षा व कुशिक्षा की समाप्ति के लिए गाँव-गाँव में विद्यालयों की व्यवस्था करूँगा। अब तुम बताओ, तुम क्या-क्या करोगे, राजा बनकर।

छोटूराम : ठाकुर साहब, मेरे सिर पर तो बाज बैठने का मतलब होगा प्रजा का दुर्भाग्य, क्योंकि मैं तो राजा बनकर सुरा और सुन्दरियों में डूबा रहूँगा। राज्य कर्मचारियों को भ्रष्टाचार की पूरी छूट दे दूँगा। कोई कुछ भी करे मैं अपने ऐशो-आराम में दखल पसंद नहीं करूँगा।

भीमसिंह : प्रजा-हित की दृष्टि से ये सब बातें उचित तो नहीं हैं, आगे तुम्हारी इच्छा। (कोलाहल सुनायी देता है) लगते [illegible] से राजधानी के करीब आ पहुँचे हैं। जनरव यहीं से [illegible] रहा है।

छोटूराम : ज्ञात होता है कि लोग इसमें भी पहुँ[illegible] । अब

देखो, सूर्य भी काफी चढ़ आया है और हम राजधानी में प्रवेश कर रहे हैं।

दूसरा दृश्य

[सायंकाल के चार बजे हैं। एक बहुत बड़े मैदान में पाटन रियासत की जनता अपने भावी राजा के चयन हेतु एकत्रित है। मैदान में अस्पष्ट जनरव व्याप्त है। राज्य के मंत्रीगण एक ऊँचे मंच पर विराजमान हैं। एक उच्च आसन पर बाज पक्षी बैठा हुआ है। राज्य के प्रधानमंत्री उठकर घोषणा करते हैं। शोर शांत हो जाता है।]

प्रधानमंत्री : प्रिय प्रजाजनो, आज हमारे स्वर्गीय राव राजा की तेरहवीं है। बारह दिन के राजकीय शोक के पश्चात् आज हम नये राजा के चयन हेतु यहाँ एकत्रित हुए हैं। जैसा कि आपको ज्ञात है (बाज की ओर इशारा करके) यह पक्षी छोड़े जाने पर जिस भी प्रजाजन के सिर पर बैठ जायेगा, वही राज्य का भावी शासक होगा। राज्य के सभी कार्य उसके हस्ताक्षरों से ही संचालित होंगे। (अस्पष्ट जनरव) हाँ, तो (घड़ी देखकर) अब समय हो रहा है और एक मिनट पश्चात् ही यह पक्षी उड़ेगा। आप लोग शांत बैठकर ईश्वर से प्रार्थना कीजिये कि यह किसी सज्जन व्यक्ति के सिर पर बैठे।

[इशारा पाकर एक मंत्री बाज पक्षी को उड़ाता है। लोग शांत हो जाते हैं। बाज पूरे मैदान की भीड़ पर चक्कर लगाकर एक कोने में मंडराने लगता है। उस कोने में ठाकुर भीमसिंह अपने टहलुए छोटूराम के साथ बैठे हैं और देखते-ही-देखते बाज छोटूराम के सिर पर बैठ जाता है। पूरे मैदान की उत्सुक निगाहें छोटूराम की ओर उठ जाती हैं। एक बार फिर अस्पष्ट जनरव वातावरण पर तैर जाता है। राज्य मन्त्रिमंडल के वरिष्ठ सदस्य जाकर छोटूराम को सादर मंच पर लाते हैं। प्रधानमंत्री छोटूराम से परिचय प्राप्त करने के बाद मंच पर खड़े होकर घोषणा करते हैं]

प्रधानमंत्री : हे प्रजाजनो, बाज ने हमारे भाग्य का फैसला कर दिया है। आज से हमारे राजा (छोटूराम की ओर इशारा करके) छोटूराम

जी हो गये है। छोटूरामजी राजधानी के पास के गाँव रायपुर के रहने वाले है। ये एकदम जवान और युवक है। हम सभी इनके दीर्घ जीवन की ईश्वर से कामना करते है और अंतर से चाहते है कि ये दीर्घायु होकर हमें अपना मार्ग-दर्शन और सफल राज्य संचालन देते रहें। बोलो राजा छोटूरामजी की...

प्रजाजन : ...जय।

तीसरा दृश्य

[राजधानी पाटन का एक बाजार। बाजार की एक दूकान पर कुछ युवा नागरिक बैठे हैं और राजा के कुकृत्यों पर परस्पर चर्चा कर रहे हैं। समय मध्याह्न काल]

महेश : हमारे राजा छोटूराम को न सुरा से अवकाश है न सुन्दरियो से फुर्सत। राज्य में कितना भीषण अकाल पड़ा है किन्तु राजा के ऐशो-आराम में तनिक भी कमी नही आयी है और उन्हे प्रजा की सुधि लेने का तो जैसे खयाल ही नही है।

दिनेश : महगाई सुरसा की भाँति बेलगाम बढ़ती ही जा रही है। व्यापारियों ने चीजों के मनमाने भाव कर दिये है। राजा की न व्यापारियो पर रोक है न तस्करियों पर पकड़।

सुरेश : दैनिक समाचार पत्र प्रतिदिन जगह-जगह होने वाले बलात्कारो की खबरें छापा कर रहे है किन्तु राजा के कान पर जूं तक नही रेंगती। उन्हे तो अपनी मस्ती से मतलब है।

परेश : राज्य में डकैती तो अब आम चलन हो गया है। राज्य की पुलिस निष्क्रिय है। डकैत आये दिन प्रजाजनों को लूट रहे हैं। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है किन्तु उसके क्रन्दन को सुनने वाला कोई नही है।

जनेश : मन्त्रिमंडल के सभी सदस्य राजा की झूठी हाँ में हाँ मिलाकर अपनी कुर्सियाँ बरकरार रखने की जोड़-तोड़ में हैं। उन्हें प्रजा के दुःख से कोई सरोकार नही है और यदि है भी तो उसे राजा तक पहुँचा कर राजा के आराम मे दखलंदाजी नही करना चाहते।

महेश : राज्य कर्मचारी प्रजा की लूट मे सक्रिय हैं। प्रजा का कोई भी काम किसी भी स्तर पर बिना रिश्वत दिये नही होता। भ्रष्टाचार उनकी रगों मे समा गया है।

दिनेश : राजा के नजदीकी लोग अपने विपक्षियों पर झूठे इल्जाम लगाकर मुकदमे दायर कर रहे है तथा उन्हें हर प्रकार से परेशान कर रहे है।

सुरेश : (सामने से सिपाही को आता देखकर) धीरे बोलो, सामने देखो, वह सिपाही नशे में धुत्त डगमगाते कदमों से इधर ही आ रहा है।

सिपाही : (पास आकर) क्यों बे...नालायको...राजा की...बुराई कर रहे हो?...हमारे राजा...वो छोटूरामजी...बहुत अच्छे... राजा है। (महेश से) क्यों बे. क्या चुगली...कर रहा था... राजाजी की...है।

महेश : नही दीवानजी, हम तो राजा का गुणगान कर रहे हैं। हमारे राजा सचमुच देव पुरुप है और प्रात. स्मरणीय है।

सिपाही : ठीक है...ठीक है...तुम बहुत अच्छे...नागरिक हो।(जाता है)

दिनेश . कितनी शराब पी रखी है। चारो ओर का वातावरण दुर्गन्धमय हो गया। हे ईश्वर, इस राज्य मे रहना तो सचमुच नरक की यातना सहना है।

परेश : यह राजा किसी का कहा-सुना भी तो नही मानता। अभी कुछ दिन पहले प्रजा की ओर से एक शिष्टमडल राजा से मिला था और राज्य की सारी दुर्व्यवस्था से उन्हे अवगत भी कराया गया था किन्तु आश्वासन के पश्चात् भी स्थिति में कोई अंतर नही आया, वही ढाक के तीन पात।

जनेश : मित्रो, मुझे ज्ञात हुआ है कि हमारे ये राजा साहब, इनके गांव रायपुर के ठाकुर भीमसिह के घरेलू सेवक थे। अपन चलकर ठाकुर साहब से निवेदन करें और वे आकर इनको यदि समझाएँ तो शायद राजा के आचरण मे कुछ सुधार की आशा की जा सकती है।

सुरेश : यह करके भी देख लो। यदि इतना-सा करने मात्र से स्थिति में कुछ फर्क पड़ जाये और प्रजा के भाग्य बदल जाएँ तो सोने में सुगन्ध।

दिनेश : तब हम लोग कल रायपुर चलेंगे और ठाकुर भीमसिहजी के सामने सारी स्थिति बयान कर देंगे। वैसे तो वे स्वयं राजा के कारनामो से परिचित होंगे किन्तु हम उनसे अनुरोध करेंगे कि वे आकर राजाजी को समझाएँ।

जनेश : ठीक है, तो कल प्रातःकाल ही हम रायपुर के लिए प्रस्थान करेंगे।

महेश : हमारी प्रार्थना है कि आप एक वार जाकर उन्हें अवश्य समझाएँ तथा सारी स्थिति से अवगत कराएँ।

परेश : खेद तो इस बात का है कि उनके मंत्रिमंडल के सहयोगी उन्हें राज्य की वस्तुस्थिति से अवगत नहीं कराते तथा प्रजा के अमन-चैन की झूठी बातें कहकर उन्हें अँधेरे में रखते हैं।

भीमसिंह : ठीक है, आपलोगों का अनुरोध है तो मैं राजा से मिलकर बात करूँगा लेकिन मेरी समझ में उनका आचरण बदलना असंभव है।

सभी एक साथ : आप कोशिश करके तो देखिये। अच्छा, चलते हैं। राम-राम (जाते हैं)।

पांचवां दृश्य

(राजा छोटूराम की खास सलाहगाह में ठाकुर भीमसिंह और राजा छोटूराम बैठे हैं। राजा एक ऊँचे आसन पर विराज रहे हैं। सामने टेबल पर अंग्रेजी शराब की बोतल व प्याला रखा है। दो सुन्दरियाँ दाएँ-बाएँ खड़ी पंखा झल रही हैं। एक सुन्दरी प्याला भरकर राजा की ओर बढ़ाती है। समय संध्या काल का है।)

छोटूराम : ठाकुर साहब, हमारी मनुहार तो स्वीकार कीजिये। एक पैग तो ले लीजिये। (सुन्दरी के हाथ से पैग लेकर ठाकुर की ओर बढ़ाता है)

भीमसिंह : आप जानते हैं राजा साहब...

छोटूराम : (बीच में ही) मुझे मालूम है, आप पीते नहीं हैं लेकिन आपके मुँह से मुझे राजा साहब कहना, शोभा नहीं देता। आप तो मुझे छोटूराम कहकर ही संबोधित कीजिये।

भीमसिंह : अच्छा तुमको इतना होश तो है, शुक्र है भगवान का।

छोटूराम : फिर क्या आप मुझे बेहोश समझते हैं?

भीमसिंह : नहीं, मैं तो तुम्हें बेहोश नहीं समझता किन्तु प्रजा का जो बेहाल इस समय हो रहा है, वह तो इस बात का एक प्रतिशत भी प्रमाण नहीं कि तुम होश में हो और पूरे होश में हो।

: ... बात छोड़िये ठाकुर साहब, आप अपनी कहिये, आपको ... है? आपने यहाँ पधारने का कैसे कष्ट किया? ... हो तो निस्संकोच कहिये। (सुन्दरी एक ... है जिसे राजा गटक जाते हैं)

चौथा दृश्य

[प्रातःकाल के 9 बज रहे हैं। ठाकुर भीमसिंहजी की बैठक में पाटन से आये नागरिक उनसे बातें कर रहे हैं। ठाकुर साहब पलंग पर बैठे हैं, हाथ में माला है। वे *माला फिरा रहे हैं। नागरिक कुर्सियों पर बैठे हैं।*]

महेश बहुत हो गया ठाकुर साहब, अब हमसे अधिक नहीं सहे जा सकते राजाजी के जुल्म। हम राज्य के जागरूक युवा नागरिक है, प्रजा का क्लेश अब हमसे नहीं देखा जाता।

दिनेश . आप देख रहे हैं, कितना भीषण अकाल राज्य में पड़ा है। आदमी और पशु अनाज और चारे के अभाव में बिना मौत काल के ग्रास बन रहे है और हमारे राजा को सुरा और सुन्दरियों से अवकाश नहीं है।

सुरेश • प्रजा पर क्या-क्या कहर बरपाये जा रहे है। महंगाई द्रोपदी का चीर हो गयी है। चोरी, डकैती, तस्करी, रिश्वत आम रिवाजों जैसे हो गये है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। लोग गरीब से अधिक गरीब हो रहे है और धनवानों की बन आयी है। गरीब लोग गरीबी के मारे अपना ईमान बेचने तथा धर्म बदलने पर मजबूर हो रहे है।

महेश . राज्य के चंद व्यापारिक घराने करोड़पति से अरबपति हो गये है। राज्य की सारी अर्थव्यवस्था चरमरा गयी है।

परेश : सरकारी कर्मचारियों की लूट पर कोई अंकुश नही है। बिना रिश्वत के कोई भी जायज या नाजायज कार्य होना असभव है।

जनेश . किसी भी प्रजाजन की इज्जत आज सुरक्षित नही है। पुलिस जो प्रजा की रक्षा के लिए है, भक्षक बन गयी है। गरीबों के झुग्गी-झोंपड़ों को उजाड़कर उनकी जगह पूंजीपतियों या राजनेताओं के महल खड़े किये जा रहे हैं।

महेश : हमने सुना है कि राजा छोटूरामजी किसी समय आपके सेवक हुआ करते थे। हम चाहते है कि आप चलकर उन्हें समझाएँ ताकि वे अपने आचरण में परिवर्तन कर प्रजा के दु.ख, तकलीफों की ओर ध्यान दें।

भीमसिंह : सुना तो आपने सही है लेकिन राजमद किसे नहीं होता ? मैं उसके पास जाऊँ और वह मेरी बात नहीं मानें तो फिर क्या उपाय है आपके पास ?

महेश : हमारी प्रार्थना है कि आप एक बार जाकर उन्हें अवश्य समझाएँ तथा सारी स्थिति से अवगत कराएँ।

परेश : खेद तो इस बात का है कि उनके मन्त्रिमंडल के सहयोगी उन्हें राज्य की वस्तुस्थिति से अवगत नही कराते तथा प्रजा के अमन-चैन की झूठी बातें कहकर उन्हें अँधेरे में रखते हैं।

भीमसिंह : ठीक है, आपलोगो का अनुरोध है तो मैं राजा से मिलकर बात करूँगा लेकिन मेरी समझ मे उनका आचरण बदलना असभव है।

सभी एक साथ : आप कोशिश करके तो देखिये। अच्छा, चलते है। राम-राम (जाते हैं)।

पाँचवाँ दृश्य

[राजा छोटूराम की खास सलाहगाह में ठाकुर भीमसिंह और राजा छोटूराम बैठे हैं। राजा एक ऊँचे आसन पर विराज रहे हैं। सामने टेबल पर अंग्रेजी शराब की बोतल व प्याला रखा है। दो सुन्दरियाँ दाएँ-बाएँ खड़ी पंखा झल रही हैं। एक सुन्दरी प्याला भरकर राजा की ओर बढ़ाती है। समय संध्या काल का है।)

छोटूराम : ठाकुर साहब, हमारी मनुहार तो स्वीकार कीजिये। एक पैग तो ले लीजिये। (सुन्दरी के हाथ से पैग लेकर ठाकुर की ओर बढ़ाता है)

भीमसिंह : आप जानते है राजा साहब...

छोटूराम : (बीच में ही) मुझे मालूम है, आप पीते नही है लेकिन आपके मुँह से मुझे राजा साहब कहना, शोभा नही देता। आप तो मुझे छोटूराम कहकर ही संबोधित कीजिये।

भीमसिंह : अच्छा तुमको इतना होश तो है, शुक्र है भगवान का।

छोटूराम : फिर क्या आप मुझे बेहोश समझते हैं?

भीमसिंह : नही, मैं तो तुम्हे बेहोश नहीं समझता किन्तु प्रजा का जो बेहाल इस समय हो रहा है, वह तो इस बात का एक प्रतिशत भी प्रमाण नही कि तुम होश मे हो और पूरे होश में हो।

छोटूराम : प्रजा की बात छोड़िये ठाकुर साहब, आप अपनी कहिये, आपको क्या तकलीफ है? आपने यहाँ पधारने का कैसे कष्ट किया? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो निस्संकोच कहिये। (सुन्दरी एक पैग भरकर फिर पेश करती है जिसे राजा गटक जाते हैं)

भीमसिंह मेरा अपना कोई प्रयोजन तुमसे दरख्वास्त करने का नहीं है। मैं तो तुम्हें प्रजा की स्थिति से अवगत कराने आया हूँ। अब भी समय है संभल जाने का और अपना स्थान प्रजा के मानस में बनाने का।

छोटूराम : मुझे न प्रजा के मानस की परवाह है और न उसकी आलोचना की। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, अपने विवेक से कर रहा हूँ और जो मैं अपने विवेक से कर रहा हूँ, वह मेरे विवेक से ठीक ही है।

भीमसिंह : तुम सदा राजा नहीं रहोगे छोटूराम। कुछ तो ऐसा कर जाओ कि भविष्य में भी तुमको प्रजा याद रखे। अब तुम्हारा ही नहीं प्रजा का भाग्य भी तुम्हारे इशारे से संवर एवं बिगड़ सकता है।

छोटूराम (हँसता है, सुन्दरी एक पैग और बढ़ाती है, उसे खाली करके) ठाकुर साहब, मैंने आपको उसी दिन अर्ज नहीं किया था कि राजा बनकर मैं क्या-क्या करूँगा। आप सोचिये, प्रजा का भाग्य ही अगर अच्छा होता तो बाज बजाय मेरे आपके सिर पर नहीं बैठता? यह तो प्रजा का दुर्भाग्य है जिस कारण बाज मेरे सिर पर बैठा और मैं तो जितने दिन का भी राजा हूँ, ऐशो-आराम से जिंदगी बसर करूँगा। अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए इतना धन, इतनी जायदाद इकट्ठी कर जाऊँगा कि वे मौज से अपनी जिन्दगी बसर कर लें। मुझे प्रजा के हाल-बेहाल से कुछ भी लेना-देना नहीं है। मैंने अपना जीवन जिस रफ्तार पर ढाल लिया है, उसे मैं बदल नहीं सकता हूँ। (सुन्दरी प्याला आगे बढ़ाती है, राजा उसे थामकर पी जाते हैं) बाज मेरे सिर पर बैठा और मैं राजा बना। अब प्रजा के हाथ में नहीं है कि वह मुझे अपदस्थ कर सके। जो कुछ भी अब मैं करूँगा, अपनी मर्जी से करूँगा। जो मेरी हाँ में हाँ मिलायेंगे, मौज करेंगे, अपने पदों पर बने रहेंगे। जो मुझे नसीहत देंगे या खिलाफत करेंगे, वे अपदस्थ कर दिये जायेंगे।

भीमसिंह : जैसी तुम्हारी मर्जी, छोटूराम। भविष्य में इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा, सोच लो।

छोटूराम : मैं तो आज पर जिन्दा हूँ, कल किसने देखा है। कल जो देखेगा वह भोगेगा। मुझे तो आज को भोगने दो ठाकुर साहब, और आप भी मेरे दरबार में रहो, ऐश करो।

भीमसिंह : नहीं, नहीं, मुझे मेरे हाल में रहने दो। तुम्हें धन्यवाद। अच्छा अब मैं चलता हूँ (जाता है)।

पटाक्षेप

□

कलम, कागज और किताब

भगवतीप्रसाद गौतम

"कलम बड़ी है कलम बड़ी।
जब चाहे तब कर सकती है
इसकी-उसकी खाट खड़ी..."

छोटी बिटिया बड़े ही जोश-खरोश के साथ इन पंक्तियों को उच्चारित करने लगी ही थी कि हम चीख उठे—"ऐ! क्या बकवास कर रही हो यह?"

"यह तो आपकी ही कविता पढ़ रही हूँ, पापाजी।" उसने अपने मन में भरा किलो भर उल्लास उगल दिया।

"हमारी कविता? कब लिख मारी हमने ऐसी कविता?"

"हाँ हाँ, आपकी ही है। नहीं मानें तो देख लीजिए फाइल में।"

"फाइल में कैसे मिल गयी ऐसी..."

"कल मम्मीजी ने आपके कमरे के साजो-सामान को धूप दिखायी तो हमने उसी फाइल में इसे देखा और पढ़ा भी।...कलम किसी की खाट कैसे खड़ी कर सकती है, पापाजी?" उसने एक भारी प्रश्न उछाला।

"चुप रहो। अभी तुम नहीं समझ सकती यह सब। लाओ, हम देखें, वह फाइल कहाँ है।" कहते हुए हमने फाइल कब्जे में कर ली।

सच, उसमें कविता घायल अवस्था में सुरक्षित थी और हमें यह सोचने को मजबूर हो जाना पड़ा था कि हम इस स्तर तक भी उतर सकते हैं। आखिर, हम जो इस सदी के गंभीर रचनाकार हैं!

खैर साहब, कलम की ही बात चल पड़ी है तो उसे रोका भी कैसे जा सकता है! हाथ कंगन को आरसी क्या! कलम घसीटने में किस बात की कंजूसी!

जब हम छोटे थे तो पिताजी फरमाते थे—"जाओ, दवात-कलम ले आओ।" हम वफादार सिपाही की तरह उनका हुक्म बजाते थे और वे पोल के चबूतरे पर बैठ कर ग्रामीण छुटभैयों के आने-पाई का हिसाब लगाने, लाल सुर्ख

आवरण वाली वहियों में लिखते और फिर आतुर नजरों से झांकते कर्जदार से कहते—"कान्हा, सुन ले। तूने आज की मिती पर दो सौ रुपये उधार लिये थे, जिनका साल भर का ब्याज जुडा अड़तालीस रुपया। यानी कि नौ पचोल और तीन रुपया। कुल धन हुआ दो सौ अड़तालीस...समझ गया?"

"ठीक हजूर।" कान्हा मरियल आवाज में एक टुकड़ा जवाव सरकाता, साफे की आंट से तुडे-मुड़े नोट निकालकर बड़े प्यार से हाथ फेरता हुआ उन्हें देखता जैसे कह रहा हो—"खून-पसीना एक करके तुम्हे जोड़ा था और आज तुम भी जा रहे हो। अच्छा जाओ, मजे में रहना..." और पिताजी को सौंप देता था। तब हमारे मन मे रह-रहकर सवाल उठता था—"कलम मे इतनी ताकत? दो सौ का दो सौ अडतालीस रुपया?"

मगर पिताजी की वहियाँ जहाँ की तहाँ रह गयी और हम चल पडे शहर की ओर। कच्चे झोंपड़ो को छोड़कर जा पहुँचे चूने-सीमेंट की लबी गलियो मे।

चाचाजी ने स्कूल मे दाखिला करवाया तो रो-धोकर नियमित रूप से सही रास्ते पर चलना पड़ा। मगर मास्टर रामनारायण शर्मा ने स्लेट-पट्टी की पढाई-लिखाई के बाद अपनी आदत बघारना प्रारंभ कर दिया—"ऐसे नही, ऐसे पकड़ो कलम। बहुत पीट ली अटियाँ, खूब खेल लिये कबड्डी। अब आये हो वेटा चक्कर मे।" बस समझिये कि उनकी दहाड़ पर नेकर भी भीग जाती हो तो झूठ की रत्ती भर गुंजाइश नही।

हाँ, तो सस्कार ही कुछ ऐसे पड़े कि उन दिनो जो कलम पकडी, वह आज तक भी नही छूट सकी।

स्कूल-कॉलेज मे पढ़ते हुए ही पता लगा कि कलम नाम की चीज बडी ताकतवर होती है। कलम क्या नही है! कलम अफसर है, कलम दफ्तर है, कलम साहूकार है, कलम पत्रकार है, कलम लेखक है, कलम अध्यापक है...यह नेता भी है, अभिनेता भी है, वह जादूगर भी है, बाजीगर भी है। कलम कलम है जनाव!

कलम चलती है तो कोई-न-कोई चीज अवश्य अवतरित होती है—क्या गद्य-पद्य, क्या किस्से-कहानी, क्या संस्मरण-रेखा चित्र, क्या सवाद-परिसवाद, क्या क्षणिकाएँ-हँसिकाएँ...न जाने कैसे-कैसे रग की विधाएँ प्रकट होने लगती हैं।

वह क्या नही कर सकती! वह आगे बढ़ सकती है, पीछे हट सकती है, फकीरचंद को अमीरचद बना सकती है, रणजीत सिंह को रणछोड लाल का जामा पहना सकती है, पान की गुंटी पर खड़े एक अदद फटीचर को टीचर से भिड़ा सकती है, चोटी पर बैठी किसी भी हस्ती को मस्ती मे धूल चटा सकती है। इसे उठा सकती है, उसे गिरा सकती है, पत्थर मे जान डाल सकती है, जिंदा शेर को मुर्दे मे ढाल सकती है।

कलम ही तो है जिसने बड़े-बड़े गदर करवा दिये। कलम ही तो है जिसने

अंग्रेज के बच्चों को हिन्दुस्तान का पानी पिला दिया, अच्छे-अच्छों को छठी का दूध याद दिला दिया। न कलम होती, न देश में जान होती। न कलम होती, न जनता देश पर कुर्बान होती। कलम उठी, लड़ाई छिड़ गयी। कलम उठी, आजादी मिल गयी।

हाँ, तो आजाद देश के कर्णधारो, कलम की धार तलवार की धार से ज्यादा असरदार होती है। इसकी मार मुग्दर की मार से भी ज्यादा खतरनाक होती है। इसके जागने पर बेखबर दुनिया खबरदार होती है। इसलिए कलम का चलना ही अपने आप में बहुत बड़ी क्रांति है।

हम क्रांति लाना चाहते हैं मगर यह बड़ी टेढी खीर है। कलम-क्रांति के लिए कागज-क्रांति चाहिए। कागज कलम की एक अहम् आवश्यकता है। कागज के बिना कलम का क्या अस्तित्व ! कागज और कलम का वैसा ही नाता है जैसा चोली और दामन का।

हम जानते है कि कागज की समस्या शक्कर और प्याज की समस्या से भी ज्यादा गंभीर है। ऐसी गंभीर समस्याओं से निपटने के लिए भी तो ढेर सारा कागज चाहिए।...और तो और रद्दी कागज के भाव सुने आपने ? एकदम आसमान के गाल नोचने वाले भाव ! इसीलिए कागजी घोड़ों की रफ्तार में फर्क आ गया है। कुछ साहित्यकार तो विराम-चिह्नों की भी छुट्टी करने पर तुले हैं ताकि कागज की पीठ पर अधिक-से-अधिक आरतियाँ अंकित कर सकें।

बेचारे अखबार वाले कहते है—कागज ! दफ्तरों के बाबू पुकारते हैं—कागज ! स्कूलों के अध्यापक अलापते है—कागज ! लेखक चिल्लाते है—कागज ! सम्पादक बिलबिलाते हैं—कागज ! कागज की माँग कहाँ नहीं है ! यह चीज ही ऐसी है साहब, जिसे घरवाली भी सुबह-शाम अपार श्रद्धा से याद करती है—आखिर, उसे अँगीठी जो जलानी है।

...कल-परसों ही एक मित्र मिले थे। कहने लगे—"गुरु, एक-आध किताब प्रेस में डाल दो वरना कोई नहीं पूछेगा तुम्हें।"

बात हमें भी जँची। भाई, किताब तो होनी ही चाहिए। इसमें अपनी एक इमेज बनेगी। पत्र-पत्रिकाओं वाले भी कहाँ तक छापेंगे हमारी रचनाएँ। वे तो वैसे भी सच्चे भक्ति-भाव से अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहे हैं। वे या तो मूर्धन्य रचनाकारों के प्राण लेने को तुले हैं या फिर नये हस्ताक्षरों को प्रकाश में लाने का मायावी नाटक रच रहे हैं। फिर तो बचे हमारे जैसे बेहाल बुद्धिजीवी जो न इधर के रहते है, न उधर के। इसीलिए सोचा—अपनी भी किताब मार्केट में आनी ही चाहिए। कवर पेज पर हमारा अपना नाम देख-देखकर उम्र की लंबाई में कम-से-कम दस-बीस बरस की वृद्धि तो हो ही सकती है।

हाँ, तो एक किताब मार्केट में लाने का लक्ष्य बनाकर हमने प्रकाशक का दर-

दाजा खटखटा दिया, मगर यह निकला हमारा गुरु। बोला—"किताब ! कागज कहाँ से आयेगा, डियर ? नहीं-नहीं, फिलहाल आप सब्र कीजिये...फिर कभी...।"

हम तो भूल ही गये थे यार कि कागज का अकाल चल रहा है। बच्चों को पाठ्य-पुस्तकें ही नसीब नहीं हुई हैं। उनकी अभ्यास-पुस्तिकाएँ भी कितनी परेशानी के बाद जुटा पाये थे और हम चले किताब के सपने देखने। वाह !

तो भाईसाहब, कागज नहीं है तो किताब नहीं छपेगी और कागज नहीं है तो कलम-क्रांति भी फीकी-फीकी ही रहेगी क्योंकि कलम, कागज और किताब का संबंध वैसा ही है जैसा रोटी, कपड़ा और मकान का। आम आदमी रोटी, कपड़ा और मकान के लिए ताशे बजा रहा है और हम हैं कि कलम, कागज और किताब की समस्या से जूझ रहे हैं। मगर आप जानते हैं हर समस्या के हल के लिए सही वक्त की तलाश जरूरी है इसलिए हमें फिलहाल धैर्य धारण किये बैठे रहना ही रास आ रहा है। □

लाला मनसुखदास जी का संगीत-प्रेम

अर्जुन 'अरविंद'

लाला मनसुखदास जी से मिले एक अर्सा हो चला था। वे और हम बचपन में एक साथ पढ़े और बढ़े थे। यूँ भी वे दूर के रिश्ते में हमारे भाई ही लगते थे। लाला मनसुखदास जी कुल मिलाकर आदमी बड़े मिलनसार हैं। उनका सबसे बड़ा गुण या शौक मेहमान नवाजी है। उनके घराने में उससे भी बड़ा दिलचस्प शौक है, गाने का। उनके घराने में गाना आमतौर पर खाने के पश्चात् शुरू होता है। मनसुखदासजी के घराने को गाने की प्रेरणा अक्सर वह अभागा मेहमान देता है जो किस्मत का मारा भूल से उनकी ओर आ निकलता है।

घर में जब भी कोई मेहमान आता है, लाला मनसुखदास जी बड़ी आत्मीयता से उसकी आवभगत करते हैं। यह उनकी हॉबी समझिये या पुश्तैनी परम्परा कि पूरा परिवार ही मेहमान नवाजी में व्यस्त हो जाता है।

मनसुखदास जी से हमारा सम्पर्क टूटे अनेक वर्ष हो गये थे। लेकिन पत्र-व्यवहार की रस्म उनसे बदस्तूर चल रही थी। उनके लगभग हर पत्र में ही आग्रह होता था कि मैं उनकी मेहमान नवाजी स्वीकार करूँ। अतः उनके बार-बार के आग्रह से प्रभावित होकर एक दिन हम उनके यहाँ जा पहुँचे।

उस दिन शाम को उनके यहाँ बड़ा रुचिकर खाना बना। खाने के पश्चात् मनसुखदास जी ने पेट पर दो-तीन बार हाथ फेरा और कुछ लम्बी डकारें लेकर पूछने लगे—"कुछ देर ताश-वाश खेलोगे?"

"नहीं।"

"अरे दो-चार बाजी ही सही।"

भोजन से तृप्ति हो जाने के बाद हमें जम्हाई पर जम्हाई आती जा रही थी। उस समय मूड सिर्फ सोने का हो रहा था। इसलिए उन्हें साफ उत्तर दिया—"जब से नौकरी के चक्कर में फँसे हैं, ताश-वाश का सब चक्कर छूट गया। कभी हम-तुम साथ खेला करते थे। वे दिन अब कहाँ?"

वे तुरन्त अपने पुत्र से बोले—"अरे रज्जू ! जा, फिर भीतर से ग्रामोफोन उठा ला।"

लड़का ग्रामोफोन लेने चला गया तो मनसुखदास जी अपने ग्रामोफोन की विशेषताओं का वर्णन करने लगे—"आजकल असली जापानी चीज मिलती कहाँ है ? वह तो बीस वर्ष पहले अचानक मेरे हाथ लग गया था। मैंने आज भी इसे सँभालकर रख छोड़ा है।"

मैं सोचने लगा था, जापान की प्रगति का महत्व इस बात से नहीं है कि वहाँ के लोगों ने पश्चिम की सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान को अपनाया है और न ही इस बात में है कि उन्होंने निरन्तर उत्पादन और आविष्कारों में वृद्धि की है। उसका महत्व तो केवल इस बात में छिपा है कि जापान के लोग भारत के मध्यम वर्ग को जापानी ग्रामोफोन, जापानी घड़ियाँ, जापानी साड़ियाँ, जापानी रेडियो आदि हजारों प्रकार की घटिया, बेकार लेकिन सस्ती वस्तुएँ भेजकर उन्हें झूठा अहं पाले रखने में सफल होते हैं।

उस ग्रामोफोन को ही लीजिये, देखने में अत्यन्त आकर्षक, वजन में काफी हल्का, एकदम रेडियो जैसा लगता था और कीमत केवल पचपन रुपये। लेकिन हर महीने या पन्द्रह दिन बाद उसका फनर टूट जाना तो मामूली बात है। यह बात तो प्रसंग से हटकर है। हाँ, असल बात तो है गाने की। मनसुखदास जी ने एक रेकार्ड उठाया, जिस पर धूल की पर्त जमी हुई थी। उसे साफ करते हुए वे बोले—"आपने यह गाना तो सुना है न—अब के बलमवा, परदेश मत जाइयो..."

"जी हाँ, मैंने तो यह फिल्म भी देखी है।"

मनसुखदास जी को हमारा उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ। वे निराश हो उठे और दूसरा रेकार्ड उठाते हुए बोले—'हवा में उड़ता जाये, मेरा लाल दुपट्टा मल-मल का...' तो आपने अवश्य नहीं सुना होगा ?

न चाहते हुए भी निराश होकर हमें उनके आगे आत्म-समर्पण करना ही पड़ा—"हाँ, यह तो नहीं सुना।"

"तो अब सुन डालो।" कहकर उन्होंने रेकार्ड बजाना आरम्भ कर दिया। लेकिन शायद उनके ग्रामोफोन को हमारी दशा पर रहम आ रहा था। इसलिए उस पर आधा गाना भी न बज पाया था कि उसका फनर टूट गया या अन्य किसी खराबी के कारण घड़-घड़ की आवाजें आने लगीं।

मनसुखदास जी का मुँह कड़वाहट से भर उठा। उन्होंने आवाज दी—"अरे रज्जू ! यह ग्रामोफोन बन्द कर दे।" फिर मुस्कराव[illegible] वमे वड़ी [illegible] पुत्री को सबोधित कर बोले—"बेटी संगीता, [illegible] जरा गाना तो सुनाओ !"

मनसुखदास जी की आवाज सुनकर बेचारी [illegible] त

है। वह लाज के मारे कानों तक लाल हो उठती है और सिर झुका लेती है। इस तरह हमें पूरा विश्वास हो गया कि संगीता गाना तो क्या, बोलना भी नहीं जानती होगी। किन्तु उसे विवश किया जा रहा है।

जब संगीता कुछ देर तक टस-से-मस नहीं हुई तो मनसुखदास जी ने दूसरी बार प्यार से लेकिन तनिक ऊँची आवाज में कहा—"संगीता बेटी, हारमोनियम भी ले आना, मेरे कमरे में रखा है।"

हमारी पलकें पहले ही नींद के कारण झुकी जा रही थीं। लेकिन विवश होकर धीरे-से संगीता से कहना ही पड़ा—"हाँ, संगीता बहिन, तुम कुछ सुना दो। मैंने बड़ी तारीफ सुनी है, तुम्हारे गाने की। हमारे गुड्डू की माँ कह रही थी कि तुम बड़ा अच्छा गाती हो।"

जो कुछ हमने संगीता से कहा था, वह कोरा और सफेद झूठ था। क्योंकि न तो बेचारी संगीता अच्छी तरह गा सकती थी और न गुड्डू की माँ गाना सुन सकती थी। क्योंकि वह तो जन्म से ही बहरी है। और फिर बहिन संगीता—उसका क्या किया जाये कि भारत की स्त्रियाँ केवल दो ही प्रकार की होती हैं. एक माँएँ और दूसरी बहिनें। यदि वह सुन्दर हो, युवा हो तो बहिन और कुरूपा हो तथा अधेड़ या बूढ़ी हो तो माँ होती है। भारत में स्त्रियों के बस दो ही प्रकार हैं। तीसरा कोई नहीं। क्योंकि इनके बीच की विवाहित स्त्री तो स्त्री न होकर पैर की जूती बन जाती है।

संगीता गाने लगती है। मनसुखदास जी हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। उनकी पत्नी पीढ़े पर बैठी अपनी पुत्री की ओर घूर रही है कि वह मेहमान की ओर देख तो नहीं रही है! संगीता मध्यम बारीक कंठ से स्वर को तनिक ऊँचा उठाकर गाने लगती है—"बलमा सिपइया, हाय रे तेरी बंदूक से डर लागे..."

और हम गाना सुनते-सुनते कल्पना-लोक में विचरने लगे। हम देख रहे थे कि किसी नाजुक बदन रूपसी ने प्यार की हिमाकत भी की तो एक क्रूर सिपाही के साथ। कवि ने किस प्रकार विचित्र पात्रों का सूत्र पिरोया है! सिपाही और रूपसी युवती। इन कवियों का मस्तिष्क भी विचित्र किस्म का होता है जो हर समय विचित्र कल्पनाओं की खेती करता रहता है। हम यहीं तक सोच पाये थे कि संगीता ने दूसरा गाना शुरू कर दिया—

"या हबीबी, या हबीबी ..
मैंने रक्खा है मुहब्बत अपने अफसाने का नाम,
तुम भी कुछ अच्छा-सा रख दो, अपने दीवाने का नाम..."

हम सोच बैठे, आखिर इस 'या हबीबी' का अर्थ क्या है? लेकिन हमारी समझ में कुछ न आया। तब साहस बटोर कर पूछ ही लिया—"बहिन संगीता, इस गाने की पहली पंक्ति 'या हबीबी' का क्या अर्थ है?"

वे तुरन्त अपने पुत्र से बोले—"अरे रज्जू ! जा, फिर भीतर से ग्रामोफोन उठा ला।"

लड़का ग्रामोफोन लेने चला गया तो मनमुखदास जी अपने ग्रामोफोन की विशेषताओं का वर्णन करने लगे—"आजकल असली जापानी चीज मिलती कहाँ है ? यह तो बीस वर्ष पहले अचानक मेरे हाथ लग गया था। मैंने आज भी इसे सँभालकर रख छोड़ा है।"

मैं सोचने लगा था, जापान की प्रगति का महत्व इस बात से नहीं है कि वहाँ के लोगों ने पश्चिम की सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान को अपनाया है और न ही इस बात में है कि उन्होंने निरन्तर उत्पादन और आविष्कारों में वृद्धि की है। उसका महत्व तो केवल इस बात में छिपा है कि जापान के लोग भारत के मध्यम वर्ग को जापानी ग्रामोफोन, जापानी घड़ियाँ, जापानी साड़ियाँ, जापानी रेडियो आदि हजारों प्रकार की घटिया, बेकार लेकिन सस्ती वस्तुएँ भेजकर उन्हें झूठा अहं पाले रखने में सफल होते हैं।

उस ग्रामोफोन को ही लीजिये, देखने में अत्यन्त आकर्षक, वजन में काफी हल्का, एकदम रेडियो जैसा लगता था और कीमत केवल पचपन रुपये। लेकिन हर महीने या पन्द्रह दिन बाद उसका फनर टूट जाना तो मामूली बात है। यह बात तो प्रसंग से हटकर है। हाँ, असल बात तो है गाने की। मनसुखदास जी ने एक रेकार्ड उठाया, जिस पर धूल की पर्त जमी हुई थी। उसे साफ करते हुए वे बोले—"आपने यह गाना तो सुना है न—अब के बलमवा, परदेश मत जाइयो..."

"जी हाँ, मैंने तो यह फिल्म भी देखी है।"

मनसुखदास जी को हमारा उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ। वे निराश हो उठे और दूसरा रेकार्ड उठाते हुए बोले—'हवा में उड़ता जाये, मेरा लाल दुपट्टा मल-मल का...' तो आपने अवश्य नहीं सुना होगा ?

न चाहते हुए भी निराश होकर हमें उनके आगे आत्म-समर्पण करना ही पड़ा—"हाँ, यह तो नहीं सुना।"

"तो अब सुन डालो।" कहकर उन्होंने रेकार्ड बजाना आरम्भ कर दिया। लेकिन शायद उनके ग्रामोफोन को हमारी दशा पर रहम आ रहा था। इसलिए उस पर आधा गाना भी न बज पाया था कि उसका फनर टूट गया या अन्य किसी खराबी के कारण घड़-घड़ की आवाजें आने लगीं।

मनसुखदास जी का मुँह कड़वाहट से भर उठा। उन्होंने आवाज दी—"अरे रज्जू ! यह ग्रामोफोन बन्द कर दे।" फिर मुस्कराकर अपनी सबसे बड़ी तथा युवा पुत्री को सबोधित कर बोले—"बेटी संगीता, अब तुम आओ ! जरा इन्हें अपना गाना तो सुनाओ !"

मनसुखदास जी की आवाज सुनकर बेचारी संगीता की बुरी हालत हो जाती

है। वह लाज के मारे कानों तक लाल हो उठती है और सिर झुका लेती है। इस तरह हमे पूरा विश्वास हो गया कि संगीता गाना तो क्या, बोलना भी नही जानती होगी। किन्तु उसे विवश किया जा रहा है।

जब संगीता कुछ देर तक टस-से-मस नही हुई तो मनसुखदास जी ने दूसरी बार प्यार से लेकिन तनिक ऊँची आवाज मे कहा—"संगीता बेटी, हारमोनियम भी ले आना, मेरे कमरे में रखा है।"

हमारी पलकें पहले ही नीद के कारण झुकी जा रही थी। लेकिन विवश होकर धीरे-से संगीता से कहना ही पड़ा—"हाँ, संगीता बहिन, तुम कुछ सुना दो। मैंने बड़ी तारीफ सुनी है, तुम्हारे गाने की। हमारे गुड्डू की माँ कह रही थी कि तुम बड़ा अच्छा गाती हो।"

जो कुछ हमने संगीता से कहा था, वह कोरा और सफेद झूठ था। क्योंकि न तो बेचारी संगीता अच्छी तरह गा सकती थी और न गुड्डू की माँ गाना सुन सकती थी। क्योंकि वह तो जन्म से ही बहरी है। और फिर बहिन संगीता—उसका क्या किया जाये कि भारत की स्त्रियाँ केवल दो ही प्रकार की होती है: एक माँएँ और दूसरी बहिनें। यदि वह सुन्दर हो, युवा हो तो बहिन और कुरूपा हो तथा अधेड़ या बूढ़ी हो तो माँ होनी है। भारत में स्त्रियों के बस दो ही प्रकार हैं। तीसरा कोई नही। क्योंकि इनके बीच की विवाहित स्त्री तो स्त्री न होकर पैर की जूती बन जाती है।

संगीता गाने लगती है। मनसुखदास जी हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। उनकी पत्नी पीढ़े पर बैठी अपनी पुत्री की ओर घूर रही हैं कि वह मेहमान की ओर देख तो नही रही है! संगीता मध्यम बारीक कंठ से स्वर को तनिक ऊँचा उठाकर गाने लगती है—"बलमा सिपइया, हाय रे तेरी बंदूक से डर लागे..."

और हम गाना सुनते-सुनते कल्पना-लोक मे विचरने लगे। हम देख रहे थे कि किसी नाजुक बदन रूपसी ने प्यार की हिमाकत भी की तो एक क्रूर सिपाही के साथ। कवि ने किस प्रकार विचित्र पात्रों का सूत्र पिरोया है! सिपाही और रूपसी युवती। इन कवियो का मस्तिष्क भी विचित्र किस्म का होता है जो हर समय विचित्र कल्पनाओं की खेती करता रहता है। हम यही तक सोच पाये थे कि संगीता ने दूसरा गाना शुरू कर दिया—

"या हबीबी, या हबीबी...
मैंने रखा है मुहब्बत अपने अफसाने का नाम,
तुम भी कुछ अच्छा-सा रख दो, अपने दीवाने का नाम..."

हम सोच बैठे, आखिर इस 'या हबीबी' का अर्थ क्या है? लेकिन हमारी समझ मे कुछ न आया। तब साहस बटोर कर पूछ ही लिया—"बहिन संगीता, इस गाने की पहली पंक्ति 'या हबीबी' का क्या अर्थ है?"

बहिन संगीता लजाकर बोली—"मैंने फिल्म में ऐसा ही सुना था।"

फिर बहिन संगीता ने तीसरे गाने का स्वर छेड़ दिया और उसके बाद चौथे का। हमने घड़ी देखी, ग्यारह से अधिक बज चुके थे। नींद के लिए आँखें इस तरह तरस रही थीं जैसे कई दिनों से प्यासा पानी के लिए तरसता है। ठीक उसी समय मनसुखदास जी ने कहा—"संगीता, तू जाकर आराम कर, अब जरा रागिनी को भेज दे, दो-चार गाने वह सुनायेगी।" फिर हमारी ओर मुड़कर बोले—"रागिनी आजकल शास्त्रीय-संगीत सीख रही है। उस्ताद गुलाम अली से, लखनऊ के माने हुए उस्ताद हैं, गुलाम अली।"

फिर छोटी बहिन रागिनी ने शास्त्रीय-संगीत की जो कंठ-फाड़ राग छेड़ी तो बरबस हमें वाह-वाह कर देना पड़ा। उस रात की नींद तो हराम हो चुकी थी। क्योंकि जब हम बिस्तर पर पहुँचे तो रात आधी से अधिक बीत चली थी। फिर मच्छरों का संगीत आरम्भ हो चुका था। जैसे-तैसे सुबह हुई।

हम अपना सूट-केस सँभालने लगे तो लाला मनसुखदास जी हैरानी से बोले—"यह क्या बर्खुरदार!"

"आप तो जानते ही हैं कि यह नौकरी बड़ी बुरी चीज होती है। हर जगह बंदिश-ही-बंदिश। बड़ी मुश्किल से एक ही दिन की छुट्टी लेकर चला था। अब फिर कभी आऊँगा तब..." हालाँकि हम सोचकर यही चले थे कि लाला मनसुखदासजी को दो-चार दिन मेहमान नवाजी का अवसर देंगे। लेकिन उनके परिवार के संगीत-प्रेम ने हमें मजबूर कर दिया था। स्टेशन की ओर बढ़ते हुए मन में बार-बार यही विचार आ रहा था कि जागरण की एक रात और लाला मनसुखदास जी के परिवार में व्यतीत कर लेते तो शायद किसी रोग की शरण में अवश्य जाना पड़ता। अब भी लाला मनसुखदास जी का मेहमान नवाजी का शौक याद आ जाता है और उससे भी अधिक उनके परिवार का संगीत-प्रेम। □

खरच

मोगजी पाटीदार

पात्र

राजो : मृतक शिवराम की पत्नी (बेवा)
धन्नाराम राजो का पुत्र
केवलराम : धन्नाराम का चाचा
जग्गाराम : प्रभावी ग्रामीण
रामरत : जग्गाराम की पत्नी
भगतजी . सामाजिक कार्यकर्ता
गोपा : चार वर्ष का बालक

पहला दृश्य

[समय—सन्ध्या। सूरज डूबने चला है। नदी पार दूर-दूर फैले पेड़ों के झुरमुटों से कोसों दूर पहाड़ी क्षितिज में इसके ओझल होने का मोहक दृश्य। सूरज की हल्की-सी रश्मियाँ पहाड़ी पर बसे जीर्ण मकान की दीवारों को चूमती हुई विदा ले रही हैं। घास-फूस व केवेलू की छत वाला यह छोटा-सा मकान दो भागों में बँटा है। प्रवेश पूर्व की ओर है। मकान के बायीं ओर का भाग पशुओं के लिए एवं दायीं ओर का भाग निवास है। बीच में चौड़ा गलियारा है। इसके पीछे की दीवार जीर्ण हो चुकी है। स्टेज के इस गलियारे के सम्मुख का भाग काफी नीचा है। ज्यों-ज्यों आगे की ओर बढ़ते हैं, ऊँचाई बढ़ती जाती है। दीवारों की खूंटियों पर रस्सियाँ टँगी हैं। कई वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं। खजूर की पत्तियों की बनी चटाई फर्श पर बिछी हुई है।

दिवंगत शिवराम की पत्नी राजो गलियारे के अन्तिम भाग और निवास

द्वार के बीच बैठी हुई है। हल्का-सा अँधेरा छा रहा है। शोक के कारण वह घर के भीतर ही रहती है। घूंघट काढे गलियारे में कभी वक्त-बे-वक्त आ जाती है। जब कभी पुरुष की आवाज या पदचाप सुनायी देती है तो भीतर की ओर हो जाती है। आंचलिक प्रथा के अनुसार शोक में काली साड़ी पहने है, जो काफी मलीन हो चुकी है। विलाप एवं रुदन ने मानो शक्ल को बदल डाला है। चेहरा पीला पड़ चुका है। बदन सूखकर कांटा हुआ जा रहा है। बड़ी-बड़ी आँखें भीतर धँस गयी हैं। वर्तमान एवं भविष्य की चिन्ताओं ने मानो उसे झकझोर दिया है।

धन्नाराम उसका बड़ा पुत्र है। जो पास के शहर में फेरी लगाता है। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर घर आया है। थेगड़ों वाला पुराना पायजामा एवं कमीज पहने है। पहनावे से लग रहा है कि वह बहुत ही मामूली-सी राशि कमाकर अपने परिवार के पोषण में सहयोग दे रहा है। छोटा भाई गोपा अभी मात्र चार वर्ष का है वह सभी चिन्ताओं से दूर अबोध बना फिरता है। उसके तन पर मात्र एक फटी कमीज है।

स्टेज पर हल्का अंधकार छाया है।]

राजो . (दुर्बल एवं दबे स्वर में) धन्ना···ओ···धन्ना ! चिमनी जला दे, बेटा ! (गोपाल रो रहा है। वह उसे चुप करने की कोशिश करती है।)

धन्ना (बाहर से ही आवाज आती है) आया···माँ···!

[धन्ना का प्रवेश]

अरे, गोपाल···! माँ को तंग न कर। आ जा··। मेरे पास आ···। चल, तुझे छाछ पिलाऊँ।

[कहते हुए आगे बढता है।]

गोपा : (कुछ आगे बढ़ने के बाद ठिठक जाता है) मुझे 'लोटी··· देगा···तो ··। (भोलेपन से कहता है एवं आँखें मलते हुए कुछ आगे बढता है।)

धन्ना : हाँ···हाँ, दूंगा। अच्छा···जरा रुक जा। रोशनी कर लूं फिर देता हूँ तुझे रोटी। (भीतर जाकर एक हाथ में चिमनी एवं दूसरे हाथ में जलता हुआ कंडा लिये आता है। फूंक मारकर कंडे से चिमनी जलाता है। उसे दीवार के सहारे लटके तख्ते पर रख देता है। चहूँ ओर रोशनी हो जाती है।)

धन्ना : (गोपाल को अपने पास बुला लेता है। वह पैरों के सहारे खड़ा हो जाता है। धन्ना कभी माँ की ओर देखता है तो कभी गोपा की ओर) माँ···। भीतर चलो (वेदना एवं आग्रह भरे स्वर से)

तुम्हे यहाँ बैठी कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? लोग तो बात-बात पर अंगुलियाँ उठाने लग जाते हैं। (वह स्तब्ध खड़ा माँ को एक टक देखता रहता है।)

राजो : (गंभीर चिन्ता की मुद्रा में दुर्बल व भावुक स्वर) बेटा ! मुझे कोई क्या कहेगा ?···क्यों कहेगा ? (कुछ रुक-रुककर) रोशनी मेरे जीवन मे है ही कहाँ ? अँधेरे की काली चादर ने मुझे अपने मे समेट लिया है। तन्हाइयाँ जीवन के भविष्य को भी दबोच चुकी है। (स्वर भारी हो जाता है) मुझे कौन देखेगा ? क्यों देखेगा ? खुशियाँ रुदन मे और आशाएँ निराशाओं मे बदल चुकी हैं, बेटा ! (वह रो देती है, आँसू फ़ूट पड़ते हैं।)

धन्ना : (भारी आवाज से गंभीर मुद्रा बनाकर) भावनाओं मे न बहो माँ ! हमें सहारा दो। उठो, पिता का साया उठने के बाद अब तुम्हारे सिवा हमारा कौन है ? तुम रो-रोकर सूखकर काँटा हुई जा रही हो। मेरा मनोबल ऊँचा उठाओ। मुझे अधिक दु.खी न करो, माँ ! अन्यथा हम कही के न रहेंगे। तुम इस तरह कब तक यादों के गुबार ला-लाकर रोती रहोगी ?

राजो : (उसी स्वर में) रोने के सिवा अब मेरे पास रह ही क्या गया है ? जीवन का सत्य तो काल का ग्रास बन गया। अब छल, कपट, न्याय और फरेब के समक्ष काल के अँधेरे भविष्य को कैसे व्यतीत करूँ। मुझे कौन सहारा देगा। (सिसकियाँ भरती है।)

धन्ना : (गोपा को वहीं खड़ा छोड़ बढ़ता है। माँ के पास दायाँ घुटना टेक कर बैठ जाता है। एक हाथ राजो की ओर बढ़ाता है तो दूसरे से अपनी आँखें पोंछता है।) माँ ! हिम्मत बाँधो। रोज सीख देने वाली माँ को इस तरह कमजोर देख मेरा हृदय व्यथित हो उठा है। मेरी तरह तुम भी पत्थर बनो। पिता की मौत का रंज किस औलाद को नही होता, लेकिन जीवन मे हिम्मत हारने से काम नही चलता है।

(वह उठ खड़ा होता है।) यह सब-कुछ देखकर तुम्हें कुछ नही होता ? हृदय परिवर्तन करो। गंगा कभी उल्टी नही बही। सूरज कभी पश्चिम में नही निकला माँ ! तुम मुझे सहारा दो। कठिनाइयों से जूझने की हिम्मत बँधाओ।

राजो : (गोपा उसकी ओर जाता है। वह उसे गोद में बिठाती है।) तुम्हीं मेरी आशा और विश्वास हो धन्ना। मैं जानती हूँ कि

तुम्हारी अपार व्यथा ने तुम्हें दबोच लिया है. फिर भी मेरे दु ख को भुलाने के लिए क्या कुछ कर रहे हो। लेकिन हिम्मत बांधे भी नही बांधी जाती। भीतर से गुबारे-से उठते हैं। अतीत तो भुलाना आसान नही होता। टूटे हुए तानपूरे से स्वर भरना सम्भव तो नहीं है।

धन्ना . (गम्भीर किन्तु समझाने की दृष्टि से) सन्तान समझदार हो तो सब दु ख भुलाये जा सकते हैं। एक नही हजार तानपूरे के तारों को बदलकर स्वर लहरियाँ पैदा की जा सकती है माँ। (व्यथित हृदय से) दु ख के पहाड सब पर टूटते है। कई विधवा माताओं को अपने बेटों के सहारे की आवश्यकता पडती है। वे भी तो बेटों के सहारे गुजर-बसर करती होंगी।

राजो . मैं उन्ही अभागिनो मे से हूँ। लेकिन वे सब कुछ सह चुकी है।

धन्ना : फिर, तुम क्यों कमजोर हुई जा रही हो, माँ ?

राजो : क्रूर-काल के शिकजे मे जो फँसी हूँ। माया-मोह के घेरे मे बन्द ही तो हूँ।

धन्ना : इससे ऊपर उठो। जीवन धूप-छाँव है। इसमें कभी अमृत तो कभी जहर भी पीना पडता है।

राजो . बेटा ! मेरा हृदय हल्का करने के लिए यह क्या-क्या कहते जा रहे हो। मैं तुम्हारी विवशता को समझ रही हूँ।

धन्ना · मैं सच कह रहा हूँ। तुम हार चुकी हो। एक माँ कभी सन्तान के सामने इस तरह हौसला-पस्त नही होती है। (आगे बढ़ते हुए आग्रह से) उठो, तुम मुझे सहारा दो, ताकि मैं भविष्य की आशा बनकर इस गहरे विषाद को खुशियों का वातावरण दे सकूँ।

राजो : मुझे दुखी देखकर तुम दु खी न हो। मैं एक औरत हूँ। परमात्मा ने औरत को बनाया ही दु खों को झेलने के लिए है। आखिर नारी मन से न चाहते हुए भी सहन करती ही तो है।

गोपा . (उठकर आगे बढ़ता है) भईया...मुझे...भूख...लगी है... लोटी...ओल चाच...खाऊँगा।

धन्ना : (माँ के पास जाकर सहारा देते हुए) उठो माँ ! हमारे सामने और भी चिन्ताएँ हैं। चुनौतियों का सामना करना बाकी है।

राजो : (उठती हुई) लगता है मुझे चक्कर से आ रहे है...। (दो कदम आगे बढ़ने के बाद रुक जाती है) यही बैठने दे मुझे—देर मे चलूंगी...। गोपा को खाना दे दो। (वह लड़खड़ाती हुई एवं

भारी आवाज में बोलती हुई बैठ जाती है।)

गोपा : चलो...न...माँ...मेले...सात...तुम...नही खोओगी लोटी और चाच...।

राजो : (सिर पर हाथ फेरती हुई) तुम खा लो, जाओ। मैं फिर खा लूँगी (प्यार से) जाओ बेटा !

धन्ना : (गोपा की अंगुली पकड़े भीतर की ओर जाता है।) ठहर जा देता हूँ। (वह लटके हुए छींके को ओर बढ़ता है, छींके मे देखते ही स्तम्भित रह जाता है। रोटी गायब है। छाछ की हँडिया को नीचे उतारता है।) भैया ! छाछ पियेगा न . (दुःखी मन से)

गोपा : नही अकेली...चाच नही...पिऊँगा। लोटी...भी खाऊँगा।

धन्ना : ले छाछ पी ले...। रोटी बिल्ली खा गई है। माँ फिर बना देगी, तब हम दोनो फिर खाएँगे।

गोपा : ऊँ...हूँ...नही ..ऊँ...ऊँ...ऊँ ..(वह जमीन पर गिरकर मचल जाता है।

धन्ना . (वह व्यथित हृदय से उसे पुचकारता हुआ उठाता है। कटोरी मुँह से लगा देता है। बालक भूख से व्याकुल होने के कारण छाछ पी जाता है। वह उसे राजो के पास बैठा देता है।) माँ, आज तो दिन कट गया, लेकिन कल के लिए आटा नही है। अभी तो समरत काकी रोटी बना देगी, लेकिन व्यवस्था तो करनी ही है।

राजो : (दुःखी भाव से विवशता बताते हुए) बेटा, एक दुःख होता तो सहन भी हो जाता। इन हजार दुखो को झेलकर कैसे जिन्दा रहूं। चारों ओर से घेरे जा चुके हैं।

धन्ना : कोई उपाय तो सोचना ही पड़ेगा। आखिर कब तक चलेगा ऐसे।

राजो : तू अपने साथ कितने रुपये लाया है। शहर मे किसी और से उधार ले आना था।

धन्ना : (एक बार ऊपर की ओर देखता है, फिर राजो की ओर देख कर एक लम्बी साँस लेता है) वह शहर है, वहाँ कौन किसको उधार दे माँ। वहाँ तो सब भूखे ही लगते हैं। रुपये की हवस वहाँ तो बहुत ज्यादा है। सब माँगने वाले मिले, देने वाला कोई नही। फिर, मेरे कपड़ो और शक्ल को देखकर ही लोग तो असलियत को समझ जाते है।

राजो . लेकिन, तेरे पास कुछ रुपये तो होंगे ही ?

धन्ना . (एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए) सिर्फ पचास रुपये हैं। महीना भर गलियों में चिल्लाता रहा—ऊरारा की दवा लो, मच्छर की दवा लो, खटमल की दवा लो। माँ, चिल्ला-चिल्ला कर हड्डियाँ निकल आयी हैं। जब जाकर सौ रुपये जोड़े। जिनमें से पचास खर्च हो गये बाकी साथ लाया हूँ।

राजो . सुन, इस तरह की घर की बातें समरत काकी को न कहना। लोगों के सामने कहती फिरेगी, तो हमारी मजाक उड़ जायेगी। कहेगी—हमारे तो घर में खाने तक को दाना नहीं है। छोकरा भी कपूत निकला जो कुछ नहीं कमाता है। न जाने क्या-क्या बातें हो जायें।

धन्ना . (विवशता भरी दीर्घ श्वास लेते हुए) ठीक है, ठीक है माँ ! ये दिन सदा नहीं रहने हैं। अपने पुरुषार्थ से मैं अपना भाग्य बदलूंगा। इससे भी ज्यादा कष्टों को सहने की क्षमता लाऊँगा। तकदीर भी यदि साथ न दे तो उसकी भी छुट्टी। मैं अपने हाथों को जगन्नाथ बनाऊँगा।

राजो : (समझाने का प्रयत्न करती है।) विधि के विधान से ऊपर कोई नहीं उठा, बेटा ! ईश्वर पर भरोसा रखकर कर्म करो। अपने दिवंगत पिता से सीखो। खेतों में वे कितनी मेहनत करते थे। कभी कुछ मिलता तो कभी कुछ भी नहीं मिलता था। फिर भी अपने श्रम पर विश्वास रखते थे।

धन्ना . (बाहर की ओर देखते हुए) लो, वह समरत काकी आयी। आओ काकी ! तुम्हारा ही इंतजार था।

समरत · हाँ...हाँ, (हाथ नचाती हुई) आयी नहीं...मरी। कह मरी ! हाय राम ! मुझे तो मौत भी नहीं आती (चेहरे पर उदासीनता के साथ ही क्रोध झलक रहा है)

राजो : तुम यह क्या कह रही हो ? (एकटक देखते हुए) क्या कुछ बोलना हो गया है उनसे ?

समरत : बोलना होता कब नहीं ! जब देखो तब झगड़े-टंटे। मैं तंग आ चुकी हूँ। ऐसे बेगैरत आदमी से। भगवान मौत दे दे तो अच्छा है, ऐसे जीने से तो...!

राजो : (सहानुभूति दिखाते) ऐसी अशुभ बात मुंह से न निकालो जिनपर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े हैं, उनसे पूछो मौत कितनी भयानक होती है। कहो, कहना क्या चाहती हो ?

समरत . कुछ नही बस...कुछ नही (गुस्से से लाल हो जाती है।) भगवान इस जनम मे अच्छे करम कराना ताकि ऐसा आदमी फिर तो न मिले।

धन्ना : तुम अपनी परेशानी बताती क्यो नही ! अपने स्वामी के लिए ऐसा कुछ कहना ठीक तो नही काकी !

समरत : मै तुम्हारी परेशानी तो कम नही कर सकी, फिर मेरी उलझने तुम पर लाद दूँ। नही...नही (कुछ रुककर) राजो, तुम पर विपत्ति जरूर आयी है लेकिन चम्पा, सोभा और रामी को याद करो। उन्हे देखकर तसल्ली करो। कितनी छोटी उमर मे वैधव्य का भार आ पड़ा है उन पर। उनकी तरह तुम भी दिल पर पत्थर रखकर इन बच्चों का सहारा बनो।

धन्ना : (बात काटते हुए) काकी ! तुम बात बदल क्यों रही हो ! सच-सच क्यों नही बताती। जग्गाराम ने कुछ कहा है क्या ?

समरत (एक लंबी सांस लेते हुए) कुछ नही कहा !

धन्ना : फिर इतनी विवश क्यो लगती हो ?

समरत . बस, वैसे ही समझो। औरत को तो आदमी के पैर तले दबकर ही तो रहना पड़ता है। लोग शादी क्या रचाते हैं, औरत को तो मानो खरीद ही लेते है।

धन्ना (आशंकित होता हुआ) हमारे लिए तो कोई चर्चा नही चली ?

राजो : (बीच में ही) क्यो नही चलेगी चरचा, उन पर ही तो खर्च का भार है। अच्छा बुरा उन्हें ही तो सोचना है। हमारी नाक रखने की चिन्ता उन्हें भी तो होगी।

धन्ना : माँ ! मुझे भी तो चिन्ता है। पिता के पिण्डदान की व्यवस्था तो आखिर करनी ही है। काकी ! गोपा सो जायेगा। हम भी भूखे है। तुम खाना बनाओ। मैं जाता हूँ। उनसे मिलता हूँ।

[सब भीतर चल देते है]

[पर्दा गिरता है]

दूसरा दृश्य

[समय—रात्रि। शिवराम के छोटे भाई केवलराम का वैसा ही जीर्ण मकान। आँगन में पुराने खंभों पर बना ओसारा। खाट बिछी हुई है। लकड़ी के पुराने खंभे पर लटका लालटेन हल्का-सा प्रकाश फैला रहा है। एक खंभे के सहारे बैल बंधे हैं। केवलराम दुबला-पतला इकहरा बदन एवं श्यामवर्ण है। यह पुरानी

धोती व कुर्ता पहने एवं सिर पर साफेनुमा सफेद कपड़ा बांधे है। एक ओर खाट पर जग्गाराम बैठा है। भारी-भरकम शरीर एवं रंग हल्का गोरा है। बड़ी-बड़ी मूंछें रोबीले चेहरे की परिचायक हैं। पत्नी की ओर से—शिवराम के घर से मामूली-सा रिश्ता होने के कारण औपचारिकता तक ही अपने को सीमित रखे हैं।]

केवलराम : (अश्रुपूरित आँखों से) उन पर क्या बीती ? कैसे बीती ? यह तो मैं ही जानता हूँ, जग्गू भाई ! कहने को होता हूँ तो दिल भर आता है।

जग्गाराम : (अफसोस भरे स्वर से) दवाखाना तो कोई खास दूर है नहीं, तुम उसे वहां क्यों नहीं ले गये ?

केवलराम : दवाखाने के लिए सोचा ही था कि मलेरिया वाले डाक्टर साहब आ गये। उन्होंने बताया कि भाई के पेट में गाँठ है। इसका तो ऑपरेशन करना पड़ेगा। एक हजार से कम का खर्चा नहीं बैठेगा।

जग्गाराम : अरे भले आदमी ! वह डाक्टर थोड़े ही है। वह तो मलेरिया की गोलियाँ बाँटने वाला है। ऑपरेशन करना पड़े, न करना पड़े, उसे क्या मालूम था ? फिर रुपयों की व्यवस्था करके चले तो जाना था।

केवलराम : (सहमकर) रुपयों की व्यवस्था तो कर ही रहा था, लेकिन...।

जग्गाराम : (बात काटकर) लेकिन क्या ? यों कह कि व्यवस्था हो न सकी। अरे, मुझे ही बुलवा लेता। मैं तो पड़ोस के गाँव ही तो गया था। शहर तो संध्या समय गया था।

[धन्नाराम का प्रवेश]

धन्ना : (व्यंग्य एवं दुःख के मिश्रित स्वर में) आप मेरे बापू की मदद नहीं कर सके। मुझे तो आप पर भरोसा था कि कभी मुसीबत आयी तो आप जरूर साथ देंगे।

[आँखें सजल हो जाती हैं]

जग्गाराम : लेकिन, कोई कहे जब न...। शिवराम की बीमारी का पहले तो मुझे पता भी नहीं था। तेरी काकी तक ने भी तो पहले कभी नहीं कहा। शहर गया था वहां से आज ही लौटा हूँ।

धन्ना : (व्यंग्य से) अब तो पता चला न'''। शायद जमीन के झगड़े के बदले का यही मौका समझा होगा। ऐसा अवसर और कब मिलता ?

जग्गाराम : (अपने को निर्दोष बताते हुए) नहीं नहीं, धन्ना ! यह तुम गलत समझ गये। भला ऐसे समय कोई बदले की भावना रखता है। फिर हमारी कोई ऐसी दुश्मनी भी तो नहीं थी। जमीन-जायदाद के मामले तो चलते रहते हैं।

केवलराम : (बीच ही में) ऐसा नहीं सोचते धन्ना। जग्गा भाई मौजूद होते तो तेरे बापू का कुछ नहीं बिगड़ता। विपत्ति के समय कोई बैर निकालने की नहीं सोचता है।

धन्ना : आप भी तो प्रयत्न करते? क्या आपको किसी ने रुपये नहीं दिये?

केवलराम : दरद अचानक उठा था। (विवशता बताते हुए) इतनी जल्दी रुपये किससे लेता? बिना गहनों के व्यापारी तो कोई देता नहीं है, फिर मैं किसके पास जाता?

धन्ना : उफ, कुसमय में मेरे मब के सब दुश्मन बन गये! (अफसोस के साथ) मुझ पर किसी को भरोसा नहीं रहा!

जग्गाराम : (केवलराम से) इसकी माँ के गहने ले लेते। वह ऐसे वक्त मनाही तो नहीं करती।

केवलराम : (गम्भीरता से) यह कहानी कुछ और ही है। न सुनो मुझसे इस बारे में जग्गा भाई! (आँखें मसलता है)

जग्गाराम : (जिज्ञासापूर्वक) क्यों? क्या हुआ? गिरवी हैं क्या किसी के पास?

धन्ना : नहीं, गिरवी नहीं हैं। बेचे जा चुके हैं।

जग्गाराम : (आश्चर्य से) तुम यह क्या कह रहे हो?

धन्ना : हाँ, मैं सच कह रहा हूँ।

जग्गाराम : (हमदर्दी दिखाते हुए) क्यों? ऐसा क्या काम आ गया कि गहने भी बेच दिये?

धन्ना : (गम्भीर बनकर) लोग सोचते हैं कि गहने वक्त पर मनुष्य का साथ देते हैं। इसलिए बनवाते हैं। छनक-मनक तो दूसरा पहलू है। लेकिन मेरे बापू कुछ और ही मिजाज के आदमी थे। उन्होंने सोचा कि गहने क्या काम आयेंगे। इन्हें बेच दूँ। बच्चों का पेट पालूँ।

जग्गाराम : सो क्या खाने-पीने में ही सब उड़ा दिया।...

धन्ना : (शिकायत के लहजे में) तुमने कभी इतना भी ध्यान नहीं दिया। इतना तो सोचा होता कि वे कब, क्या और किस तरह काम करते हैं।

जग्गाराम : मैं तो बिलकुल ही अनभिज्ञ हूँ। मैं नहीं जानता कि वे कब क्या करते थे ? इतना जरूर है कि उन्होंने परिश्रम से कुआँ बनवाया और रहट खरीदा। फिजूलखर्ची का तो मुझे ध्यान ही नहीं।

धन्ना : (लम्बी साँस लेते हुए) वे फिजूलखर्ची क़तई न थे। उनके ख्याल की नई आशा उनके मौत का कारण बन गयी। खैर! कोई बात नहीं, उन्होंने तो अच्छा ही सोचा था।

जग्गाराम : तुम कहना क्या चाहते हो ? स्पष्ट कहो न···।

केवलराम : (धन्ना की विवशता को समझते हुए) मेरे भाई ने बहुत ही बुद्धिमानी का कदम उठाया था। लोगों को एक सबक सिखाया है। जग्गाराम ! उनके खेत पर कुआँ और रहंट जो तुम देख रहे हो, वह उन्हीं गहनों से बनाया है। लेकिन, इस बंजर भूमि का लहलहाना वे देख भी नहीं पाये।

जग्गाराम : इसमें बुराई क्या थी ? यह तो बहुत अच्छा किया। घर में गहने-भर रखने से क्या लाभ ? मुझे तो इस कदम के लिए मन-ही-मन बहुत खुशी है। यह दूसरी बात है कि एक संयोग ऐसा हो गया। इनको भी तो क्या मालूम था। सबके साथ तो ऐसा होता नहीं है।

केवलराम . लेकिन यह सब कुछ उनके तो किसी काम न आया (आँखें पोंछता हुआ) भगवान ! ऐसे फूटे भाग किसी को न देना।

धन्ना : काका ! इन आँसुओं को बहने दो, और बहने दो, पोंछो नहीं···। ये गले का हार बनना चाहते हैं। बहने दो इन्हें···काका ! बहने दो···। ये ही एक दिन रोशनी दिखायेंगे।

जग्गाराम : तसल्ली करो केवल ! रोने-धोने से अब क्या होता है, हो गया है उसे सहन करते हुए आगे की सोचो !

केवलराम : (उसी मुद्रा में) क्या सोचूं। किस तरह सोचूं। कुछ भी तो समझ में नहीं आता।

जग्गाराम . खरच की भी तो व्यवस्था करनी है। उसके लिए क्या सोचा है।

केवलराम . (दुःखी भाव से) यह भी तो एक पहाड़-सा लग रहा है।

धन्ना : (तसल्ली देते हुए) काका ! अब चिन्ता आपको ही नहीं, इनको भी करनी है। हमारे पास तो है ही क्या ?

केवलराम : हमारे लिए ये क्या करें ? यह तो हमारे घर का मामला है।

धन्ना : (व्यंग्य से) जीते जी साथ न दे सके वो मरने के बाद भी नहीं देंगे। शायद झगड़ा अब तो बाकी नहीं रहा होगा।

जग्गाराम : (डांटते हुए) तू इस तरह न बोल, धन्ना ! मेरा तेरे बापू के

साथ कोई वैर नहीं रहा। मेरा मजाक बनाने की कोशिश न कर। क्या शिवराम मुझे प्यारा नहीं था? मेरी उसके प्रति क्या भावना थी, यह मैं ही जानता हूँ। तू नादान क्या समझेगा। नाहक भावुक बन रहा है। मुझे क्या करना है, वह मैं समझ रहा हूँ।

केवलराम : (समझाने के ढंग से) तू ना समझी में न बोल, धन्ना! किसके साथ कैसे बोलते है, यह ध्यान रखा कर जरा...।

धन्ना : (गुस्से से होंठ काटता हुआ) मैं सब जानता हूँ।

केवलराम : सब क्या जानता है? (डांटते हुए) पिता के सोग का तो ध्यान रख, कोई कहे तो क्या कहे?

धन्ना : (एक लम्बी सांस लेते हुए) बस, यही कि मैं नादान हूँ।

केवलराम : छोड़ भी ऐसी बातों को...।

जग्गाराम : (बात का ज्यादा बुरा न मानते हुए) अब आगे क्या करना है? सोच लो, कोई दो हजार का खर्च है।

केवलराम : खर्च तो बहुत ज्यादा है। खेत तो मात्र दो ही है। यदि किसी को दे भी दें तो घर का गुजारा कैसे चले।

धन्ना (एक लम्बे श्वास के साथ परेशान-सा) हाँ...घर बेच के तो तीरथ जा नहीं सकते है। बिन गये की गधी अहमदाबाद का भाड़ा करे भी कैसे।

केवलराम · हाँ, ठीक है, लेकिन खर्च के लिए कुछ करना तो है ही है।

जग्गाराम : घर में भी तो अनाज ज्यादा नहीं होगा फिर घी की तो बात ही और है।

धन्ना : अभी तो गुजारे का ही है। ज्यादा कुछ नहीं। सबके पेट भी तो पालने पड़े। मेरे पास तो मात्र पचास रुपये है जो चाय-तमाखू के लिए भी नाकाफी हैं।

केवलराम : (स्मरण करता हुआ) अरे हाँ, मैं तो भूल ही गया। आप बीडी-तमाखू तो पीते नहीं, चाय तो बनवा दूं। (वह भीतर जाने को होता है)

जग्गाराम : नहीं, यह जरूरी नहीं।

धन्ना : गुड़ की नहीं, शक्कर की बनवाता हू। थोड़ी तो ले लेना।

जग्गाराम : दूध भी तो नहीं होगा।

केवलराम : बागड़ ही बनवा लेते है। मैं आपकी और क्या सेवा करूं? (अफसोस के लहजे में)

जग्गाराम . लेकिन, थोड़ी ही बनवाना। (कुछ रुक कर) केवल ! एक काम करो।

केवलराम : क्या ? हाँ, रुकना जरा···(वह भीतर की ओर जाकर वापिस आ जाता है।)

जग्गाराम : सेठ धनपाल के पास जाकर मेरा नाम लेकर कहना, वह रुपये कितने सूद पर देता है। कहना—जामीन जग्गू देगा। उसका रुपया समय पर अदा कर देंगे।

केवलराम वह माने जब न···।

जग्गाराम . क्यों नही मानेगा ? वह मान जायेगा। आखिर उसे हमसे ही तो कमाना है।

धन्ना . काका ! मैं उसका सूद नही भर सकता हूँ। मेरे बापू की तरह मैं भी कर्ज में जी कर, कर्ज मे ही नही मरना चाहता।

जग्गाराम · तो और क्या उपाय है ? व्यवस्था कहाँ से हो ?

धन्ना : आप मेरा कहना मानें···।

[केवल भीतर की ओर जाकर चाय लेकर आता है। जग्गाराम कटोरी से चाय पीता है। वे दोनों नही पीते है]

जग्गाराम · (चाय की चुस्की लेते हुए) बोलो, क्या कहना चाहते हो ! कोई नई बात सोची है क्या ?

धन्ना · हाँ, मैं अपने खेत हिस्से पर किसी को दे दूंगा। आप बैल और गाडी का सौदा कर दीजिए।

केवलराम : यह कैसे हो सकता है। यह तो असंभव है।

धन्ना . यह असंभव नही है काका। सभव इसलिए है कि इतनी छोटी जोत पर जीकर मैं कर्ज नही भर सकता और न ही परिवार का पोषण ही कर सकता हूँ। फिर महाजन का भारी सूद तो मैं भर ही नही सकता हूँ।

जग्गाराम : ऐसा ही चाहते हो, तो मैं जाता हूँ। देखता हूँ जो ठीक हो वही करूँगा। (चाय की कटोरी भूमि पर रख देता है)

[वह जाता है]

धन्ना : काका ! उनके पास भी तो बहुत-सा अनाज भरा पड़ा है। हमारी थोडी मदद करने से कौन-सा कम हो जायेगा। हम खैरात तो माँगते नही है। फिर काकी भी तो हमारे रिश्ते में है।

केवलराम : (अफसोस से) हमारी गरीबी पर कौन तरस खायेगा ? फिर,

हमें दया की भीख भी तो नहीं चाहिए।

धन्ना यह भीख नहीं सहयोग है। देहात के लोग तो सहयोग से ही तो जीते हैं।

केवलराम (चेहरे पर गम्भीरता लिए हुए) हमारे पास कुछ नहीं, इसका मानी यह तो नहीं कि हम अपना स्वाभिमान खो दें।

धन्ना . इसमें स्वाभिमान की क्या बात है ? हम तो उधार ले रहे हैं।

केवलराम · क्या तुम उधार लेकर सदा के लिए उसमें दबा रहना पसन्द करोगे ?

धन्ना : इसमें दबने की क्या बात है ?

केवलराम : जरूर है, मौके-बे-मौके वह सुना सकता है कि तेरे बाप का खरच तो मेरे उधार से हुआ था। इतनी जल्दी भूल गया क्या ? बताओ, उस समय तुम्हारा क्या जवाब होगा ?

धन्ना : यह भी ठीक है यह हमारे स्वाभिमान का मामला है, समय पर उनको कहने का मौका देना ठीक नहीं। इससे तो अच्छा है कि हमारे पास जो है, उसे बेच कर काम चलावें।

केवलराम : इसका मानी यह भी नहीं कि किसी से कभी सहयोग ही न लें?

धन्ना : क्या मतलब ?

केवलराम : मतलब यह कि जग्गाराम जैसे व्यक्ति जो लोगों को अपने तले रखना चाहते है, कभी भी ताना मार सकते हैं। ऐसे लोगों का सहयोग हमें नहीं चाहिए।

[समरत का प्रवेश]

समरत : धन्ना रे...!(हाथ के इशारों से आग्रह करती है) मेरे साथ चल।

धन्ना : क्यों ? कोई खास काम है क्या ?

समरत : खरच के लिए तेरे काका से कुछ बात करवा दूं। घर में हैं फिर और कहाँ माँगने जावें।

धन्ना : वो तो हो चुकी बात।

समरत : क्या बात हुई ? कुछ देने के लिए कहा है उन्होंने ?

धन्ना : नहीं, यही कि बैल और गाड़ी बेचकर बापू के खरच की व्यवस्था करें।

समरत : ऐसा नहीं होगा। सूद पर कुछ रुपये ले लो। कुछ मैं सहायता करूंगी।

धन्ना : ऐसा जग्गा काका ने तो नहीं कहा, फिर आप कहाँ से देंगी ?

समरत : (ताने के ढंग से) किसी को कहा हो जब कहे ना। अपने पराये का खयाल ही तो कहाँ रहता है, उन्हें ? हमारे बीच झगडा भी

तो रोज ऐसी बातों का होना है।

धन्ना : आपको मेरे प्रति सहानुभूति है, यही बहुत कुछ है काफी। तुम व्यर्थ भी उलझन में न पड़ो। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे घर में कलह पैदा करूँ। मुझे कुछ भी न चाहिए।

[जग्गाराम का प्रवेश, समस्त उसे देखते ही धीरे-से चल देती है।]

जग्गाराम : केवल ! तुम जाओ, मैया भाई से बैल और गाड़ी की बात तय करो।

केवलराम (जिज्ञासा से) सेठ जी ने क्या कहा ?

जग्गाराम निराशा के स्वर में) उसका रुपया हमारे काम का नहीं !

केवलराम : (वही जिज्ञासा) क्यों, क्या सूद माँगते हैं ?

जग्गाराम · (परेशान-सा होता हुआ) पन्द्रह रुपये सैकड़ा बट्टा काट करके देना, और तिस पर भी ब्याज पाँच रुपये सैकड़ा माहवार।

धन्ना : मैं यही तो कह रहा था। इस जोंक से सौदा नहीं हो सकता है। सारे गाँव को लूट कर खा गया। कोई कुछ कहता भी तो नहीं है।

केवलराम कोई भी क्या कहे ? सबको अपनी गरज प्यारी होती है। हमारी मजबूरी से ही तो लूटता है। देखते नहीं, कितना पेट बढ़ाया है; गरीबों का खा-खा कर इस कमीने ने। इस कसाई को किसी पर भी रहम नहीं आता है।

धन्ना : काका ! इस तरह का हराम का रुपया आगे जाकर पागल औलाद पैदा करता है। एक, दो, तीन में नहीं, तो सातवीं पीढ़ी तक जाकर भी तो असर होता ही है, और बाद में सब साफ हो जाता है। एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण हैं ऐसे।

केवलराम : (उपेक्षा भाव से) ऐसी बातों से हमें क्या लेना ! हमें तो अपने काम से काम। मैं जाता हूँ।

[केवलराम का प्रस्थान]

लघु यवनिका

धन्ना : (आगे बढ़ते हुए) काका ! मुझे एक ख्याल आया है। बुरा न मानो तो कहूँ।

जग्गाराम : कहो, इसमें बुरा मानने की क्या बात है भला ! अपने विचारों की सबसे स्वतन्त्रता है। (उत्सुकता से ध्यान देकर सुनता है।)

धन्ना : आज मुझ पर मुसीबत है, इसलिए मैं समझ पाया कि खरच

कितना मँहगा होता है। किस तरह घर बरबाद होते हैं। मेरी तरह और लोग भी तो दुःखी होते होंगे।

जग्गाराम : सो तो है ही ! सोचते भी हो तो क्या हो ? यह तो पिण्डदान है। आदमी जीवन भर कमाता ही तो है। अपने साथ क्या ले जाता है। मरने के बाद का यह दान ही तो आगे काम आता है। यह तो हमारी परम्परा है। शास्त्रों में भी तो उसका उल्लेख मिलता है।

धन्ना : शास्त्रों में भले ही लिखा हो। धर्म इसका हिमायती क्यों न हो, लेकिन मैं इसका विरोध करते हुए इतना तो जरूर सोचता हूँ कि आज के समय और परिस्थितियों को देखते हुए परिवर्तन जरूरी है। सबको खिलाना, यह तो हमारी रूढ़ि है। दान कैसे हुआ ! आप मेरे यहाँ खाते हैं, मैं आपके यहाँ खाता हूँ। यह तो...पत्तल के बदले पत्तल है, दान कहाँ हुआ।

जग्गाराम : (बात को समझते हुए) तो तुम्हारे कहने का मानी खरच हो ही नहीं।

धन्ना : काका ! आज वह समय तो नहीं, जब यह काम हर कोई आसानी से कर सकता है। विषमताओं एवं मँहगाई के जमाने में आदमी यह भार कैसे सह सकता है। आप देख रहे हैं। (अपनी कमीज बताता हुआ) मेरी कमीज पर कितने थेगड़े लगे हुए हैं। यानी कि मुझे कपड़ा पहनने को नहीं मिल रहा है मेरे जैसे और कितने भाई होंगे ऐसे।

जग्गाराम : परम्पराओं को निभाना ही तो होता है ? दुःख किसके जीवन में नहीं आते हैं। मगर महज ऐसी बातों में रस्मों-रिवाज को टाला तो नहीं जा सकता है।

धन्ना : शायद, आप यह सोचें कि मुझे खरच करना पड़ रहा है। इसलिए मैं बचने की सोचता हूँ। लेकिन यह एक गम्भीर प्रश्न है। गरीबों को बरबादी से बचाने का एक मात्र उपाय है। समय रहते एक उपयोगी कदम है।

जग्गाराम : यह तुम्हारे और मेरे हाथ की बात नहीं है। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो लोग जमीन पर चलने नहीं देंगे। कदम-कदम पर उलाहने सुनने मिलेंगे। हर कोई यही कहेगा, तू किस मुँह से बात कर रहा है। तेरा बाप तो राख में डटा पड़ा है। पेट तो कुत्ता भी भरता है, तूने जीकर क्या किया ? बाप का खरच भी नहीं हुआ।

धन्ना : यह मेरा एक विचार है। आप बड़े लोग ही इस पर सोचना। इस बारे में मैं अकेला क्या कुछ कहूँ। समाज सुधारक तो हूँ नहीं। मैं चलता हूँ। आप कल दिन में घर जरूर आना।'

जग्गाराम (सहानुभूतिपूर्वक) हाँ, मैं कल आऊँगा। बैठकर बात तय कर लेंगे।

[पर्दा गिरता है]

तीसरा दृश्य

[समय—दोपहर। वही धन्नाराम का मकान। प्रथम दृश्य वाली स्थिति। राजो घर के भीतर बैठी सोग मना रही है। स्टेज वाले गलियारे में खजूर की पत्तियों की बनी हुई चटाई बिछी हुई है। जग्गाराम उस पर बैठा है। एक ओर दीवार के सहारे मायूस चेहरा लिये केवलराम बैठा है। धन्नाराम फटे-पुराने कपड़ों में उदास-सा हाथ में लोटा लिये पानी पिला रहा है। गोपा कभी बाहर आता है। तो कभी भीतर जाता है।]

केवलराम : मन तो नहीं माना, फिर भी क्या करूँ सौदा करना ही पड़ा।

जग्गाराम : (जिज्ञासा दिखाते हुए) कितने में तय हुआ?

केवलराम . (भारी मन से) बैल गाड़ी पुरानी है, इसलिए पाँच सौ से ऊपर देना नहीं चाहता है, बैलों का सौदा एक हजार में तय हुआ है। (दीर्घ श्वास लेते हुए) दिल पर पत्थर रखे हुए हूँ। विवशता मुझे कहीं भी तो छोड़ नहीं रही।

जग्गाराम : विवश होने से क्या होगा? आखिर खरच तो करना ही है। धन्ना अपनी माँ से तो पूछ लो।

[नेपथ्य से आवाज आती है। मुझे मजूर है।]

धन्ना : उन्हें मजूर है काका! वेवम इन्सान क्या नहीं करता? आप सामान मँगवाने की व्यवस्था करवा दो।

जग्गाराम : (केवलराम की इच्छा जानने की दृष्टि से) केवल! तुम्हारे पास कुछ सुविधा तो होगी ही।

केवलराम . मैं कोशिश में तो हूँ, लेकिन नंगा निचोड़े क्या और पहने क्या? मेरे घर की हालत तो तुम जानते ही हो! मैं जाकर सामान का प्रबन्ध करता हूँ।

[वह जाता है, एक ओर से समरत का प्रवेश।]

समरत : (व्यंग्य से) बैल और गाड़ी तो बिकवा दी। (हाथ नचाती हुई)

मैं कहती हूँ, आपका धन कौन खायेगा। इतना सारा किसके लिए इकट्ठा कर रहे हो ! धरम-करम को तो कुछ पहचानो।

जग्गाराम : सीधे ढंग से कोई बात क्यों नही करती हो ? कहना क्या है। रात-दिन तेवर चढ़ाये रहती हो। दिमाग तो तुम्हारा सातवे आसमान पर चढा रहता है। मैं तो तग आ गया हूँ तुमसे !

समरत : (उसी स्वर में) तंग आ गये हो...। और वह भी मुझसे...। अबके जाऊँगी मैके तो सात जनम आने का नाम न लूँगी...। फिर नानी याद आयेगी तुम्हे तो...। समझते क्या हो अपने को...। मैं तो जाने घर का कूड़ा-करकट हूँ...कूड़ा-करकट...। सोगिनी के घर बैठे और कुछ नहीं कहती, बस इतना ही कहना है—तुम क्या दे रहे हो इन्हें ?

जग्गाराम : इसमे कौन बड़ी बात है ? अपने से जो बन सका जरूर देंगे। खरच भी तो ज्यादा है, देना तो पड़ेगा ही कुछ-न-कुछ।

धन्ना : (बात काटते हुए) काकी, मुझे कुछ नही चाहिए। तुम इन पर न बिगड़ो।

[गोपा फटे हाल हाथ में लोटा लिये आता है। जग्गाराम की ओर लोटा बढाता है। वह पीठ सहलाता हुआ उसे अपने पास बैठा देता है।]

समरत : भला, इसमें बिगडने की क्या बात है ! जब ये नही समझे तो मुझे कुछ कहना ही पडेगा। सम्बन्ध तो इस घर से मेरा है, और जब मेरा है तो इनका भी हुआ। कुछ देते है तो कौन-सा अहसान करते है तुम पर।

धन्ना : हाँ, बाबा, एहसान नही करते हैं, परन्तु अब तुम जाओ भीतर। माँ से दो बात करो।

समरत : हाँ, मैं तो तुम सबको अखरनी हूँ। जाऊँ क्यों नहीं...।

[समरत का प्रस्थान]

जग्गाराम : धन्ना, तुम्हारा घर शुरू मे ही गरीब रहा है। लेकिन मान-मर्यादाओं को निभाने मे कभी पीछे नहीं रहा। मैं चाहता हूँ कि अब की बार भी सब काम ठीक ढग से हों, ताकि लौकिकता में आने वाला कोई छींटा कमी न करे।

धन्ना : मैं अपना घर फूंक तमाशा देख रहा हूँ। इससे ज्यादा क्या कर सकता हूँ।

[एकाएक स्टेज के बाजू से भगतजी का प्रवेश]

भगतजी : हाँ बेटा ! लोगों को न जाने क्यों अपने ही घर फूंक तमाशा

देखने मे आनन्द आता है।

जग्गाराम . (एकाएक चौंक-सा जाता है) खड़ा होकर दोनों हाथ जोड़ देता है। जय गोपालजी की !

[भगतजी एक सामाजिक कार्यकर्ता एवं सम्मानित व्यक्ति हैं। ऊँचा कद एवं आकर्षक व्यक्तित्व लिये दमकीला चेहरा। चेहरे पर बिल्कुल ही झुर्रियाँ नहीं हैं। उम्र कोई पचास से ऊपर। धोती कुर्ता पहने हैं एवं सिर पर लम्बे बाल हैं।]

भगतजी · (प्रत्युत्तर में) जय गोपालजी की !(वह अपने हाथ की थैली को भूमि पर रख देते हैं।)

जग्गाराम बैठो, (वह बैठ जाते हैं) आपने तो इधर आना ही कम कर दिया।

भगतजी · (अपने दोनों हाथों से बालों को ठीक करते हुए) समाज के काम ही बहुत ज्यादा बढ गये है। क्या बताऊँ, फुरसत बिलकुल नही मिलती है। घर फूँकने की अभी बात सुनी तो इधर चला आया। पता नहीं लोगों को औरों के घर फूँकने मे क्या मजा आता है।

जग्गाराम · दस्तूर तो निभाने ही पड़ते हैं।

[गोपा जग्गाराम के पास ही भूमि पर ऊँघ गया है। भगतजी उसे देखते है शरीर पर हाथ फिराते हैं।]

भगतजी : सुना है, इस बालक के घर के बैल और गाड़ी बेचकर पिता का खरच किया जाने वाला है।

जग्गाराम (चकित होकर) यह आपको किसने कहा ?

भगतजी : (कुछ सोचते हुए) मैं अन्तर्यामी तो नही हूँ, लेकिन समाज का कार्यकर्ता होने के नाते कुछ जनप्रिय तो हूँ ही। मुझसे भला कोई क्यों छिपायेगा।

जग्गाराम : (झिझक से) लेकिन...लेकिन यह तो...।

भगतजी : (बात काट कर)हां, हां...। यह तो तुम तक ही सीमित है यही न ! जग्गाराम ! गरीब की आह, दीवारों को भी भेद देती है, हर पत्थर दिल को पिघाल देती है। (निष्ठुर बनकर) झकझोर कर पूछती है, क्या तुम्हारा यही न्याय है। क्या इसी बेरहमी का दूसरा नाम धर्म है ? तुम मुझे न भी कहो। इसमे क्या होना ? इन्ही बे-सहारा और विवश आत्माओं की आवाज ने मेरे अन्तर को चुनौती दी है। मुझे आह्वान किया है।

धन्ना : (खड़ा होकर दोनों हाथ जोड़ कर सम्मानपूर्वक) आपने ठीक ही सुना और समझा है, परन्तु यह मेरे घर का मामला है। मुझे इसके लिए किसी ने विवश नहीं किया।

जग्गाराम : हाँ, इसको कोई क्यों कहने लगा। यह तो अपने पिता के पुण्य के लिए जबरन ही ऐसा करने पर उतारू है।

भगतजी : जबरन...? नहीं.. नहीं। जिसके पास खाने तक का पूरा अनाज नहीं, पहनने ओढने की व्यवस्था नहीं, वह इतना खर्च कैसे करे। सरकारी कानून क्या है। आप जानते हैं?

धन्ना : आप मेरे बारे में इतना अधिक न सोचें। मुझे अपने पिता के पिण्डदान में खर्च करना ही है।

भगतजी : (निष्ठुर बनकर) पिण्डदान के लिए मृत्यु-भोज जरूरी तो नहीं।

जग्गाराम : (विनीत स्वर में) हमारी ऐसी कुछ मर्यादाएँ तो बनी हुई हैं। हम उन्हें कैसे टालें? धर्मशास्त्रों में भी तो इसे स्थान दिया गया है।

भगतजी : धर्मशास्त्र उस काल और परिस्थिति को देखकर लिखे गये होंगे। अब हमारे लिए खरच की लीक पीटना उचित तो नहीं; फिर यदि पिण्डदान करना ही है तो खरच तो जरूरी नहीं। अपनी हैसियत से कुछ भी दान में दे दीजिए।

धन्ना : (विवशता बताते हुए) यदि हम धर्म की खिलाफत करके यह न भी करें, लेकिन लोगों के ताने तो हमें जीने न देंगे। पग-पग पर लोग हमारे खानदान की निन्दा करेंगे। कहेंगे कि बाप का भोज भी नहीं दिया है। उसे राख में डटा छोड़कर तू भूमि पर चल कैसे रहा है। और भी न जाने क्या-क्या सुनना पड़े।

भगतजी : बेटा! न तो यह धर्म के खिलाफ है और न ही लोक-लाज की मजबूरी।

जग्गाराम : लोग निन्दा तो करेंगे ही। उन्हें कौन रोक सकता है।

भगतजी : (खड़े होकर इधर-उधर घूमने लगते हैं) उफ! निन्दा!! कैसी निन्दा...। यह तो हमारी कमजोरी है। मानवता का कलंक है। इसी ने तो हमको अंधकार से प्रकाश की ओर नहीं जाने दिया है। यही तो है हमारी दुश्मन। राग, द्वेष और ईर्ष्या की परिणति का विकृत रूप यही तो है, निर्मोही। चेतना की शत्रु यह निन्दा किसी को भी तो चैन से नहीं जीने देती। (दृढ़ता से) जग्गाराम! आदमी वही है जो निन्दा-स्तुति से ऊपर उठता

है। निन्दा का दायरा अंधेरा ही है जो कभी उजाले की ओर नही बढने देता है। इससे ऊपर उठकर देखो, मानव का भविष्य उज्ज्वल दिखायी देता है। इस गन्दगी के बाहर की ओर झांको। एक पवित्र मानव-मन को देखो जो प्रगति के पथ पर बढ रहा है।

धन्ना : मै आपसे बहुत प्रभावित हूँ, परन्तु असहाय हूँ। और लोग तो कुछ भी नही कहते-करते, फिर यह भार मैं अपने पर कैसे लूं।

भगतजी : सब यही सोचते हैं। अपने को बचाये रखना चाहते है। यही तो हमारी कमजोरी है। तुम अपने को असहाय क्यों मानते हो।

जग्गाराम . धन्ना ठीक ही कहता है। उसके अकेले के बूते की तो बात नही यह।

भगतजी . हम किसलिए हैं। क्या धरती का भार बनकर पेट ही भरते रहेंगे? गरीब की आह नही सुनी तो वह जीवन नर्क के समान है।

धन्ना . भगतजी! गरीब की सुनता ही कौन है?

भगतजी . लोग नही तो ईश्वर तो सुनता ही है। उसके यहां तो सभी के लिए न्याय ही होगा।

धन्ना लेकिन वह तो उसके दरबार की बात है, दुनिया वाले तो खुद ही अपना फैसला करते हैं।

भगतजी · नही, तुम स्वय ही अँधेरे मे रहना चाहते हो। चेतन मन से कभी नये मार्ग की ओर बढने की सोचते तक तो नही फिर नियति को दोष देना और गरीबी को कोसना कहाँ तक ठीक है।

[गोपा की नींद खुल जाती है। वह भगतजी को देखकर भीतर भागता है]

जग्गाराम : आप सौ फीसदी सही कह रहे है। चन्द समृद्ध लोगों के साथ जीने वाला यह विशाल गरीब समाज है, जो कि झूठी मान्यताओं मे पीसा जा रहा है।

धन्ना . आप संगठन बनाइये। मै इसके लिए तैयार हूँ। समाज का यह दोष मैं अपने पर लेता हूँ।

जग्गाराम . हाँ, मुझे भी आपकी बात अच्छी लगी। आज के इस मँहगाई के युग में बेचारे ये गरीब कैसे इन भारी खर्चों को सहन करें। मृत्युभोज आज के युग की बुराई है। हमारी चेतना को चुनौती है।

[केवलराम के साथ कुछ और व्यक्ति है जो सिर पर सामान उठाये मंच की ओर बढते है।]

भगतजी : (पास आते ही) तो आ गये तुम ? क्या लाये हो अपने साथ इतना सारा ?

केवलराम : (नम्रतापूर्वक) खरच का सामान है। भाई की आत्मा के पीछे पुण्य के लिए।

भगतजी : (निष्ठुरता से) और पाप नही क्या ?

केवलराम : मैं समझा नही ...।

भगतजी : आप पुण्य को समझ रहे हैं, फिर पाप को क्यों नही ?

केवलराम : उन्होंने तो कोई पाप नही किया। और न ही मैंने भी . ।

भगतजी : तो अब कर रहे हो पाप ?

केवलराम : पाप कैसा भगतजी ! आप क्या पहेली बुझा रहे है मैं समझा नही।

भगतजी : यह भी एक पाप है। हां, किसी गरीब की आत्मा दुखाना वैसा ही पाप है, जैसे कि अन्य बुरे काम होते हैं।

केवलराम परन्तु यह तो दान है, परम्परा है। मेरे भाई के पीछे इतना भी नही किया तो लोग क्या कहेंगे ?

भगतजी ; (तीखे स्वर से एक ही सांस में) परम्परा निभाने के पीछे तुमने अपने भाई की बीवी और बच्चों तक का ख्याल नही किया ? बैल और गाड़ी बेचकर तुझे परम्परा निभाते हुए शर्म नही आयी ?

केवलराम : (विनम्र स्वर में) लोक-लाज में जीना ही तो पड़ता है। मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ? घर की हालत जानता हूँ फिर मजबूरी से करना ही तो है।

भगतजी : अब तुम अकेले नही। जग्गाराम और धन्ना तुम्हारे साथ है।

जग्गाराम : हां, केवल भाई ! इस कमर तोड मँहगाई के जमाने मे धन्नाराम जैसे सैकड़ो गरीबो को मृत्यु के खरच से राहत देने के लिए, हमें एक जुट होना पडेगा। मैं तुम्हारे साथ हूँ।

भगतजी : (सन्तोष की सांस लेते हुए) मैं आज धन्य हुआ। तुम्हारे जैसे युवकों का साथ चाहिए। धन्ना अपनी मां को कह दो खरच नही होगा। दान-पुण्य अपनी हैसियत से जो चाहो कर लो।

धन्ना : जी भगतजी ! उनको भी मना लेता हूँ।

[नेपथ्य से आवाज आती है—मुझे मन्जूर है]

भगतजी : आप सभी सुनिये, रूढ़िवादिता के शिकंजे मे फँस कर हमने

अपने गरीब भाईयो को ऊपर ही नही उठने दिया, वल्कि राष्ट्र के लिए भी भारी अहित किया है। फिजूलखर्ची में दवा किसान ऋण मे ही पैदा होता है और ऋण मे ही मरता है। बच्चों का पेट काटकर किये जाने वाले ये खर्च हमें तो तिल-तिल कर जीने पर मजबूर करते ही हैं। साथ ही देश के विकास की गति को भी रोक देते है। आप नवयुवक है। जागरूक बनकर रूढिवादिता के शिकजे मे फँसे गरीबों को बाहर निकालो। इन्हे ऊपर उठाओ। केवल ! तुम्हें एक काम और करना है।

केवलराम . एक नही, दस काम बताइये। मैं चुटकी मे करने को तैयार हूँ।

भगतजी आज बारह गाँवों के पचो को सूचना दे दो। मठ पर एक बैठक का आयोजन किया जा रहा है वहाँ सभी को आना जरूरी है।

केवलराम जी, भगतजी ! अभी जाता हूँ। (वह राहत की साँस के साथ जवाब देता है।)

भगतजी और सुनो...। यह सामान जहाँ से लाये हो वहाँ वापस पहुँचा दो। धन्ना के बैल और गाडी छुडवा लो।

जगाराम बैठक मे क्या-क्या बातें करनी है ?

भगतजी . (व्यंग्य) लड्डू-पूरी की बात नही करना है। खरच पर पाबन्दी के लिए ठोस कदम उठाना है।

जगाराम सभी पचो को मनाना तो कुछ मुश्किल ही है।

भगतजी मुझे विश्वास तो है। ऐसे कार्य के लिए विरोध नही होगा। अधिकतर लोग तो गरीबी मे जी रहे हैं।

जगाराम · यदि विरोध हुआ तो ?

भगतजी . तो भी हम सफल हो जायेगे।

जगाराम · (जिज्ञासा से) वह कैसे ?

भगतजी : जब धन्नाराम के घर का करुण दृश्य उनके सामने रखूँगा तो उनके दिल दहल जायेंगे। उन्हें बता दूँगा कि गरीबों का पेट काटकर, उन्हें बरबाद कर और बैल व गाड़ी बेचकर खरच करना पुण्य नही है। पाप है। घोर पाप है।

जगाराम . फिर भी न माने तो क्या हो ? (आशंकित होकर)

भगतजी . न माने तो भले न मानें, मैं आज से सत्याग्रह पर उतर जाऊँगा। गाधीजी के सत्याग्रह ने अंग्रेजो की ताकत को हिला दिया। फिर, क्या हम अपनी छोटी-सी रूढि को नही मिटा सकेंगे। मेरा अपना निश्चय है कि या तो इसे बंद करवाऊँगा या बावजी की उस पावन धूणी पर अपने प्राण त्याग दूँगा।

आजादी के लिए भी तो वीरों ने फांसी के फन्दे गले मे डाले थे।

केवलराम : (जाने को उतारू होता है) मैं अभी जाता हूँ। सबको कह देता हूँ कि यह समाज का कलंक आज से मिटाके ही रहेंगे। यह अभियान मैं अपने घर से आरभ करूँगा।

भगतजी : क्यों धन्नाराम ! तुम्हें दु ख नो नही हो रहा ?

[केवलराम और उसके साथी सामान उठाकर चल देते हैं। गोपा हाथ में रोटी का टुकड़ा लिये आता है। खुशी-खुशी टुकड़े तोड़-तोड़ कर खाता है।]

धन्नाराम
जग्गाराम } (एक साथ) नही, हमें कोई दु ख नही है। यह पुण्य है। गरीबों की आत्मा की आवाज है।

[पर्दा गिरता है]



बेंत की कुर्सियाँ

अर्जुन कात्रडिया

प्रार्थना-कार्यक्रम का महत्व है, और उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है प्रवचन-कार्यक्रम के परम विचारणीय बिन्दु— बढ़िया शिक्षा, नैतिक शिक्षा, अधिकाधिक वृक्षारोपण आदि। शिक्षक और छात्र ही तो देश के कर्णधार है। "प्रत्येक छात्र को इस सत्र मे कम-से-कम तीन-तीन खड्डे खोदकर तीन-तीन वृक्ष लगाने है और उद्योग/कार्यानुभव के कालाश का आपको पूरा उपयोग करना है। उद्योग/कार्यानुभव पढाने वाले सभी शिक्षक इसके प्रभारी होंगे।"

प्रधानाध्यापक अपनी बात पूरी करते है और इसी बीच पहले कालांश के 10-15 मिनिट न जाने कहाँ छू-मन्तर हो जाते है—पहला कालाश जो गणित, विज्ञान, अँग्रेजी अथवा हिन्दी का होता है। खैर! कोर्स पूरा कराने की जिम्मेदारी तो शिक्षक स्वयं समझता ही है। पढाते वक्त थोड़ा रॉकेट की चाल से चल देगा। युग भी तीव्र गति से चलने का जो है।

उद्योग का कालाश है। छात्र शिक्षक के साथ विद्यालय के पीछे की पहाड़ी पर है। 35 छात्र-छात्राएँ है और उनके बीच विद्यालय के स्टोर से निकाली गयी एक गेंती और दो सब्बल। प्रत्येक छात्र को तीन खड्डे खोदकर तीन पेड लगाने हैं।

गेंती और सब्बल की छीना-झपटी शुरू हो जाती है छात्रों मे। शिक्षक समझा रहा है पर हर कोई छात्र अपना काम पहले पूरा कर लेना चाहता है। इतने मे टहलते-टहलते प्रधानाध्यापक निरीक्षण को आ पहुँचते है।

"देखो मास्साब ! ये बालक छीना-झपटी कर रहे है इन्हें रोकिये। समझाइये !" शिक्षक कहता है—"सर ! कुछ गेंतियों की और आवश्यकता है, यदि खरीद लें तो लक्ष्य निर्धारित समय में पूर्ण हो सकेगा और ये छीना-झपटी भी...।"

"देखिये मास्साब, आपकी बात वाजिब है, परन्तु इस वर्ष हमने दस तगारिया खरीद ली है अतः अब तो आप जैसे-तैसे काम चलाइये। हमे तो विभाग की मंशा पूरी करनी है।"

छात्र खड़े-खड़े एक-दूसरे का मुंह देख रहे है। प्रधानाध्यापक चले जाते हैं। शिक्षक अपने चेहरे पर आये परिवर्तनों को बदल कर छात्रों से कहता है—"देखो, आपकी जो सामयिक जाँच होगी उसमें आपको तभी पूर्ण अंक मिलेंगे जब आप तीन खड्डे खोदकर तीन-तीन वृक्ष लगा देंगे। सुन लिया आपने !"

"सर ! यो मने गेंती नी देईरियो है। किस्तर खोदूं।" एक छात्र आवाज करता है।

"देखो बच्चो, तुम्हें किसी भी प्रकार इस कार्य को पूरा करना है। अपने घर से साधन लाकर, छुट्टी के बाद रुककर, या सुबह जल्दी आकर।"

दूर गाँव के बालक कुछ सोच में डूब जाते है, थोड़ी देर मौन छा जाता है। पर अब उनके हाथों में तीखे-तीखे लम्बे पत्थर हैं और उन्ही से वे खड्डे खोदना प्रारम्भ कर देते हैं और इस बीसवी सदी मे मुझे प्रस्तर युग के आदि मानव की एक झलक दिखाई दे जाती है।

वृक्ष लग चुके हैं। बालक उन्हे सँभाल आते है। कभी-कभार दूर के कुएँ से पानी खींचकर भी पिला देते हैं।

मैं आश्चर्यचकित हूँ यह देखकर कि बालकों ने अपने लक्ष्य से भी अधिक वृक्ष लगा दिये हैं। कांटे ढँककर उनकी सुरक्षा भी कर दी है। मैं संतोष की सांस लेता हूँ।

वर्षा का मौसम बीत गया है। पहाडी पर, पूरी पहाडी पर घास लहलहा रही है। उसके बीच बालको द्वारा लगाये विभिन्न वृक्ष अपना अलग ही महत्व जता रहे हैं।

इधर प्रधानाध्यापक-कक्ष के बाहर बरामदे के नीचे वाली जमीन पर स्वतः ही उग आयी एक हजार ककड़ी दृष्टिगोचर हो रही है। पकी हुई पीली-हरी हजार ककड़ी की शक्ल उभरकर सामने आ जाती है। प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि यह भी अच्छी फले-फूले।

गणित का कालांश है। शिक्षक-छात्र पढ़ने-पढ़ाने मे व्यस्त हैं, इस बीच पियॉन टपक पडता है, हाथ मे एक कागज लेकर ! शिक्षक के चेहरे पर थोडी झल्लाहट के भाव आ जाते हैं, शिक्षण के क्रम के टूट जाने के कारण। वृक्षों की मासिक प्रगति का विवरण चाहा गया है। शिक्षक उसे अंकित कर पुन. पढ़ाने मे जुट जाता है।

कार्यानुभव का कालांश है। शिक्षक बालको के साथ पहाड़ी पर वृक्षारोपण की प्रगति देख आते हैं। बालको के चेहरे पर आयी प्रसन्नता को अपने चेहरे पर शिक्षक भी झलका देता है। हवा के झोंके से घास के तन मे लचक आ जाती है।

अन्तिम कालांश चल रहा है। गाँव के कुछ व्यक्ति कार्यालय में एकत्रित है। उनके और प्रधानाध्यापक के बीच चर्चा चल रही है। दो-एक शिक्षक भी हैं।

छुट्टी की घंटी बजी।

उपस्थिति पंजिका में शिक्षक प्रस्थान के हस्ताक्षर कर रहे हैं। "कल घास नीलाम होगी"—एक शिक्षक ने कहा। 'विद्यालय के विकास हेतु कुछ राशि जुट जायेगी"—दूसरे ने कहा।

अगला दिन—

घास नीलाम हो गयी है। जिसके नाम घास नीलाम हुई, शर्त के अनुसार उसके पशुओं ने पहाड़ी पर चरना शुरू कर दिया है। घास को काटा भी जा रहा है। विद्यालय को इससे 300/- रु० का लाभ हो गया है।

दिन गुजर गये हैं। शिक्षक उद्योग के कालांश में पहाड़ी पर जाते है। घास की सफाई-कटाई के साथ-साथ वृक्ष भी साफ हो गये हैं या कुचल दिये गये है। नन्हें-नन्हे बाल-वृक्ष। शिक्षक उदास हैं और एक अजीब-सा चेहरा लिये पुनः कक्षा में आते है।

हजार ककड़ी की टहनियाँ टूट कर नीचे बिखरी हैं। तना टूट कर नीचे झुक गया है मानो उसने भी अपनी गर्दन नीची कर ली है।

अगला दिन—

बालक दरियों के लिए झगड रहे है। खींचतान हो रही है। इधर प्रधानाध्यापक-कक्ष से पुराना फर्नीचर बाहर निकाला जा रहा है। एक लोहे की टेबल और कुछ बेंत की कुर्सियाँ जमा दी गयी है। प्रधानाध्यापक खुश हैं, मगर अब वृक्षारोपण की मासिक प्रगति का विवरण लेने पियॉन शिक्षक के पास नही आता।

□

मासाब, थे ही तो किया छाक !

बद्रीलाल शर्मा

घटना सन् 1973 की है, जब मैं पचायत समिति अराँई की केन्द्रीय प्राथमिक शाला अराँई मे कार्यरत था। केन्द्रीय विद्यालय होने से कभी-कभी हमारे विद्यालय के अध्यापकों को केन्द्र अधीनस्थ शालाओं मे प्रति-नियुक्ति पर जाना पड़ता था। अत. मुझे भी एक बार प्रतिनियुक्ति पर प्राथमिक विद्यालय कटयूरा मे जाना पड़ा। नया गाँव था, नवीन पाठशाला थी, और फिर नये बालक थे। ज्योंही मै विद्यालय प्रांगण के निकट पहुँचा, कई बालकों ने आगे आकर मुझे अभिवादन किया। बहुत से छात्रो ने अभिवादन नही भी किया, क्योंकि वे भ्रम मे थे कि "क्या मैं ही प्रतिनियुक्ति पर आने वाला अध्यापक हूँ।"

प्रार्थना कार्यक्रम समाप्त हुआ। प्रार्थना के पश्चात् मैंने बालकों को 'आज्ञा-पालन' पर प्रवचन दिया। प्रवचन मे मैंने बालकों पर यह छाप छोडी कि "शिष्य को गुरु की हर आज्ञा का पालन करना चाहिए।" मेरे प्रवचन को किसने सुना या किसने नही, किसने समझा या किसने नही। उस समय मैं, यह ज्ञात नही कर सका।

मैंने कक्षा 3 से 5 के बालकों को एक कमरे मे बिठाया तथा कक्षा 1 एव 2 के बालकों को बाहर बरामदे मे। और यही व्यवस्था मेरे लिए छात्र सख्या को देखते हुए उपयुक्त भी थी। मध्यावकाश पूर्व तक सब ठीक-ठाक चलता रहा। मैं एक दिन का जो मेरा कर्तव्य था, उसको पूर्ण जिम्मेदारी के रूप से निभा रहा था। मध्यावकाश हुआ और समाप्त भी हो गया।

मध्यावकाश पश्चात् बरामदे मे धूप आ जाने के कारण मैंने अविभक्त इकाई प्रथम एवं द्वितीय वर्ष के बालकों को बरामदे के पास ही प्रांगण मे एक बबूल के वृक्ष के नीचे बिठा दिया। करीब पौने चार बजे मैंने कक्षा 1 एव 2 को गिनती एवं पहाड़े बोलने के लिए कहा और एक बडे बालक को कक्षा नायक के रूप में खड़ा करके मैं कमरे मे चला आया। कुछ ही समय पश्चात् उस कक्षा नायक ने

एक बालक को मेरे पास लाकर कहा—"मासाब, ओ राजू गिणती कोन्न बोन्न। राजू ने अपने को निर्दोष ठहराते हुए कहा—"नहीं मासाब, म तो बोल रियो छो, पण ओ मन मान ही ले आयो।" उस समय मैं सामाजिक ज्ञान का एक पाठ कक्षा 5 को पढा रहा था। अत: मेरे पढाने के कार्य मे बाधा आती देख, मैंने बिना सोचे-समझे ही उस बालक को मुर्गा बनने का आदेश दे डाला। उस छोटे अबोध बालक के साथ मैंने कितना अन्याय किया था, इसका भान मुझे उस समय नहीं हुआ। और मैं पुन पढाने मे लग गया, अत उस बालक को मुर्गा बनाकर मेरे लिए भूलना स्वाभाविक था।

कुछ समय बीत जाने पर मैंने कक्षा 1 एवं 2 के बालको को घर जाने की छुट्टी भी दे दी। सब बालक अपनी-अपनी धुन मे घर की ओर चल पड़े। कक्षा-नायक ने भी उस आज्ञाकारी बालक की ओर नही देखा। बबूल के नीचे मात्र वह बालक मुर्गा बना हुआ था जिसका मुझे अभी ज्ञान ही नही था।

घंटी बजी, सब छात्र उछलते-कूदते हुए चल पड़े अपने घरो की ओर। मैं कमरे से बाहर निकला और मेरी सीधी नजर पडी उस बालक राजू की ओर जो अभी भी 'गुरुजी के आदेश' की पालना कर रहा था। मैं तीव्र गति से बबूल की तरफ चला, मैंने देखा—राजू के पैर कांप रहे थे, आँखों से अश्रुधारा बह रही थी; किन्तु फिर भी वह अचल अपने छोटे-छोटे हाथों से कानों को पकड़े मुर्गा बना हुआ था। अगले ही क्षण मैंने मेरे दोनो हाथों से पकड उसको खड़ा किया।

मैं राजू के सामने खडा था और राजू मेरे सामने। राजू गर्व से सीना ताने खड़ा था, जबकि मैं अपराधी के समान। मुझे ऐसा लगा मानो राजू की आज्ञा-कारिता एव कर्तव्यपरायणता के आँसू बार-बार मुझे पश्चाताप करने के लिए कह रहे हैं। अत मैंने भविष्य में ऐसी भूल नही करने की शपथ ली।

मेरे शब्द थे—"बेटे, मैं तुमको मुर्गा बनाकर भूल गया था, तुमको अपने साथियों के साथ घर चले जाना चाहिए था।"

"मासाब, थे ही तो किया छाक, क, गुलुजी की बात मानणी चाव।" उसके शब्द थे। 

सूर्यास्त

कमर मेवाड़ी

पहली बार बीस साल पहले आया था। तब कई लोग साथ थे। मन रम गया था। लगा यहीं रह जाऊँ अकेला। एक कुटिया छवा कर। इतना खूबसूरत प्राकृतिक स्थान, मैंने नही देखा आज तक। जगह-जगह भटका हूँ ..आज भी भटक रहा हूँ...खूब यायावरी की है। पर मुझे तो ताजमहल या परशुराम महादेव के अलावा कोई ऐसा तीसरा स्थान नही मिला। जहाँ मेरे मन को शान्ति मिली हो।

एक...किसी शहंशाह के प्रेम का प्रतीक...पूर्णिमा की धवल चाँदनी में स्फटिक की भाँति चमकता-दमकता शाहजहाँ के दिल की दर्द भरी दास्तान... संसार का सातवाँ आश्चर्य ताजमहल।

और दूसरा...अरावली की गोद मे अवस्थित...प्रकृति का सुरम्य स्थल... परशुराम महादेव। जहाँ हजारों...लाखो स्त्री-पुरुष अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए श्रद्धा से अपना सिर झुका देते है।

नीचे सादड़ी कस्बा है। वही से एक जीप किराये पर की थी। जीपें...कारें... स्टेशन-वैगन. .सभी मिल जाते हैं वहाँ...ये सब कुण्ड पर जाकर रुक जाते हैं। फिर चढ़ाई शुरू होती है पहाड़ पर।

पिछली बार जब आना हुआ था, तब कुम्भलगढ़ के रास्ते से आया था। कई लोग साथ थे। वैसे मुझे साथ का कोई शौक नही। अकेला ही घूमता-फिरता हूँ। बड़ा आनन्द आता है अकेले में। किस-किस को साथ लिये फिरूँ। फिर जरूरी भी नही कोई जिन्दगी-भर आपके साथ चिपका ही रहे। पर इस बार अनु मेरे साथ थी।

अनु...अनु...यानी...प्यार का एक समन्दर...एक श्रद्धा...एक देवी प्रति-रूप...जिसकी मेरे जैसा नास्तिक आदमी भी पूजा करता है...हर रोज...हर क्षण।

चढाई बड़ी विकट है।

काँटेदार झाड़ियाँ...झरबेरी के पौधे...एक तरफ पहाड़ आसमान से आँख मिलाता हुआ दिखाई देता है तो दूसरी ओर गहरी खाई मुँह चिढ़ाती हुई लगती है। चढ़ाई देखकर वह ठिठक गयी।

मैंने हाथ उसकी पीठ पर रख दिया और उठा लिया अपनी बाहों में...बतख जितना वजन...वह नहीं-नहीं करती रही . पर मैं उठाये रहा। चढाई समाप्त होने पर उतार दिया नीचे। अब रास्ता साफ था और सीधा। वह थोड़ा रुक गयी चलते-चलते। सुस्ताने के लिए। उसकी आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक थी, जो तृप्ति के बाद आती है किसी स्त्री की आँखों में।

कुछ समय बाद हम फिर चलने लगे।

उसके चेहरे पर रौनक थी। थकान नाम का कोई चिह्न नहीं था और वह खुश-खुश थी।

मैंने सोचा...काश,...मैं जिन्दगी भर उसे...इसी तरह खुश रख सकूँ।

हम ऊपर पहुँच गये। पहाड़ के शिखर पर। वह मुझे खींचकर एक तरफ ले गयी। कुछ बताने। पर नहीं शायद कुछ और बात है। वह पर्स से निकालकर अपना रूमाल बाँध देती है एक जगह। मैं पूछता हूँ—यह क्या कर रही हो? वह प्यार से झिड़क देती है—तुम चुप रहो...तुम कुछ नहीं समझते...मूर्ख कहीं के।

फिर खिलखिलाकर हँसने लगती है। झिड़कना और हँसना उसकी आदत है। मैं बुत बना देखता रहता हूँ। वह कहती है...सुनो. .अब जैसा मैं कहूँ...करते जाना...समझ गये...मन से करोगे न सब?

मैं हाँ कर देता हूँ। मन से।

सीढ़ियाँ चढ कर हम ऊपर पहुँच जाते हैं। मन्दिर के द्वार पर। वही चिर-परिचित मनमोहक स्थान...वही शिवलिंग...वही पत्थर के बने प्राकृतिक गौ-थन से लिंग पर टपकती पानी की बूँदें...एक के बाद...एक...लगातार...टप-टप...वही चारों ओर फैली धूपबत्ती और फूलों की गमक।

अपने आप श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है आदमी।

वह पुष्प चढ़ाती है...फिर नारियल तोड़ा जाता है...महन्त से कहा जाता है आरती के लिए...काफी भीड इकट्ठा हो गयी है...ठसम-ठस खडे हैं लोग। आरती के बोल में उसका स्वर अलग ही प्रकार से मेरे कानों में मीठा-मीठा रस घोल रहा है।

बड़ा पवित्र वातावरण बन गया है।

वह दो-तीन जगह सिक्के डालती है। फिर श्रद्धा से अपना सिर टिका देती

है। ईश्वर के प्रति उसकी असीम श्रद्धा ने अभिभूत कर दिया है मुझे।

मैं यह सब खड़ा-खड़ा देखता रहता हूँ। आज वह मुझे पहली बार एक गृहिणी के रूप में दिखायी देती है।

अब हमें नीचे उतरना था।

नीचे जीप वाला हमारा इन्तजार कर रहा होगा। कुछ नीचे उतरने के बाद एक मुहाय पर, एक आदमी बैठा तस्वीरें और बुकलेट बेच रहा था। हम वहाँ बैठ गये।

वह बता रहा था...यहाँ बहुत साँप हैं...पर किसी को काटते नहीं...सब महादेवजी की कृपा है...चूहे भी बहुत हैं यहाँ। स्वाभाविक है जहाँ चूहे रहेंगे... वहाँ साँप होंगे ही।...जहाँ शिकार...वहीं शिकारी।

चूहे की बात से उसके शरीर में कुछ सुरसुरी-सी हुई और उसने अपनी दृष्टि आस-पास फेंकी। मुझे मालूम था साँप से ज्यादा वह चूहों से डरती है।

पर न वहाँ चूहे दिखाई दे रहे थे, न साँप...कुछ भी नहीं। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और खींचती हुई नीचे उतरने लगी।

आसमान पर बादल छा गये थे।

पर सूरज छिपा नहीं था। वह कभी छिप भी जाता तो भी बादलों की खिड़की से वापस झाँकने लगता।

कुछ लोगों को अंदेशा था कि बरसात हो सकती है। वे तेज-तेज कदमों से चल रहे थे।

हमने भी अपनी चाल बढ़ा दी। लेकिन सूरज हमारे सिर पर सवार था। और साथ-साथ चल रहा था।

हमें नीचे पहुँचने में करीब घण्टा-भर का समय लग गया। जब हम कुण्ड पर पहुँचे, चारों ओर अँधेरा छा गया था और सूर्य शरमा कर बादलों के पीछे जा छिपा था। ऐसा लग रहा था मानो रात हो गयी हो। उसने पूछा—

—यह क्या हो गया?

—सब-कुछ खत्म।

—क्या?

—सूर्यास्त।

—ऐसे कैसे बोलते हैं आप। और यह कहते-कहते उसका खिला हुआ चेहरा अचानक मुरझा गया। मैंने उस वक्त बड़े ध्यान से देखा उसके सुर्ख चेहरे पर कालिमा उभर आयी थी और वह काफी थकी-थकी लग रही थी।

मैंने जीप में बैठते हुए आश्वस्त करने के लिए उससे कहा :

—सुनो ! देखा जाये तो सूर्यास्त हो चुका। पर अभी दिन के दो ही बजे हैं। काफी वक्त शेष है। अगर धरती को जरूरत होगी तो वह सूरज को पुकारेगी और सूरज किसी भी अवस्था में होगा, वह बादलों का सीना चीरता हुआ धरती पर फैल जायेगा।

उसने मेरी बात सुनी और आँखों-ही-आँखों में मुस्करा दी।

अब हमारी जीप उन्हीं ऊबड़-खाबड़ रास्तों से वापस लौट रही थी। अपने गन्तव्य की ओर। ☐

अलग-थलग पड़े लोग

निशात

गंगानगर जिले का दक्षिणी-पूर्वी भाग, पल्लू अचल। गंगानगर से जयपुर के लिए जब बस से चलते हैं तो हनुमानगढ से आगे स्पष्ट होने लगता है कि आगे कोई पिछड़ा इलाका आने वाला है। लेकिन तभी आती है संसार की सबसे बड़ी नहर राजस्थान केनाल और एक बार फिर चारों ओर हरियाली नजर आती है। पर यह हरियाली ज्यादा दूर तक नही है। बस ज्योंही रावतसर कस्बे से आगे निकलती है तो नजर आने लगता है रेत के धोरों का अनन्त विस्तार। रावतसर से लगभग मील भर की दूरी पर पानी का एक पतला-सा नाला कुछ हरियाली पैदा करने की असफल-सी कोशिश करता नजर आता है। लेकिन अधिकतर लोगों के खेत विरानी हैं। वर्षा होती है तो कभी-कभार इन खेतों मे हरियाली नजर आती है। नही तो सब ओर रेत-ही-रेत होती है। इन खेतों में डचाब और झाड़-झंखाड़ की इतनी अधिकता होती है कि समा लगा हो तो भी फसल दिखाई नही पड़ती। मन बीघे से ज्यादा शायद ही पैदा हो पाता हो इन खेतों मे। हाँ, वैसे यह डचाब और झाड-झंखाड पशुओं के चरने के खूब काम आता है। इसलिए पशुधन इधर कुछ ठीक ही है। अब लोग हाड़ी (रबी) की फसल भी बोने लगे हैं और उसके लिए जमीन को सँवारने लगे हैं। भूमि को जोत-जोतकर डचाव और झाड़-झंखाड़ को नष्ट करने लगे हैं।

गाँवो के बस के अड्डों पर बसों पर चढने-उतरने वाले लोगो को देखकर इस अंचल की बदहाली स्पष्ट आंकी जा सकती है। गंगानगर और जयपुर की तरफ के लोग इन्हे विदेशी नजर आते होंगे। इसी नवम्बर माह मे मेरा इधर आना हुआ था। बस में एक जयपुर जाने वाले परिवार के बच्चे और सदस्य गर्म कपड़ों के बोझ से लद-पद थे। और इधर के एक परिवार के बच्चों के गले मे पूरी कमीजें भी नही थी।

इधर कई गाँवो से भाटा (चूना) भी निकलता है। लेकिन उसका लोगों के

जीवन स्तर पर कोई प्रभाव नहीं है। थानों में सरकारी आदमी होते हैं। ट्रक आते हैं और भरकर चले जाते हैं। प्रभाव पड़े भी कैसे?

पल्लू से दो मील दूर मेरा पुश्तैनी गाँव है दनियामर। कभी-कभार चाचाजी से मिलने जाना होता है। पल्लू अड्डे से उतरकर चल पड़ा हूँ। पहले पगडण्डी की एक लकीर होती थी। अब ऊँटगाड़ियाँ चलने लगी हैं तो दो लकीरें पड़ गयी हैं। अब इधर-उधर भटक जाने का खतरा नहीं रहा। बस, इतनी-सी प्रगति हुई है।

एक-एक धोरे को पार करता हुआ चल रहा हूँ। पाँव रेत में धँसे जा रहे हैं। पहली बार चलना मुश्किल लग रहा है। साँस कुछ मुश्किल-से आ रहा है। लेकिन चलने के सिवाय कोई चारा नहीं। इसलिए चल रहा हूँ। थोड़े दिन पहले इधर अच्छी वर्षा हुई थी। देख रहा हूँ सब लोगों ने रवी की बुआई कर दी है। कुछ अभी भी कर रहे हैं। ढलाव में भरी भूमि में भी हल चला दिया गया है।

पिछले तीन सालों में इधर नाम मात्र का ही अन्न पैदा हुआ है। सबसे बड़ी ट्रैजडी तो इन लोगों के साथ यह होती है कि बुआई के वक्त बीज तो इनका खर्च करवा दिया जाता है। लोग दुगने भाव उधार लेकर बीजते हैं। लेकिन काटने के वक्त बीज भी नहीं मुड़ता। पिछली सावणी की फसल की बुआई लोगों ने बड़े तंग होकर, तीन-चार सौ रुपए क्विंटल के भाव बीज और सौ-डेढ़ सौ रुपए क्विंटल के भाव ऊँटों के लिए नीरा खरीद कर दी थी। लेकिन वह सब चौपट हो गयी। बुआई के वक्त वर्षा हो गयी तो क्या? बाद में सब सूख गयी।

मँहगाई की मार तो यहाँ बे-हिसाब है। हनुमानगढ़, रावतसर या सरदार-शहर यहाँ से कोई ज्यादा दूर नहीं। लेकिन वहाँ से यहाँ चीजों के दाम लगभग डेढ़ गुने होते हैं। और अगर उधार पर लेने हो तो फिर तो देने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। वह जी में आया भाव लगाता है। बेचारे कई गरीब किसान इन बनियों के शिकंजे में फँस जाते हैं। इनसे उधार उतर नहीं पाता और उमर भर बेगार देने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं। कर्ज ज्यों-का-त्यों बना रहता है। पाँच-दस साल बाद जब भी समां लगता है फसल ये बनिये हथिया लेते हैं। गरीब की जुर्रत ही क्या है कि इन्हें पैसा न दे। मेरे कुनबे के लोग भी इस प्रकार के शोषण का शिकार होते हैं यहाँ।

हाड़ी की बुआई हो गयी है। इसलिए गाँव के लोगों को आशा बँध गयी है। वैसे भीतर से लोग बेहद टूटे हुए हैं। एक आदमी मुझे बताता है—अब तक का टाइम हमने यहाँ बड़ी मुश्किलों से काटा है। लोगों ने आधे मोल गायें-भैंसें बेच दीं। इस मेह के बरसने से पहले हम सोच रहे थे—कहाँ जायेंगे? कैसे जायेंगे? हमारा क्या बनेगा? हम भर पेट रोटी नहीं खाते थे। वर्षों का जोड़-जाड़कर रखा उलगा-थुलगा हमने सब लगा दिया है। अब अगर यह हाड़ी की फसल भी हाथ न लगी तो बस मारे जायेंगे।

शाम के वक्त गुवाड़ में बैठे चार-पांच बूढ़े-बुजुर्गों से राम-रमी करता हूँ। दो-चार मिनट बैठता हूँ। वे मेरी नौकरी पूछ बैठते हैं। छ-सात सौ का नाम सुनकर चौंक जाते हैं। कहते हैं—बहुत नौकरी है तुम्हारी। सरकार को तुम्हे इतने पैसे नही देने चाहिए।

उनकी गरीबी को देखते हुए मुझे उनकी बात जायज लगती है। लेकिन जिस इलाके में मैं रहता हूँ, वहाँ के लोगों की आय के मुकाबले में तो सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाह कोई ज्यादा नही लगती। मुझे स्थान-स्थान के लोगों की आर्थिक गैर-बराबरी खलने लगती है।

सोचता हूँ—राजस्थान केनाल यहाँ से बीस मील से ज्यादा दूर नही। यह ठीक है कि यहाँ ऊँचे-ऊँचे धोरे है। लेकिन इन धोरो के बीच मील-मील भर लम्बी समतल जगह भी तो है। इन डहरों में आसानी से नहरो का पानी लगाकर खेती की जा सकती है।

दनियासर और पल्लू के ऐन पास से बिजली के बड़े-बड़े खम्भो की एक लाइन निकली है। सरकार यहाँ कोई उद्योग-धंधा ही स्थापित कर दे तो भी इन लोगों की बदहाली कुछ मिट सकती है।

दनियासर में पचायत समिति का प्राईमरी स्कूल है। लेकिन बच्चे पढ़ते ही नही। शायद गाँव भर से पन्द्रह-बीस बच्चे जाते हैं। अध्यापक भी कभी स्कूल में रहता है, कभी नही। बच्चे तो सुबह-सुबह ही पशुओं के पीछे निकल पड़ते हैं। मैं अभी निपटने के लिए ही बाहर निकला हूँ। और छोटे-छोटे बच्चे पशुओं को लिये खेतों की ओर जा रहे हैं। दिन अभी पूरा निकला नही है। पाले से सिकुड़ते हुए, एक बिना बटनों की कमीज में भी चले जा रहे हैं। मेरे शरीर पर तीन-चार कपड़े पड़े हुए है। मैं सोचता हूँ—सचमुच ही ये लोग गरीब हमारी वजह से ही है। अतर्राष्ट्रीय गैर-बराबरी मिटाने की बातें की जाती है लेकिन एक ही देश के स्थान-स्थान की गैर-बराबरी मिटाने की बातें क्यो नही चलाई जाती?

दूसरे दिन पल्लू अड्डे पर आता हूँ। रास्ते में एक आदमी बताता है कि यहाँ के आदमी में और उधर के आदमी मे बहुत फर्क है। उधर का आदमी खर्च करते हुए तनिक भी नही झिझकता। अच्छा खाता-पीता है और पहनता है। इधर जिसके पास कुछ होता है, वह भी पूरा खाता-पीता नही और अच्छा पहनता नही। वह भी जितना पास है उसमें दो पैसे और मिलाने की कोशिश करता है। इसका कारण है कि यहाँ के आदमी को यह विश्वास नही रहता कि जो बोया है वह हो ही जायेगा। उधर के आदमी को यह विश्वास होता है। वह जितना कूतता है, उससे मन दो मन ही कम-बेसी होता है। यहाँ का तो बचपन ही चिन्ता-फिकर में डूबा है। उसे भी यह फिकर रहती है कि कल पशु चराने किधर ले जाऊँगा?

पल्लू में सेकेण्ड्री स्कूल बने दो वर्ष हो गये हैं। एक परिचित अध्यापक से

मिलने जाता हूँ। पूछने पर पता चलता है कि यहाँ दसवी मे आठ विद्यार्थी हैं और नौवी मे नौ । पल्लू सात-आठ गाँवो का सेन्टर है। दस-दस मील के एरिये मे, यह एक हाई स्कूल है। लेकिन पढने वाले ? अगर लोग पढ़ायें और पढ़ाने के काबिल हों तो पचास-साठ बच्चे दसवी क्लास के सिर्फ पल्लू गाँव के ही होने चाहिए। इतना बडा गाँव तो पल्लू है ही।

लेकिन अड्डे पर बैठा मैं साफ देख रहा हूँ। पास ही के एक खेत मे एक बाप अपने बेटे को हल जोतना सिखा रहा है। लड़का कोई सात-आठ वर्ष का है। वह हल की हथेली तक बडी मुश्किलों से पहुँच रहा है। फिर भी उसने हल संभाल रखा है। बाप पीछे-पीछे चल रहा है। बाप सोच रहा है—अब हम अधिक भूमि जोत सकेंगे। अधिक भूमि जुतेगी तो अधिक आमदन होगी। लेकिन... □

पशुपतिनाथ के देश में

रूपनारायण कावरा

ग्रीष्मावकाश की लम्बी छुट्टियाँ पर्यटन का अच्छा अवसर प्रदान कर देती है। यद्यपि मौसम ने तो खूब डराया बाहर घूमने को, पर नेपाल दर्शन की अदम्य इच्छा नही झुकी, नही पिघली इतनी गर्मी से भी।

जीवन में इतनी बड़ी यात्रा करने का मेरा प्रथम अवसर था। साथ मे परिवार था, पत्नी और दो बच्चे अतः कुछ घबराहट भी थी ही, यद्यपि हमने पूरी यात्रा के लिए ट्रेन मे आरक्षण की व्यवस्था कर ली थी। मेरा भय निर्मूल नही था। भारत की राजधानी दिल्ली मे हमारी तीन बर्थ आरक्षित होते हुए भी असम-मेल के शयनयान मे कुली की पूरी सहायता के बावजूद भी किस कठिनाई से हम घुस पाये थे इसे याद कर अब भी सिहर उठता हूँ। बच्चे चीत्कार कर उठे थे, मैं पिस गया था और पत्नी पसीने-पसीने होकर हाँफने लगी थी। हमने अपने आपको भीड़ के हवाले कर दिया और चीखते-चिल्लाते, पिसते-पिसाते जाने कैसे उस छोटे कम्पार्टमेंट मे अपनी सीट पर पहुँच गये। गनीमत थी कि इन अवैध घुस-पैठियों ने सीटों पर कब्जा नही किया था। उनका साम्राज्य केवल गेट और गैलरी तक ही था।

यात्रा के दौरान कानपुर के पाँच-छह कॉलेज स्टूडेन्ट भी हमारे डिब्बे मे (हमारी इजाजत से !) आ घुसे थे। हम आशंकित थे विद्यार्थियों से, पर वे सब बड़े भले सिद्ध हुए। जब उनको यह ज्ञात हुआ कि मैं अध्यापक हूँ तो उनका मेरे प्रति सम्मान और भी बढ गया और मुझे अपने अध्यापक होने पर प्रसन्नता और गर्व हुआ। उन्होंने पानी लाने में, चाय की, फल की व्यवस्था करने मे पूरी मदद की। केवल लघुशंकाएँ करने स्वयं जाना पड़ता था जो कि हिन्दुस्तान की बढती जन-संख्या की प्रतीक भीड़ को लाँघकर एक दुर्ग फतह करने से कम नही थी। विद्यार्थियों ने हमारा आतिथ्य भी किया और विदा होते वक्त झुक कर नमस्कार।

फुलेरा मे रक्सौल (बिहार) तक की लगभग चालीस घंटे की यात्रा मे और

कहीं कोई कष्ट नहीं हुआ। यात्रा सुखद रही।

रक्सौल से हम वीरगंज (नेपाल) पहुँचे, जहाँ से काठमाडू के लिए बस पकड़ी और चल दिए। पहाड़ो में बसे नेपाल की ओर। विदेश यात्रा में जाना अच्छा लग रहा था। वीरगज में ही भारतीय मुद्रा को नेपाली मुद्रा में बदलवाने के लिए एक दुकानदार के पास गये। उसने बड़ी सहृदयतापूर्वक बदल दिये। पर कुछ नोट जीर्ण-शीर्ण दे दिये। हमने बदलने को वापिस दिये तो उसने उनके टुकड़े-टुकड़े करके कहा—"भाई साहब, नेपाल में राजा का सम्मान है। नोट कैसा भी हो कोई लेने से मना नहीं करता है, चाहे फटा हुआ हो, टुकड़े-टुकड़े हो, कैसा भी क्यों न हो, हर दुकानदार, रिक्शावाला, चाय वाला सब ले लेते हैं।" और बात सही थी।

हमारी बस चल पड़ी, पहाड़ी घाटियों में चढ़ती, उतरती, घूमती, चक्कर खाती। पग-पग पर पसरा प्रकृति का सौन्दर्य कितना रमणीय था। रास्ते में पहाड़ों से रिस-रिस कर बहते छोटे-बड़े झरने, पहाड़ी नदियाँ, मजबूत पुल, विचित्र पहाड़ी मकान, सभी कुछ अच्छा लग रहा था। कहीं बेहद शुष्कता, तो कहीं नमी। कभी बस हजार फीट नीचे चली जाती तो कभी हजार फीट ऊपर। कभी दिन का प्रकाश धुँधला जाता तो कभी ठंड बढ़ जाती तो कभी ठंड कम हो जाती। और जब बस की खिड़की से हजारों फीट गहराई में देख लेते तो जीवन की क्षण-भंगुरता का बोध हो जाता। जिन्दगी और मौत इतनी समीप और साथ-साथ चलती हुई मुझे यहीं महसूस हुई। पहाड़ियों पर छाये हुए बादल के ढेर, कुहरा, सभी कुछ अजीब लगता था, अच्छा लगता था। पहाड़ों में की गयी सीढ़ीनुमा खेती भी वहीं देखने को मिली। कितने मेहनती हैं वे लोग पर उनके चेहरे व कपड़ों से सामान्यतः गरीब ही नजर आये। इस दुनिया में मेहनत मजदूरी का अमीरी से बहुत दूर का रिश्ता है। मेहनत तो अमीरी से अपने रिश्ते का जिक्र करती रहती है पर अमीरी अपने इन मेहनतकश रिश्तेदारों को कम ही पहचान पाती है। आत्मीयता दिखाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

लगभग नौ घंटे की यात्रा करके हम काठमांडू पहुँचे उस समय रात के लगभग नौ बज गये थे। कुलियों और रिक्शे वालों ने लूटना चाहा और लूटा भी। हम मारवाड़ी सेवा समिति के होटल पहुँचे और वहाँ रहे पूरे चार दिन।

उस होटल में जिसे मैं धर्मशाला ही कहूँगा सभी सीढ़ियाँ, रेलिंग, कहीं छत तो कहीं दीवार तक भी लकड़ी की थी। बाद में मालूम हुआ कि काठमांडू में काठ यानी लकड़ी का प्रयोग अत्यधिक है और इसीलिए इसे काठमाडू कहते हैं। धर्मशाला सस्ती अवश्य थी पर थी गन्दी और अँधेरी। लेकिन इसके सस्तेपन ने हमारी अन्य शिकायतों को समाप्त कर दिया और हमने अपने को इसमें जगह मिल जाने से भाग्यशाली ही समझा था।

वत्सक इत्यादि इस क्षेत्र के प्रमुख स्थान हैं जिनका अपना पौराणिक इतिहास है। शिवरात्रि पर पशुपतिनाथ का जबरदस्त मेला लगता है।

नेपाल में दर्शनीय स्थलों की कमी नहीं। बूढा नीलकठ, स्वयभू, शाही-म्यूजियम, हनुमान ढोका, चिड़ियाघर, राजकीय उद्यान, गोदावरी पार्क, पाटन का कृष्ण मदिर, बाला जू, गोकर्ण सुन्दरी जल, शखमूल, दक्षिण काली, मुक्तिनाथ इत्यादि काफी प्रसिद्ध है। बूढ़ा नीलकठ में भगवान विष्णु की शेषशायी मूर्ति है, विशाल पत्थर की। बताया जाता है कि किसी प्राचीन अभिशाप के कारण राज-परिवार का सदस्य वहाँ नही जा सकता। स्वयभू मे बुद्ध की चार प्रतिमाएँ हैं और बुद्धनाथ का विशालकाय स्तूप ससार के विशालतम स्तूपों में एक है। चार जोड़ी भगवान बुद्ध की आँखें मानव मात्र के क्रिया-कलाप को देखती हुई बनायी गयी है। पास ही मदिर मे जलते सैकडों दीप और लामाओं द्वारा विशेष पूजन-अर्चन, भजन-कीर्तन दर्शनीय है। पोखरो की प्राकृतिक सुषमा तो अवर्णनीय है।

काठमाडू मे विदेशी माल से भरी हुई दुकानें, बड़े-बडे शोरूम और वहाँ खरीददारी करती हुई भीड 80% भारतीय थी। स्पष्ट था कि विदेशी माल का कितना आकर्षण भरा है हमारे अन्दर। नेपाल से लौटने पर सबका पहला प्रश्न—"आपने नेपाल मे क्या-क्या देखा?" न होकर यही था कि "नेपाल मे क्या-क्या विदेशी माल लाये?" कैमरा एवं ट्रांजिस्टर की तो मेरी भी बहुत इच्छा थी पर कस्टम से बच निकलने की न कला थी, न निर्भीकता। अतः मन मारकर रहना पडा। केवल बच्चों के लिए फोल्डिंग छतरी, कुछ पेंसिल-रबर तथा एकाध फ्रॉक वगैरह ही ला पाये। जर्सियाँ खरीदते वक्त हमारे एक परिचित ने बताया कि सही बात तो यह है कि भारत मे बनी लुधियाना-जालन्धर की जर्सियाँ, सूरत की साड़ियाँ, भारतीय मिलों के शूटिंग वगैरह "मेड इन कोरिया, मेड इन चाइना, जापान" इत्यादि के लेबल देखकर लोग उन्हें खरीदते है। विदेशी गुणवत्ता की चकाचौंध पर ड्योढ़े दाम देते है। भारत मे यह सब मिलता है। पर लोगो को 'क्रेज' है विदेशी माल का। मैंने तो नेपाल से विशेष चीज पश्मीना शॉल लिया यह समझकर कि नेपाल की वस्तुओ के लिए भारतीय चुंगी चौकी पर परेशान नही होना पडेगा।

हिन्दुस्तान मे 'कोकाकोला' बन्द है। मेरी बच्ची ने वहाँ कोकाकोला पिया। मुझे तो आज तक यह समझ में नही आया कि इसमें स्वाद क्या है कि लोग इतना पीते है। वैसे पीने को तो मैंने भी चालीस-पचास बोतलें पी ही होंगी अब तक (नेपाल मे एक भी नही) जब भारत मे बिकता था तब।

काठमांडू का 'काका पार्क' हमें अच्छा लगा, गर्म भी और ठंडा भी। मेरी बच्ची मचल उठी थी जापानी बच्चों जैसे बाल बनवाने के लिए क्योंकि गोदावरी उद्यान मे कई नेपाली बच्चे-बच्चियों के बाल देखकर वह निश्चय कर चुकी थी।

और हेयर-ड्रेसर से रातों-रात बाल बनवाये क्योंकि दूसरे दिन सुबह ही तो रवाना होना था।

नेपाल के शिक्षा मंत्रालय में भी गया और वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था की जानकारी की। मैंने अँग्रेजी में वार्तालाप किया तो उन्होंने कहा कि "आप हिन्दी बोलिये, हम हिन्दी अच्छी प्रकार समझ लेते है।" मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई उनके हिन्दी प्रेम को देखकर। नेपाली स्कूलों में साज-सामान, पर्याप्त भवन इत्यादि की कमी है। अनुशासन भी कोई खास नही। शिक्षा ने प्रभावित नही किया।

चार दिन काठमांडू में बिताने के पश्चात् हम पुन. रवाना हुए वीरगंज के लिए और वीरगंज से पहुँचे रक्सोल। रक्सोल में हम रिक्शे वालों से मात खा गये। और पहली बार यह मानना पड़ा कि हर आदमी अपने काम में होशियार होता है भले ही वह शिक्षित हो या अशिक्षित। उन अनपढ रिक्शे वालों ने मुझे कस्टम की सख्ती से ऐसा डराया कि मैं उनके चक्कर में आ गया और भारतीय सीमा में सामान पहुँचाने के खामखाह अस्सी रुपये देकर पिंड छुडाया। और इस प्रकार नेपाल के ठडे वातावरण से हम पुन: आ पहुँचे भारत में चलने वाली गर्म हवाओं के बीच।

कैसे भूल सकते है पर्वतों के मनोरम दृश्य, मदिरों की सास्कृतिक पृष्ठभूमि और प्रकृति का रमणीय सामीप्य। एक सुहृद, सौम्य एव नेक राष्ट्र का वह प्रवास मैं कभी नही भूल सकूँगा। □

खाइये मगर होशियारी से

अब्दुल मलिक ख़ान

बाबा आदम के जमाने मे इसान कंद-मूल खाकर गुजारा करता था। आग का ईजाद होने के बाद ही उसने खाना पकाना सीखा होगा। तब से अब तक खाना बनाने और पकाने के बेहिसाब तरीके निकल चुके हैं। इस तरह बहुत पहले अनेकानेक शास्त्रो की शाखाओ से लदे मानव ज्ञानरूपी वृक्ष में एक शाखा और फूट निकली जिसे पाकशास्त्र कहा जाता है।

'पाकशास्त्र' याने खाना पकाने की कला सिखाने वाला शास्त्र। कहने वाले खाना पकाने को कला कहते है यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन उनको क्या कहें जो इसको बला समझते है। और बला समझकर ही इसका अंतिम संस्कार करते है। अंतिम सस्कार से मेरा मतलब है फाइनल टच। भोजन को अंतिम रूप देना ताकि वह खाने लायक हो जाये।

इस क्रिया मे लापरवाही से कई बार खाने वाले का अंतिम सस्कार तक हो जाता है। फिर भी पकाने वाले को अपनी गलती का एहसास तक नही होता। आदमी हमेशा खाने को खाता है लेकिन ऐसे मे 'खाना' आदमी को खा जाता है।

छुटपन मे हमारे उस्ताद हमें एक लतीफा चटखारे ले-लेकर सुनाया करते थे—"एक बार एक लड़के ने खाना खाते हुए अपने बाप से पूछा—चीटा स्वाद मे कैसा लगता है?"

बाप अपने बेटे के इस बेतुके सवाल पर झुंझला उठा—"खाना खाते वक्त तुम ऐसी बेकार बात क्यों पूछ रहे हो?"

लड़के ने सफाई दी—"मैं यह बात इसलिए पूछ रहा हूँ कि अभी जो कौर आपने खाया उसमे एक चीटा भी था।"

हमारे एक दोस्त अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ मेहमान बनकर गये हुए थे। उस वक्त वे रिश्तेदार घर पर मौजूद नही थे। घर पर बच्चे और उनकी माँ थी। रिश्तेदार की बेगम साहिबा हमारे दोस्त से पर्दा करती थी। खाने का वक्त हो

गया तो बच्चे थाली में खाना ले आये।

दोस्त महाशय खाना खाने बैठे तो पहली ही रोटी में उनको मरी हुई मक्खी चिपकी नजर आयी। उनको बड़ा जुनून आया अपने रिश्तेदार की बीवी पर। फिर भी उन्होंने उस वक्त कुछ कहना ठीक नहीं समझा। उन्होंने रोटी का मक्खी वाला टुकड़ा तोड़ कर थाली में एक तरफ रख दिया। यह सोचकर कि खाना खाने के बाद जब थाली रिश्तेदार की बीवी के पास पहुँचेगी तो रोटी के टुकड़े में मक्खी चिपकी हुई देखकर उनको अपनी लापरवाही का एहसास होगा।

टुकड़े को थाली में रखकर वे खाने में मशगूल हो गये। उसी वक्त मेजबान रिश्तेदार भी आ पहुँचे और उनकी तीमारदारी में लग गये। होते-होते दोनों में बातचीत का दौर चला। हमारे अजीज दोस्त खाना नोश फरमाते जा रहे थे और बातचीत भी करते जा रहे थे। कुछ देर बाद वे खाना खाकर उठने ही वाले थे कि अचानक उन्हें उस टुकड़े का ख्याल आया जो उन्होंने थाली में एक तरफ रखा था। लेकिन थाली तो चटियल खोपड़ी-सी साफ चमक रही थी। बार-बार नजर घुमाने पर भी वह आपत्तिजनक टुकड़ा उनको दिखाई नहीं दिया। हमारे दोस्त सोच रहे थे कि क्या मरी हुई मक्खी टुकड़े को उड़ा ले गयी या बात-बात में हम उस टुकड़े को भी···

खैर! औरों की क्या हम अपनी ही कहें कि अगर हम खाने में से निकलने वाली इस तरह की किस्म-किस्म की चीजों को शुरू से ही इकट्ठी करने लगते तो अब तक हमारे पास एक अच्छा-खासा अजायबघर बन जाता। तिनके, घास, बाल, धागे, चाक के टुकड़े, माचिस की जली हुई तीली, चींटे, चींटियाँ और घुन वगैरह निकलना तो आम बात है। कई बार बटन, कंकड़, सेफ्टीपिन, हेयर पिन, कंचे और न जाने क्या-क्या हमारे दाँतों और आँतों की मजबूती का इम्तिहान लेने चले आते हैं। इसी सख्त इम्तिहान के मोर्चे पर जंग करते हुए अब तक हमारे दो दाँत शहीदी का दर्जा पा गये। आगे अल्लाह मालिक है।

चावल या दाल में कंकड़ आने पर हमारी बेगम साहिबा इसको दूकानदार की कारस्तानी बताकर बरी जिम्मे हो जाती हैं। उनका कहना है कि चावल और दाल में दूकानदार इस तरह के कंकड़ मिलाते हैं कि शक्ल में हू-ब-हू वे उनके सगे भाई नजर आते हैं। माइक्रोस्कोप से भी देखा जाये तो वह भी धोखा खा जाये।

आपने कहावत सुनी होगी, 'अनाज के साथ घुन भी पिस जाता है' इसलिए हम घुन की बात नहीं करेंगे। चींटियाँ भी कई जगह बड़े शौक से खायी जाती हैं। मक्खी-चूस का खिताब तो आपने कई बार सुना होगा। वैसे भी मक्खी चूस कर फेंकने और मक्खी निगलने में कोई फर्क नजर नहीं आता। इस वजह से इन छोटे-मोटे प्राणियों का जिक्र करना कोई खास मायने नहीं रखता।

शादी के बाद पहली बार हमारी सब्जी में सवा काला बाल निकला तो हमने

बड़े शाही अदाज मे बेगम साहिबा को वह नजराना दिखलाया। हम तो अंदर से उबले जा रहे थे लेकिन उनके चेहरे पर शिकन तक नजर नही आयी। वे खिल-खिलाती हुई बोली—"ज़ुल्फ़ों और गेसुओं के जिक्र से तो अच्छे-अच्छे शायरों की शायरी महक रही है। आपने भी अपनी न जाने कितनी नज्मों में काली लटों की तारीफों के पुल बांधे हैं। उनमें से एक गेसू अगर आपकी प्याली में पहुँच गया तो इसमें कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा।"

सच मानिये इसके बाद हमने उनकी काली घुंघराली ज़ुल्फ़ों की तारीफ करना ही छोड़ दिया।

एक दोपहर को हम बाजार से आकर खाने पर टूट पड़े। दो ही लुकमे लिये होंगे कि हमारे मुँह से एकदम चीख निकल गयी। ऐसा लगा जैसे किसी ने हमारे तंदुरुस्त जबड़े मे इंजेक्शन की सुई घुसा दी हो। हाथ से टटोलकर देखा तो एक तीखा आलपिन हमारे मसूड़े के दरवाजे में घुसने की जोरदार कोशिश कर रहा था। हमने शिकायत की नजर से बेगम की तरफ देखा तो फलासफर की तरह उन्होंने हमें बड़े पते की बात बतायी। कहने लगीं—"जिन्दगी मे तो लोहे के चने तक चबाने पड़ते हैं और आप एक मामूली से आलपिन को देखकर ही घबरा गये।" हम उनकी फ़लासफ़ी का लोहा मानकर चुप हो गये। हमारी मर्दानगी हम पर तानाकशी करने लगी। हमने सोचा, अच्छा होता अगर हम आलपिन को कच्चा चबा गये होते।

हमारे एक पड़ोसी के पेट मे बड़े जोर का दर्द रहता था। हर तरह से इलाज करवाया लेकिन कोई फर्क नही पड़ा। आखिर उन्हें अपने पेट का एक्स-रे कर-वाना पड़ा। डॉक्टर की रिपोर्ट के मुताबिक उनकी बड़ी आँत में एक लोहे की चीज अटकी हुई थी। फौरन ऑपरेशन किया गया तो अंदर से निकला एक हेयर-पिन जो कभी उनकी श्रीमतीजी के बालों की शोभा बढ़ाता था। और इसमे कोई शक नही कि वह खाने के जरिये ही उनके पेट में पहुँचा होगा।

शुरू मे तो हम ऐसी बातों पर वावेला मचा दिया करते थे। हम गुस्से से लाल-पीले हो जाते लेकिन बेगम हमेशा नार्मल रहकर ऐसा जताती जैसे कुछ हुआ ही न हो!

उस रोज लजीज खीर की तारीफ करते-करते हम खीर गटक रहे थे कि अचानक कोई सख्त-सी चीज हमारे गले में अटक गयी। हमारी समझ में नही आया कि कबाब में हड्डी कहाँ से आ फँसी। खासकर हमने हथेली फैलायी तो एक अच्छा-खासा सुनहरे रंग का बटन टपक पड़ा।

हमारे कुछ कहने से पहले ही बेगम साहिबा की बाँछें खिल उठीं—"अरे वाह! हम अपने कोट में लगाने के लिए कब से इस कलर के बटन को ढूँढ रहे थे। आपने हमारी सारी मुश्किल आसान कर दी।" कहते हुए उन्होंने हथेली पर से बटन

झपट लिया। हमारा एक हाथ बदस्तूर गले को सहला रहा था, उस पर उनका ध्यान नही गया।

बचपन से हमें मेथी, पालक की सब्जी खाने का बड़ा शौक है। एक दिन सब्जी मे हरी घास के टुकडे निकलने पर हमने उनसे अपील की तो उन्होंने फौरन दलील दी कि—"हर वनस्पति मे किसी-न-किसी तरह का विटामिन होता है। आपने देखा, सॉड कितने ताकतवर होते है। वे सिर्फ घास खाते हैं। हरी घास सेहत के लिए कोई बुरी चीज नही होती।"

हमने खीझकर कहा—"घास तो गधे भी खाते है। क्या आपने हमे गधा समझ रखा है?"

हमारी बात शायद उनको लग गयी थी। वे रुआँसी होकर बोली—"हम आपको गधा समझेंगे तो फिर लोग हमको क्या कहेंगे, आपने इतना भी नही सोचा?"

हमने आगे बहस करना मुनासिब नही समझा।

बेगम साहिबा का कहना है कि हमारे सामने तो आज तक कोई ऐसी-वैसी चीज नही आयी। एक हम हैं कि घर-बाहर, होटल, रेस्तराँ हर जगह कुछ-न-कुछ ढूंढ ही लेते हैं।

यह तो हुई उन चीजों की बातें जो खाते-चबाते वक्त नजर में पड़ जाती हैं। लेकिन न जाने कितनी ऐसी गुमनाम हस्तियाँ है जो चुपचाप पेट के ज्वालामुखी मे चली जाती है और कानोकान खबर तक नही होती। इसकी एक वजह यह भी है कि खुदा ने पेट को जबान नही दी वरना वह सारी तफसील बयान कर देता। गले की चौकी पार करने के बाद कोई भी चीज कहीं-से-कही जा सकती है।

हमने बेगम को कई बार आगाह किया कि खाने-पीने के सामान को ढक कर रखा करो और खाना बनाने मे ज्यादा होशियारी से काम लिया करो।

इस पर हमेशा उनका एक ही जवाब होता है—"हमारी शादी को दस साल से ऊपर हो चुके। इस दौरान हम दो से चार हो गये। आपकी सेहत बिल्कुल ठीक है, फिर तो आपको हम पर एतबार होना चाहिए।"

हमें उनकी बात मे वजन नजर आता है। शादी के बाद हम कभी बीमार नही हुए। दाँतो के हादसे को अगर छोड़ दिया जाये तो हमारे हमउम्र साथियों की बनिस्पत हमारी सेहत अच्छी है। इन सब बातों को देखते हुए हम इस मसले पर नये सिरे से सोचते हैं।

हो सकता है हमारी सेहत का राज खाने मे निकलने वाली इन अजीबो-गरीब चीजों में ही छिपा हो। फिर भी हर खाने वाले से हमारी गुजारिश है कि खाते वक्त हाथ और मुँह के साथ-साथ आँखों से भी काम लेना नही भूलें। □

कोरा लिफाफा

रामदत्त शर्मा

मेज पर पड़े एक लिफाफे को उलट-पलट कर देखा, हाथ में लिया तो पता लगा कि यह तो कोरा लिफाफा है। पता नही यह किसके हाथ मे जायेगा। इसमे रखा जाने वाला कागज कोई पत्र होगा या आदेश या इसमें वजन रखा जायेगा, कुछ भी नही कहा जा सकता। यदि इसमे कोई प्रेम-पत्र रखा गया तो किसी बेताबी से प्रतीक्षा करने वाले की आँखो को चकाचौंध करने में भी यह पीछे नही रहेगा। वह इसे बार-बार देखेगा, पढेगा और सीने से लगायेगा। उसके हृदय में गुदगुदी होगी एव हाथो मे कम्पन। कांपते हुए हाथो मे इसे खोला जायेगा। खुलते ही इसका महत्व एक तरह से समाप्त हो जायेगा। जिस पत्र को सुरक्षित रखने हेतु इसने अपने घर को छोडा वह इसे छोड कर किसी की निगाहों का केन्द्र बनेगा और यह लिफाफा किसी कूड़ेदान मे फेंक दिया जायेगा।

यदि इस लिफाफे में किसी की नियुक्ति का आदेश रखा गया तो यह किसी की रोटी-रोजी का माध्यम बनेगा। वह इसे प्राप्त कर अपने भाग्य को सराहेगा परंतु आदेश को पढने की शीघ्रता मे इसे बेदर्दी से फाड़ कर फेंक देगा। पता नही कहाँ और किस अवस्था मे यह पड़ा रहेगा। इसकी सुध-बुध लेने तक की चिन्ता किसी को नही रहेगी। इसी प्रकार इस लिफाफे मे यदि कोई स्थानान्तर का आदेश हुआ तो इसका स्वागत भी हो सकता है और निरादर भी। स्थानान्तर चाहने वाले को यदि इस लिफाफे में रखा आदेश उसके इच्छित स्थान का हुआ तो वह बड़ी उत्सुकता से इसे खोलेगा और इसका स्वागत करेगा। यदि स्थानान्तर आदेश अनिच्छित स्थान का हुआ तो वह इसे क्रूर दृष्टि से देखेगा। खोलकर आदेश को पढ़ते ही उसका माथा ठनकेगा और वह चुपचाप उस आदेश को लिफाफे मे रखकर सिर पर हाथ लगाकर बैठ जायेगा। ऐसी स्थिति मे यह लिफाफा फाड़-कर फिंक जाने की दुरावस्था से बच जायेगा। कैसी विडम्बना है, मनचाहा आदेश प्राप्त करने वाले ने तो लिफाफा बेदर्दी से फाड़ दिया और अनचाहा आदेश प्राप्त

करने वाले ने इसे वहश दिया।

सरकारी कर्मचारी बहुधा कहते हैं कि हमारा तो लिफाफे में घर है। लिफाफा उनके घर को बसाने या उजाड़ने का माध्यम बन जाता है, परन्तु बारीकी से सोचें तो उनके मन में लिफाफे के लिए वास्तव में न आदर है और न उससे किसी प्रकार का क्षोभ। उसे वे कोई महत्व नहीं देते। महत्व तो उसमें रखे कागज का है। यदि यह कागज महत्वपूर्ण है तो लिफाफे का महत्व हो जाता है परन्तु तभी तक जब तक लिफाफा खोलकर भीतर के कागज को निकाल नहीं लिया जाता है। इसके बाद तो लिफाफा कहाँ जाता है इसकी परवाह बहुत कम लोग ही करते हैं। फिर भी न जाने क्यो कहा यही जाता है कि लिफाफे में घर है। पता नहीं यह लिफाफे का मजाक उड़ाना है या उसके नाम को बदनाम करना है।

यदि इस लिफाफे का उपयोग कुछ वजन रखकर किसी को चुपचाप भेंट करने में किया गया तो इसके भाग्य ही खुल जायेंगे क्योंकि कोरे लिफाफे में वजन रखने का रिवाज आजकल बढ़ता जा रहा है। ऐसे कार्य जो नियम और सिद्धान्त के आड़े आने से नहीं किए जा सकते लिफाफे में वजन रखकर पहुँचाने से आनन-फानन में हो जाते हैं। यदि अफसर का रुख टेढ़ा देखो तो लिफाफे में वजन रखकर भेंट कर दो। समझ लो कि रुख अनुकूल हो जायेगा। कई अफसर ऐसे होते हैं जो लिफाफे में वजन देखते ही भभकते है, भौंकते हैं और डाट-फटकार भी कर देते हैं। उन्हे बस चुपचाप घर जाकर अधिक वजनदार लिफाफा दे दो। यदि फिर भी राजी न हो तो उनकी श्रीमती जी से साँठ-गाँठ कर वह लिफाफा पहुँचा दो। सफलता मिलने के बहुत आसार हो जायेंगे। कोरे लिफाफे में वजन रखना तो महत्वपूर्ण है ही, परन्तु उससे भी वजनदार लिफाफे को सही स्थान पर पहुँचाने वाले व्यक्ति की व्यवहार कुशलता एव पटुता है। उसकी सूझ-बूझ और योग्यता का पूरा इम्तिहान है। जो जितनी कुशलता से वजनदार लिफाफे को उपयुक्त स्थान पर पहुँचा सकेगा उतनी ही गारन्टी से मनचाहा काम पूरा करा सकेगा। काम छोटा हो या बड़ा, वजनदार लिफाफे से आज के समय में सब-कुछ सम्भव है। लिफाफे में वजन बढ़ाते जाइये और बड़े-से-बड़ा काम पूरा कराते जाइये।

अफसर की ही बात नहीं। बड़े-से-बड़े नेता और यहाँ तक कि सरकार के मंत्री जी भी वजनदार कोरे लिफाफे के आकर्षण से अपने आपको अछूता नहीं रख पाते हैं। कोटा हो या परमिट हो, चाहे लाइसेंस हो या टेन्डर सभी को मंजूर कराना वजनदार कोरे लिफाफे की पूरी तरह सामर्थ्य में है। आवश्यकता इस बात की है कि आप ऐसा लिफाफा पहुँचाने में कितने ट्रेन्ड है। यदि आपने किसी अच्छे गुरु से ट्रेनिंग प्राप्त की है तो अवश्य ही आप जान जाएँगे कि किस प्रकार के कार्य के लिए कितना वजन कोरे लिफाफे में रखें और उसे किस माध्यम से कहाँ पहुँचायें। इसके लिए अवसर का भी बड़ा महत्व है। कैसा भी बढ़िया कोरा, एक-

दम अछूता और आकर्षक लिफाफा ले लीजिये, उसमें वजन भी अच्छा-खासा रख लीजिए परन्तु यदि आपने उसे उचित अवसर पर नही दिया तो बना-बनाया काम बिगड़ भी सकता है। अत अवसर का जरूर ध्यान रखें।

अवसर ही नही वजनदार कोरा लिफाफा पहुँचाने के लिए उचित स्थान का भी महत्व कम नही है। आपने ऐसा लिफाफा यदि किसी ऑफिस में जाकर दिया तो आपको धक्के मारकर बाहर भी निकाला जा सकता है। दो-चार आदमियो के सामने कमरे मे दिया तो अवश्य ही ,आप अपने फूहड़पन का प्रदर्शन करेंगे। इसके लिए उचित स्थान का चयन करना कोई मामूली बात नही है। विशिष्ट प्रकार की तीव्र बुद्धि वाले अनुभवी एवं सूझ-बूझ से युक्त व्यक्ति ही सही स्थान का चयन कर सकते हैं। इसे देते समय ध्यान इतना अवश्य रखिये कि जहाँ तक हो एकान्त हो क्योंकि ऐसे लिफाफे नम्बर दो मे ही दिये जा सकते हैं।

कोरा लिफाफा पहुँचाने मे माध्यम का भी कोई कम महत्व नही है। यदि आप इतने कुशल और अनुभवी नही है कि लिफाफे को सही स्थान पर सीधा ही पहुँचा सकें तो उचित माध्यम जरूर खोज निकालिये। इसे ढूंढने के लिए बहुत सूझ-बूझ की जरूरत है, यदि गलत माध्यम चुन लिया तो सम्भव है कि लिफाफे का वजन रास्ते ही मे कम हो जाये। यह भी सम्भव है कि आपका लिफाफा बीच मे ही रह जाये और आप धोखे के शिकार हो जायें। इसमे काफी सतर्कता की जरूरत है। आप यह तो कहेंगे कि कोरे लिफाफे में वजन रखने और पहुँचाने की बात अधिक विस्तार मे कही गयी है परन्तु मैं क्या करूँ यह तो आज के समय की बलिहारी है जिसने कोरे लिफाफे को लिखे हुए से अधिक महत्व दिया है। इसीलिए तो लिखा लिफाफा फाड़कर फेंक दिया जाता है परन्तु कोरा लिफाफा जब वह वजनदार हो जाता है तो उसे फाडकर फेंकना तो दूर रहा बहुत सँभाल कर अन्दर की जेब में रखा जाता है। इसीलिए तो कहते है कि आज इस युग में लिखे और पढे से ज्यादा कीमत कोरे की है। इसे कही आप मुहावरा न समझ लें, क्योंकि कभी-कभी लोग तपाक से कह देते है कि क्या हो गया जो कोरे लिफाफे बनते जा रहे हो। कभी कोई ऐसा भी कहते हैं कि कोरे लिफाफे ही मत रह जाना, वजनदार बनना, नही तो फूंक मारकर उडा दिये जाओगे, अतः समय को पहचानना चाहिए।

इसी से तो हाथ मे कोरे लिफाफे को देखकर सोच रहा हूँ कि पता नही इस लिफाफे के भाग्य मे क्या बदा है। ऐसा न हो कि किसी हवा के झोके मे यह लिफाफा उड जाये और उड़ते-उडते इतनी दूर पहुँच जाये कि किसी की निगाह मे ही न आये। किसी कोने मे पडा नही रह जाये या किसी फाइल के नीचे न दब जाये, क्योंकि महत्व तो निगाह के सामने रहने का है। यदि निगाह से ओझल हो गया तो इसका भाग्य फूटा ही समझो। ऐसी स्थिति मे वजन रखने की जरूरत पड़ने पर कोई दूसरा ही कोरा लिफाफा खोजना पड़ेगा। □

रूठे-रूठे पिया, मनाऊँ कैसे !

सत्या भार्गव

ऑफिस से आते ही ये बोले—"मैडम फटाफट तैयार हो जाओ, शर्मा के घर चलना है।" तो मैं बोली—"शर्मा के घर, वहाँ आज क्या है?" "आज उसके विवाह का दिन है, पार्टी दे रहा है। सभी दोस्तों को सपरिवार बुलाया है।" "एक बात बताओ, वो 'शादी-दिवस' मनाते ही कब है?" "ओ हो! ये सब तुम उसी से पूछना। जब देखो तब बहस करने लगती हो। तुम्हारी यह आदत मुझे जरा भी पसन्द नही।"

मैं इनसे कुछ कहे-सुने बिना तैयार होने चल दी। जब वहाँ पहुँची तो देखा—मीना मित्तल, रीना चटर्जी, मोना मुकर्जी, शीला गोयल, शशि पारीख सभी मेरा इन्तजार कर रही थी। सबसे अभिवादन किया, फिर चारों ओर देखा पर घर-वाली अर्थात् विमल शर्मा कही दिखाई नही दी जबकि शर्मा साहब सबके स्वागत मे तन्मय थे। करीब आधा घंटा इन्तजार करने के बाद विमल जी पधारी। आँखें सूजी हुई थी। साफ पता लग रहा था कि रोई हुई हैं। सबकी नजर उन पर थी। बधाई देने हेतु कौन आगे बढ़े—सब सोच ही रहे थे। तभी लपक कर शर्मा साहब आगे आये और बोले, "आइए देवीजी।" कहने का लहजा ऐसा था कि सब हँस पड़े तभी गोयल साहब बोल पड़े, "यार लगता है जमकर झगड़ा हुआ है।"

शर्मा साहब बोले—"झगड़ा किसका नही होता। यार, तुम एक बात बताओ। हम प्यार तो इनसे करें फिर झगड़ा किससे करने जायें। ये कई दिनों से रूठी हुई थी तभी तो आज पार्टी करनी पड़ी।" "क्या मतलब? क्या आज तुम्हारी शादी का दिन नही है?"—मैं बोली। "नही, शादी तो हमारी जून मे हुई थी अभी तो जनवरी ही चल रहा है। पर भाभी जी इनको मनाने का यही ढंग सबसे अच्छा है।"

हम सब खूब हँसे फिर तो रूठने-मनाने के अनेक रूप सामने आये। मोना मुकर्जी बोली—मुकर्जी साहब को जब क्रोध आता है तो जो चीज सामने दीखे वही तोड डालते हैं। बड़ी मुश्किल से नार्मल होते हैं। हाँ, जब नार्मल होते हैं तो उस दिन विशेष तौर पर खिचड़ी बनती है। एक कटोरी भर घी डालकर खिचड़ी

एक भुलक्कड़ प्रधानाध्यापक

रामनिवास सोनी

शिक्षा जगत के विशाल कारखाने में ऐसी कई विभूतियां आज भी मौजूद है जिनकी विमल यशोगाथा का वर्णन बिचारी निरीह जड़ लेखनी द्वारा कदापि सम्भव नहीं। राजकीय सेवा काल में दीर्घावधि तक रहने तथा स्थान-स्थान पर सर्विस करने से ऐसी कई अज्ञात हस्तियों के दर्शन होते हैं जो हमारे मानस-पटल पर स्थायी प्रभाव डाल सकें। शिक्षकों में ही क्यों, प्रधानाध्यापकों में भी कई भुलक्कड़, जल्दबाज, सनकी तथा विक्षिप्त-से मिल जाते है जो समाज को अहेतु मनोरंजन दे जाते है। अजीब-अजीब टाइप के व्यक्ति इस विभाग की शोभा बढ़ाते है। कुछेक के अपने-अपने तकिया-कलाम है तो कुछ निरे जोकर टाइप। कुछ "भिंडी सा'ब", "टमाटर सा'ब" तो कुछ "कोफ्ता" के नाम से चिढ़ते है। कुछ के तकिया-कलाम हैं—"आक् छी.," "बात यह है कि" अथवा "जो है सो"...इत्यादि। भिंडी सा'ब भिंडी की सब्जी नही खाते और नाम लेते ही उनका पारा आसमान मे चढ जाता है। इसी प्रकार टमाटर सा'ब को टमाटर से सख्त नफरत है। बाजार में आक् छी' की आवाज सुनते ही एक साहब अपना सतुलन खो बैठते हैं। इस प्रकार की छेड़खानी से लोगो का तो मनोविनोद होता ही है उनकी भी प्रसिद्धि किसी-न-किसी रूप मे हो जाती है।

हमारी लघु जानकारी मे एक-दो शिक्षक ऐसे भी हैं जो पढ़ाते समय "बात यह है कि..." का पुट बार-बार लगाते हैं। यह आदत धीरे-धीरे नए गुल खिलाती है। छात्र भी उनकी नकल करने से नही चूकते। छात्रों ने सम्भवत. एक अध्यापक जी का नाम 'कोफ्ता' इसलिए रख दिया कि उन्हे मुफ्त कोफ्ता खाना अधिक प्रिय है। एक बार एक शाला मे गणित के नये अध्यापक आये। छात्रों को बुरी तरह पीटते। छात्र सभी भयभीत मगर करें क्या? आखिर उसी कक्षा के एक नटखट छात्र ने समाधान निकाला। जब भी कोई कक्षा मे आकर पूछता कि यह किसका घंटा है तो छात्र उत्तर देते—"एक सही एक बटा दो ($1\frac{1}{2}$) का।" शनैः शनैः बात

खाते है। तब नाराजगी दूर होती है।

रीना चटर्जी बोली—इनके गुस्से का हाल कुछ निराला है। लड़-झगड़ कर स्कूटर उठाया और आधी-आधी रात तक दोस्तों के संग घूमते-फिरते रहेंगे। कभी-कभी तो किसी दोस्त के घर बैठे घंटो ताश खेलते रहते है और जब मैं मनाऊँ तभी नाराजगी दूर होगी वरना गुब्बारे की तरह फूले रहेंगे।

पारीख साहब बोले—भई हमारी श्रीमतीजी की नाराजगी बड़ी मँहगी पड़ती है। कई दिनो तक न काम न धाम बस गुलदस्ते की तरह सज-धज कर बैठ जायेंगी। मैं कमरे में तो ये बाहर और मैं बाहर तो ये अन्दर। राजी तभी होंगी जब चार-पाँच सौ का खर्च कर दूँ।

मैं बोली, "सो कैसे ?" "अरे भाभी जी मनाने के लिए साड़ी लानी पड़ती है, पिक्चर दिखानी पड़ती है तब कही देवी जी सही रास्ते आती हैं।"

मित्तल साहब सबकी बातें बड़े आराम से सुन रहे थे तभी मीना मित्तल से हमने पूछा—"भाभीजी आप भी तो कुछ कहिए।" "अरे ये बड़े घुन्ने हैं, चट भी मेरी पट भी मेरी वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। जरा-जरा सी बात पर चुप्पी साध कर समाधी लगा कर बैठ जाते हैं। लाख पूछें पर क्या मजाल जो नाराजगी का कारण बता दें। शुरू-शुरू में तो मेरा बहुत ही दम घुटता था फिर सोचा इनकी तो आदत ही ऐसी है। चार-पाँच दिन बाद अपने आप नार्मल हो जाते हैं।"

अब तक विमल शर्मा भी स्वस्थ हो चुकी थी सबकी बातों में रस ले रही थीं, बोलीं—"मेरा जब-जब इनसे झगड़ा हुआ तब-तब पड़ोसियों तक को पता चल जाता है।" "सो कैसे ?" सच तो यह है कि मैं बिन्दी लगाना एकदम छोड़ देती हूँ। सोचती हूँ जिसके लिए बिन्दी लगाती हूँ वही नाराज हैं तो बिन्दी किस के लिए। जब सब टोकते हैं कि अरे सूने माथे क्यों है बिन्दी क्यों नही लगाई तो इन्हें बहुत बुरा लगता है। झटपट मना लेते हैं और इसी खुशी में पार्टी करके दिल खुश कर देते हैं।"

समय काफी हो गया था। पार्टी का आनन्द लेते हुए सब उठ गए। घर आयी तो सोचने लगी—जहाँ बर्तन होंगे खड़केंगे ही। पति-पत्नी एक दूसरे के सच्चे मित्र, सच्चे साथी, सच्चे प्रेमी और सच कहूँ सच्चे दुश्मन भी होते है। इनका तो कहना है पति-पत्नी में झगड़ा अत्यावश्यक है। झगड़ा प्रेम बढ़ाता है, कम नही करता। देखिये झगड़े के तथा रूठे को मनाने के हमने कितने नुस्खे बता दिये। आप सोचते होंगे कि इनमें से हमारा झगड़ा कौन-सा है ? अगर नही तो कौन-सा झगड़ा उत्तम लगा ? क्या अपनाकर देखूँ ? नही-नही ऐसा मत करना। जीवन-नैया प्रेम रूपी नदिया में अबाध गति से बढ़ती रहे। खट्टे-मीठे अनुभव संजो कर रखिये। प्यार तो सागर है जिसमे मोती भी हैं, कंकड़ भी। मोती बटोरते रहिए कंकड़ों पर ध्यान मत दीजिए। □

एक भुलक्कड़ प्रधानाध्यापक

रामनिवास सोनी

शिक्षा जगत के विशाल कारखाने में ऐसी कई विभूतियाँ आज भी मौजूद है जिनकी विमल यशोगाथा का वर्णन विचारी निरीह जड लेखनी द्वारा कदापि सम्भव नही। राजकीय सेवा काल मे दीर्घावधि तक रहने तथा स्थान-स्थान पर सर्विस करने से ऐसी कई अज्ञात हस्तियो के दर्शन होते हैं जो हमारे मानस-पटल पर स्थायी प्रभाव डाल सकें। शिक्षकों मे ही क्यों, प्रधानाध्यापको मे भी कई भुलक्कड़, जल्दबाज, सनकी तथा विक्षिप्त-से मिल जाते है जो समाज को अहेतु मनोरंजन दे जाते है। अजीब-अजीब टाइप के व्यक्ति इस विभाग की शोभा बढाते है। कुछेक के अपने-अपने तकिया-कलाम है तो कुछ निरे जोकर टाइप। कुछ "भिंडी सा'ब", "टमाटर सा'ब" तो कुछ "कोपता" के नाम से चिढ़ते हैं। कुछ के तकिया-कलाम है—"आक् छी.," "बात यह है कि" अथवा "जो है सो"...इत्यादि। भिंडी सा'ब भिंडी की सब्जी नही खाते और नाम लेते ही उनका पारा आसमान मे चढ जाता है। इसी प्रकार टमाटर सा'ब को टमाटर से सख्त नफरत है। बाजार में आक् छी. की आवाज सुनते ही एक साहब अपना सतुलन खो बैठते हैं। इस प्रकार की छेड़खानी से लोगों का तो मनोविनोद होता ही है उनकी भी प्रसिद्धि किसी-न-किसी रूप में हो जाती है।

हमारी लघु जानकारी मे एक-दो शिक्षक ऐसे भी है जो पढ़ाते समय "बात यह है कि..." का पुट वार-वार लगाते हैं। यह आदत धीरे-धीरे नए गुल खिलाती है। छात्र भी उनकी नकल करने से नही चूकते। छात्रों ने सम्भवत. एक अध्यापक जी का नाम 'कोपता' इसलिए रख दिया कि उन्हे मुफ्त कोपता खाना अधिक प्रिय है। एक बार एक शाला मे गणित के नये अध्यापक आये। छात्रों को बुरी तरह पीटते। छात्र सभी भयभीत मगर करें क्या? आखिर उसी कक्षा के एक नटखट छात्र ने समाधान निकाला। जब भी कोई कक्षा मे आकर पूछता कि यह किसका घटा है तो छात्र उत्तर देते—"एक सही एक बटा दो ($1\frac{1}{2}$) का।" शनैः शनैः बात

ने ऐसी करवट बदली कि उन्होंने छात्रों को पीटना बिल्कुल बन्द कर दिया। इस बात पर जहाँ थोड़ी अनादरपूर्ण हँसी आती है वहाँ छात्रों की सूक्ष्म बुद्धि और मेधा का भी पता चलता है। सच तो यही है कि अध्यापक का सही मापदण्ड यदि कोई कर सकता है तो वह छात्र ही।

जब से मिस्टर 'क' इस शाला के प्रधानाध्यापक बनकर पधारे हैं तभी से शाला के वातावरण में हास्य-विनोद का एक नया मोड़ आ गया है। आये दिन नित नयी बातें, नित नये कानून और नित नये प्रयोग। सर्वत्र भुलक्कड एवं जल्दबाज प्रधानाध्यापक जी की चर्चा। उनकी अकारण तुनकमिजाजी से छात्र, अध्यापक, चपरासी सभी हैरान, परेशान। छोटी-छोटी बात पर झिड़कना, आँखें बदलना, पैंतरे दिखाना, माफी माँगना या बेसिर-पैर की ऐसी बात कहना कि सबको बरबस हँसी आ जाये। एडमीशन, टी० सी०, छुट्टी की अर्जी अथवा फीस वसूली—सभी कार्यों में अविवेकपूर्ण हठधर्मिता। मिलने वालों का तांता, अभिभावकों से माथापच्ची, छात्रों से भिड़त—भाषण पर भाषण मगर निर्णय कुछ नहीं। हर दिन मनहूस-सा बीतता। शनैः-शनैः इसके मनोवैज्ञानिक कारणों का पता स्वतः चल गया।

अपनी साइकिल पर सवार होकर जब भी भुलक्कड़ प्रधानाध्यापकजी शाला में आते, चपरासी झट डंडा पकड़ा देता जिसे अपनी काँख में दबाकर राउंड करते तो लगता जैसे "कत्थक नृत्य" कर रहे हों क्योंकि इनके पैर पूरे जमीन पर नहीं टिकते और बैलेंस बिगड़ने का खतरा हर वक्त बना रहता। घर से आते वक्त कभी कुछ भूल जाते तो कभी कुछ। एक बार की बात। मिस्टर 'क' राउंड पर। चपरासी साथ में, डंडा हाथ में। शायद टेस्ट चल रहे थे। एक कक्षा के बाहर आकर रुके और किवाड़ों पर लगे दनादन डंडा बजाने—"ए लड़के, सीधे बैठो। बोर्ड की तरफ देखो। ध्यान किधर है?" कमरे का दरवाजा बिल्कुल बन्द। बाहर ताला पड़ा। पास खड़े चपरासी ने कहा—"हुजूर, लड़के टेस्ट देकर चले गये।" तो बोले—"'बेवकूफ, हमें पहले क्यों नहीं बताया।" और द्रुत गति से आगे निकल गये।

एक और हँसा देने वाली घटना। दफ्तर में बैठे वे कुछ साथियों से आवश्यक परामर्श कर रहे थे। चपरासी पास में था। अचानक बोले—"चपरासी, चपरासी को बुलाओ। मेरा मुँह क्या ताकते हो?" उसने उत्तर दिया—"हुजूर, किसे बुलाऊँ?" तो भुलक्कड़ प्रधानाध्यापक जी दार्शनिक की तरह अपने को समेट कर बोले—"नालायक, पहले क्यों नहीं बताया" और उलझ गये परामर्श की अतल गहराइयों में। पास बैठे सभी शिक्षक मुँह फेर कर हँसने लगे।

एक और जल्दबाजी की हैरत अंगेज घटना सुनिये। स्थानीय अन्य शाला का एक छात्र मिस्टर 'क' से मिलने आया। उसके हाथ में एक पत्र था। छात्र दफ्तर

के बाहर खड़ा हो गया। इतने में डंडा फटकारते, डास करते-से प्रधानाध्यापकजी शाला का पूरा राउंड लगाकर दफ्तर की तरफ मुड़े। आते ही उस छात्र पर बरस पड़े—"नालायक, अब आया है इतनी देर से? कहाँ है तुम्हारा बस्ता? निकालो हाथ!" और अकारण बालक की नरम हथेलियों पर तड़ातड डंडे बरसा दिये। बालक चीखा। पास खड़े एक अध्यापक महोदय ने कहा कि यह दूसरे स्कूल का छात्र है और आपसे मिलने आया है तो आप फौरन कुछ नम्र होकर बालक से बोले—"बदमाश, पहले क्यों नहीं बोला? कहिए, ऐसे बदमिजाज और जल्दबाज अफसर भी शिक्षा विभाग के विशाल कबूतरखाने में गुटरगूँ करते है या नहीं?"

मिस्टर 'क' छोटे से गोल-मटोल अफसर, ओछी गर्दन, खिजाबयुक्त बाल, खिलता चेहरा तथा पैरों में स्पजनुमा फुर्ती। बातें ज्यादा, काम कम। शिक्षकों, चपरासियों, अभिभावकों आदि से इनका वाक्-युद्ध होना सामान्य बात है। कभी-कभी तो दफ्तर पूरा हल्दी घाटी या थर्मापोली बन जाता है। बोलने खड़े होते है तो ऐसे जैसे मेल ट्रेन छोटे-छोटे स्टेशनों पर नहीं रुकती। पिछला भूलते जाते हैं आगे उगलते जाते हैं। पुराने स्टेज पेसेन्ट की तरह तब तक नहीं रुकते जब तक श्रोताओं की तालियाँ इन्हें विवश न कर दें। अधिकतर तो पर्यायवाची शब्दों या वाक्यांशों में उलझ कर रह जाते है।

भुलक्कड प्रधानाध्यापक जी के चेहरे पर जैसे एक विस्मृति की रेखा हमेशा छाई रहती है। उन्हे न किसी से नफरत है न किसी से मुहब्बत। हृदय के सरल होते हुए भी गलत दार्शनिक चिन्तन ने उन्हें व्यावहारिक जगत से दूर, बहुत दूर पटक दिया। एक बार षट्मासिक परीक्षा के दिनों मे काफी व्यस्त थे और आवश्यक चर्चा साथियों से चल रही थी। अचानक आप पूछ बैठे—"मास्टर सा'ब, अठारह तारीख को कितनी तारीख है?" पास बैठे सभी सज्जन मुसकराने लगे। इसी बात को पुनः रिपीट करते खोए-खोए से खुद भी मुसकराने लगे और पूछने लगे—"क्यों क्या बात है? मैंने ठीक ही तो पूछा कि अठारह तारीख को कौन-सा वार है?" तब कहीं जाकर हँसी समाप्त हुई। गरज यह कि जब भी आप उदास हों अथवा आपका 'मूड' खराब हो तो शिक्षा जगत की ऐसी दुर्लभ विभूतियों का स्मरण मात्र कर लें तो आपको पुनः ताजगी के विटामिन की गोलियाँ मिल जायेंगी। □

मजाक, पानी के बिल का

शिवकुमार शर्मा

"आपको इस मास के बिल में इस महीने और पिछले महीने दोनों महीनों की पानी की खपत का पैसा चुकाना होगा। पिछले मास यहाँ दरवाजे पर ताला लटका था। जलदाय विभाग का कानून है कि किसी महीने जब 'मीटर रीडर' मीटर की रीडिंग लेने उपभोक्ता के घर जाये और वह नहीं मिले तो उस मास के बिल से औसत खपत के अनुसार राशि प्राप्त की जाये। फिर उसके बाद के महीने के बिल में दोनों मास की खपत का पूरा पैसा वसूल किया जाये।" मीटर रीडर रोब के साथ कहने लगा। मैं स्वयं भी उस समय मौजूद था। मैंने कहा—"कानून कुछ भी हो, परन्तु मेरे मकान के दरवाजे पर ताला कभी लगता ही नहीं है।" मीटर रीडर बोला—"आप कुछ भी कहें। मैं आया था उस दिन यहां ताला लगा था। आपके बाहर का दुकानदार गवाही है।" मैं बाहर निकला। बाहर का दुकानदार मौजूद था। "क्यों जी, क्या आपको याद है कि पिछले मास जब ये आये थे तो मेरे घर के दरवाजे पर ताला पड़ा था?" दुकानदार ने मीटर रीडर की ओर देखा। तभी मीटर रीडर बोला—"बोलो। मैंने तुमसे पूछा था न कि ये लोग कहाँ गये और तुमने कहा था कि मैं नहीं जानता।" दुकानदार कहने लगा—"मैं तुमको नहीं पहचानता। मुझे तुम्हारी बात भी याद नहीं है।" तभी निकट की दूसरी दुकान से उसके मित्र आये और कहने लगे—"बिजली और पानी वालों ने तो अंधेर मचा रखा है। अंधाधुंध जो चाहे बिल में लिख देते हैं। मीटर पढ़ना हम लोग जानते नहीं है। जब चाहें किसी उपभोक्ता के घर पर 'ताला लगा' लिख दें और औसत खपत का बिल बना दें और दूसरे महीने दो मास की सारी खपत की रकम बिल में भरकर उपभोक्ता को जेरबार कर दें। अब तो मुहल्ले-वार उन उपभोक्ताओं की यूनियन बनानी जरूरी हो गयी है।" मैंने कहा—"आप ठीक कहते हैं। इसमें अंधेरगर्दी को दूर करने के लिए जरूर कुछ-न-कुछ करना होगा।" वे कहने लगे—"कुछ-न-कुछ क्या आप तो इन पर अदालत में दावा

करके वसूली पर निषेधाज्ञा लानी चाहिए। इनको अगर आप पैसा चुका देंगे तो कोई भी बाद में सुनने वाला नहीं है।" मैंने भी कहा—"आप ठीक कहते हैं। मैं अवश्य कुछ करूँगा।" मीटर रीडर इस सारी बातचीत को सुनता रहा और फिर चुपचाप चला गया।

मेरे मन पर, कुछ-न-कुछ करने की बात घर कर गयी। परन्तु उन दिनों मैं प्रातः 9.30 बजे से संध्या 6.00 बजे तक एक महत्वपूर्ण कार्य में लगा हुआ था। काम तीन दिन का था। काम के महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ उससे अच्छी-खासी आय भी हो रही थी। उस काम को पूरा किया। चौथे दिन रविवार था। रविवार के दिन सध्या को चेतक से उक्त महत्वपूर्ण कार्य को करने के उद्देश्य से मुझे नौ दिन के लिए बाहर जाना पड़ा। कुछ-न-कुछ करने की बात मन में जमी हुई थी।

जब बाहर से लौटा तो घर पर पूछा कि जलदाय विभाग से बिल आया या नहीं ? मालूम हुआ कि अभी तक वह बिल नहीं आया है।

ऐसी ही मनोदशा में जब मैं दूसरे काम से घर के बाहर निकला तो जलदाय विभाग के ही एक वरिष्ठ अभियन्ता मिल गये। मैं इनको एक प्रभावी और सूझ-बूझ वाले प्रशासनिक अधिकारी के रूप में जानता था। इन्होंने पहले मेरी एक ऐसे ही प्रकरण में मदद भी की थी। अभिवादन की औपचारिक प्रक्रिया पूरी करते ही मैंने उन्हें अपनी वर्तमान समस्या की राम कहानी सुनायी। उन्होंने कहा—"मैं अब एक दूसरे कार्यालय में काम करता हूँ। आप कृपया अमुक से मिलिये। वो अच्छे हैं। वैसे इस काम से सबधित अधिकारी तो दूसरे हैं परंतु वे आपके लिए अधिक मददगार नहीं होंगे।"

दूसरे दिन सवेरे जल्दी-जल्दी तैयार हुआ। सोचा, ठीक दस बजे ही ऑफिस में पहुँचूँ। परंतु भोजन करने का संदेश मिला। सवेरे-सवेरे खाना खाने के प्रस्ताव पर मना नहीं करना चाहिए। इसलिए मैंने भी कह दिया—"फौरन लाओ, मुझे पानी के बिल का फैसला करने ऑफिस जाना है।" खाना आया। जल्दी-जल्दी खाया। अपनी वृद्धा सुवेगा (ऑटो) गाड़ी घर से बाहर निकाली। उसे स्टार्ट करने के लिए पैडिल घुमाने लगा। श्वास चढ़ गया। स्टार्ट नहीं हुई। थोड़ा दम लिया। श्वास की गति सामान्य हुई। इतने में एक भक्त आया। बोला—"बाबूजी, मैं धक्का दूँ ?" "हाँ भाई। आपका ही इंतजार था !" मैंने मुस्कराते हुए मजाक किया। मैं गाड़ी पर सवार हुआ। उसके धक्के से गाड़ी चल पड़ी।

कार्यालय बगीचे के अंदर है। बगीचे की सड़कों की मरम्मत हो रही थी। सीधे रास्ते की बजाय बगीचे के पीछे वाली फाटक से भीतर घुसना पड़ा। वही फाटक आने-जाने वालों के लिए उस रोज खुला हुआ था। बूढ़ी सुवेगा का एक्सीलेटर कितना ही खींचो, उसकी चाल तो उसकी ही रहती है। ऑफिस में काम से पहुँचने में देरी हो सकती है। किसी को स्टेशन पर 'सी-ऑफ' करने जाता हूँ तो

गाडी चली जाने पर पहुँचाती है। परतु इसकी सबसे बडी अच्छाई यह है कि यह इसके सवार को 'एक्सीडेंट प्रूफ' रखती है। इस प्रकार निर्भय रह कर मैं पूरे इत्मिनान मे अभियन्ता, जलदाय विभाग से मिलने को पूर्वाह्न 11.40 बजे कार्यालय मे पहुँचा। उनके चेम्बर का दरवाजा बद था। चपरासी से पूछा। मालूम हुआ कि वे फील्ड ऑफिसर है। सवेरे 9.00 बजे आये थे। अभी-अभी मौका देखने निकले है।

मैं सोचने लगा—मजे फील्ड ऑफिसर्स के है। फील्ड पर रवाना होने का नाम लेकर कही भी, भले घर ही, चले जायें तो भी ड्यूटी पर माने जाने में कोई कोर-कसर नही रहती। मैंने चपरासी से पूछा—कब तक आवेंगे? उत्तर मिला—साढे तीन बजे आने का समय है। मैंने फिर पूछा—जरूरी मिलना है। साढ़े तीन बजे मिलेंगे तो सही? उसने कहा जरूरी-वरूरी कुछ नही। अगर मिलना ही है तो फिर चार-साढे चार बजे आइये।

लाचार हो घर लौट आया। काम करने लगा। तबीयत नही लगी। ज्यों-ज्यो समय गुजारा 4 बजे वापस रवाना हुआ। वही सुवेगा, वही चक्करदार रास्ता। साढ़े चार बजते-बजते ऑफिस जा पहुँचा। अभियन्ता महोदय के चेम्बर का दरवाजा अभी बद था। उसी चपरासी से मैंने पूछा—"क्या यह दरवाजा अभी तक नही खुला?" उसने उत्तर दिया—"साहब, अभी-अभी ही पधारे हैं।" मैंने फिर पूछा—"कब तक लौटने की उम्मीद करें? उसने कहा—"अब तो आप कल ही पधारिये। आज तो वे 'सर्किट हाउस' गये हैं। अब आने की उम्मीद नहीं हैं।" मैं वापस घर लौट आया। दूसरे दिन सवेरे अपनी रविश के अनुसार तैयार होकर कार्यालय पहुँचा। इस बार चेम्बर का दरवाजा खुला था। परन्तु अंदर पहुँचने पर नजर आया कि कुर्सी खाली है। वहाँ पास की कुर्सी पर एक सज्जन बैठे थे। मैंने अपने तीसरी बार आने का कारण और अपनी समस्या का कच्चा चिट्ठा उनको सुनाया। वे कहने लगे—"काम तो आपका वो साहब करेंगे जो उस सामने के कमरे मे बैठते हैं।" यह बात समाप्त भी नही हुई कि वे साहब उसी कमरे में चले आये। मैं खड़ा हो गया। उनको सामने देखकर मुझसे भी न रहा गया। मैंने भी कह ही तो दिया, मुझे आपसे ही मिलना था। उधर भीड़ थी अत: यहाँ बैठा भीड़ छँटने का इन्तजार कर रहा हूँ। 'तब फिर आइये' कहकर वे वापस अपने चेम्बर मे लौट गये। मैं भी साथ-साथ वहीं पहुँच गया।

मुझे अलग-अलग माध्यमों से मालूम हो चुका था कि ये अधिकारी कौन है, अत: मैंने अपने आरोप की सिद्धि के लिए आव देखा न ताव, बहस शुरू कर दी।

सर्वप्रथम मैंने अपना परिचय दिया। अपने डॉक्टर होने और विभागीय पद की सर्वोच्चता पर रह चुकने का जिक्र किया। फिर यह भी कहा, 'नौकरी में तो हम बधे थे परन्तु अब आजाद है।' फिर कहना शुरू किया, 'आपका मीटर रीडर

अमुक दिन आया था। उसने हम पर कैसे-कैसे रोब कसा और फिर क्या-क्या बातें कहीं। यह भी कहा कि उसकी सच्चाई को प्रभावित करने को गवाह चाहिए थे। परन्तु उसकी बात का मेरे पडोसियों ने इकार कर दिया।' अपनी बात को चालू रखते हुए मैंने आगे कहा, 'आपका मीटर-रीडर एक दिन मे सौ मीटरों का अकन करता है। काम करते-करते उसे यह पता लग जाता है कि किस-किस उपभोक्ता के कौटुम्बिक सदस्यो की सख्या कितनी-कितनी है। कौन-कौन नौकरी पर निकलते है। कब-कब सभी बाहर जाते हैं। ऐसे अनुभव का लाभ लेकर वह रोजाना दो-चार उपभोक्ताओं के मकान पर 'ताला लगा' लिखकर अपना रेकार्ड पूरा करके सामान्य मासिक दर से पानी का बिल बना सकता है। इस प्रकार की बेईमानी से एक तो उसे आराम मिलता है। विभाग को कोई नुकसान नही होता उल्टे लाभ ही होता है। सामान्य मासिक दर पर उस मास रकम की वसूली हुई फिर अगले मास पिछले मास और उस मास के जल के उपयोग के पैसे की आमदनी हो ही गई। परन्तु, इस प्रकार करते रहने मे उपभोक्ता तो लुटने लगता है। आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के कुटुम्ब दो-चार बार परेशान होकर 'मीटर-रीडर' की गरज करने लगेंगे। उसे चाय-पानी का पैसा देकर जब वे घर पर न हों तो 'ताला बन्द' का नोटिंग करने की बजाय उससे दुबारा या तिबारा आने का समझौता करेंगे। इस प्रकार उपभोक्ता और 'मीटर-रीडर' दोनो के पौबारह होंगे पर सरकार तो डूबेगी। यह आपा-धापी तो है 'मीटर-रीडर' की परन्तु बदनामी तो विभाग और सरकार की होगी। वैसे भी जनता यह मानने लगी है कि राष्ट्रीयकरण खोटा है। निजी कारोबार की शिकायत तो सरकार सुनती है। कैसी ही बहरी सरकार हो फिर भी कभी तो कान पर जूँ रेंगती ही है। परन्तु जब सरकार ही कारोबार करने चले तो सामान्य जनता कहाँ जाकर पुकारे।" मैं कहता चला गया। फिर मैंने अपने ही विभाग का उदाहरण दिया, "मैं जब अधिकारी था तो हमारे प्राथमिक विद्यालयों के निरीक्षक क्षेत्रीय अधिकारी थे। स्कूलों को देखने जाने का कार्यक्रम बनाकर घर सोये रहते। तथ्यो को पुराने रेकार्ड या अधीनस्थ कर्मचारियों से मँगाकर प्रतिवेदन तैयार कर देते। यात्रा-व्यय और भत्ता भी उठा लेते। ऐसे लोगो की हम जाँच करते थे। सत्यता प्रमाणित होने पर सजा देते थे।" अब मैंने दाद माँगी,"अतः कृपया जांच कीजिए। मौके पर पधारिये। मेरे मकान को और उसकी स्थिति को देखिये। कुटुम्ब के सदस्यो की सख्या की जानकारी लीजिये। पड़ोसियों के बयान लीजिए। मेरी सत्यता से आश्वस्त होइये। 'मीटर-रीडर' की आपा-धापी को समाप्त कीजिये। यह आपका दायित्व है, महाशय।"

मेरी बहस को वे तन्मयता से सुनते रहे। फिर कहा, "आप ठीक कहते हैं। अभी मीटर-रीडर्स यहाँ नहीं हैं। वे अपराह्न साढ़े तीन बजे आते हैं। संदर्भित

मीटर-रीडर को बुलाकर मैं पहले उससे बात करूँगा। उसी से कुछ-कुछ पता चल जावेगा। फिर जैसी जरूरत होगी वैसी कार्यवाही करेंगे।" उनके इस कथन पर, धन्यवाद देकर जब मैं लौटने लगा तो उन्होंने कहा, "अच्छा हो, आप चार-साढ़े चार बजे आवें।" मैंने यह बात स्वीकारी और लौट आया।

अपराह्न सवा चार बजे वापस कार्यालय में जा पहुँचा। दोनों अभियंताओं के चेम्बर बन्द थे। पूर्ववत् सकल्प-विकल्प की स्थिति में मैं बाहर खड़ा-खड़ा इंतजार करने लगा। साढ़े तीन से पाँच का समय उपभोक्ताओं के लिए शिकायतें दायर करने की दृष्टि से निर्धारित है। यह बात काले नोटिस बोर्ड पर सफेद रंग से बड़े-बड़े अक्षरों में स्थाई रूप से लिखी हुई थी। परन्तु शिकायत सुनने वाले दोनों अधिकारी मौजूद नहीं थे। खड़े-खड़े थक जाने पर अपनी सुवेगा की सीट पर बैठ गया और इंतजार करने लगा। तभी एक चेला आया। मैंने मास्टरी की है। मेरे पढ़ाये हुए विद्यार्थियों को मैं चेला कहता हूँ। चेले ने पूछा, "गुरुजी आप यहाँ कैसे ?" मैंने उसे वहाँ पहुँचने का कच्चा चिट्ठा सुनाया। अब पाँच बजने में पाँच मिनट बाकी थे। तभी उस कार्यालय के अकाउंटेंट बाहर आये। चेले ने कहा— "इनसे बात कीजिए।" मैं अकाउंटेंट के पास गया। अपना परिचय दिया तो वे मुझे उनके कक्ष में ले गये। फिर कहने लगे,"अब बताइये, क्या समस्या है।" इनके सामने सवेरे वाली वही बहस जो मैंने अभियंता के सामने की थी, थोड़ी हेर-फेर के साथ वापस दुहरा दी। मेरा प्रार्थना-पत्र और नवम्बर, 81 का बिल भी उनके सामने रख दिया।

उन्होंने मेरा बिल भेजकर संबंधित मीटर-रीडर को अपना रजिस्टर लेकर बुलाया। मेरी शिकायत पर पूछा, 'सच बोलिये क्या हुआ था ?' वह कहने लगा, 'इनसे मेरी पिछले बखत जब मैं घर गया था तब भी बात हुई थी।' अब उसने अपना रजिस्टर दोनों हाथों से पकड़ा और कहा, 'मेरे हाथ में रिजक है। मैं झूठ नहीं बोलता। मैं दिनांक 10-10-81 को इनके घर गया था। ताला लगा था। मैंने पड़ोसियों से भी पूछा। यह दूसरी बात है कि वे मेरी गवाही दें, न दें।'

अकाउंटेंट ने उसको रवाना किया। फिर मुझसे कहा, 'आप यह प्रार्थना-पत्र ले जाइये। इसे फिर चैक कीजिये। यह आदमी औरों से अच्छा है। जिम्मेदार है। इसने रिजक की कसम खाई है। आप एक बार अपनी जाँच पुख्ता कर लीजिए।' 'ठीक है'। कहकर मैं घर लौट आया।

घर आते ही मैंने अपनी दैनिक डायरी देखी। उस दिन के पाँच दिन पूर्व से ही मैं इक्कीस दिन की यात्रा पर बाहर था। घर के चार सदस्य मेरे साथ गये थे। मैंने मुन्नी से पूछा, 'क्यों री, इस दिनांक को तेरे भाई साहब और बहू वगैरा घर पर थे या नहीं ?' उसने उत्तर दिया, 'भाभीजी कहती थीं कि आप लोगों के जाने के तीन-चार दिन बाद हम भी परशुराम महादेव गये थे।' तभी मेरा पुत्र

ऑफिस से लौट आया। यही बात मैंने उससे पूछी। उत्तर मिला, 'अगर यह बात दिनांक दस अक्टूबर की थी, तो वास्तव में हम ताला लगाकर बाहर गये थे।'

मैं सोचने लगा, 'मैं स्वयं भी सच्चाई के लिए जीवन भर काम करता रहा हूँ। मीटर-रीडर सच्चा है। अब मैं कैसा मुँह लेकर वापस जलदाय विभाग जाऊँ।' मैं नहीं गया।

वही मीटर-रीडर तीन-चार दिन बाद दूसरा बिल देने घर आया। मैंने उससे कहा, 'भैया ! दिनांक दस अक्टूबर को वास्तव में यहाँ ताला लगा था।' वह प्रसन्न होकर बोला—'ये तो आप ही है जो इतनी बात बढ़ जाने पर भी सच्चाई को मजूर कर रहे है।' मैं चुप हो गया।

और यों पानी के बिल का मजाक बन गया। परन्तु शायद अधिक सच तो यह है कि मजाक मेरा बन गया।

फिर भी दरवाजे पर ताला लटका होने की इतनी बड़ी सजा देने संबधी जलदाय विभाग के काले कानून को मिटाने की कसम अब भी बाकी है। □

खाता लोभ का कीडा उन्हें अपनी बात का उत्तर पाने की गरज से मेरे चेहरे के भावों को पढ़ने के लिए मजबूर कर देता है।

"भाई, पारिश्रमिक की बात छोडो, सपादक तो वैसे ही भूखे होते है, ये किसी को क्या देंगे। इनका खुद का ही पेट भर जाये वही बहुत है।" निर्विकार भाव से सपाटबयानी करता हुआ मैं उठ खड़ा होता हूँ। हम दोनों 'रतन पान भंडार' के सामने जाकर खड़े हो जाते है। वह यत्रवत् पान के टुकडे हम दोनो के हाथों मे थमा देता है।

पान का एक-एक टुकडा गालो मे दबाकर हम कुछ देर वहीं खड़े रहते है। पान चबाते-चबाते पहली पीक वही पिच्च करके सडक की छाती पर वे उडेल देते है। सामने ही बड़ का छोटा-सा पेड जिसके चारो ओर पक्का गट्टा। हम दोनों उसी गट्टे पर जम जाते हैं। अब लोगों की आमदरफ्त कुछ कम हो चली है।

शर्मा जी आदतन फिर सिगरेट सुलगा लेते है और छोडने लगते है हवा में ऊपर की ओर धुएँ के गोलाकार छल्ले। धुएँ के गोलाकार छल्ले धूम्रपान मे अर्जित उनकी अब तक की कलाकारी को भली-भांति प्रमाणित कर रहे होते है। तभी एक व्यक्ति मथर गति से हमारी ओर आगे बढकर ठीक सामने खडा हो जाता है और अपने हाथ मे शेष बचा बीड़ी का टुकडा नीचे फेंककर जूते से मसल देता है।

"आप तो गुरुजी है, आपको तो बीडी-सिगरेट पीनी नही चाहिए।" आगतुक शर्मा जी की ओर इगित कर अनायास ही बदूक की गोली-सी दाग देता है।

शर्मा जी इस अप्रत्याशित प्रहार से तिलमिला जाते है और बात टालने की गरज से उत्तर मे सिर्फ "क्यों नही ?" कहकर अपने को सहेजने मे जुट जाते हैं।

"क्यो क्या, जब मास्टर ही बीड़ी-सिगरेट पियेंगे तो फिर चेले क्यो नही !" आगतुक अपने नथुनो को कुरेदता हुआ अंतस में छिपी घृणा को शब्दो के जरिये शर्मा जी पर थोपने को आमादा-सा हो जाता है।

इस बार शर्मा जी का पारा चढ जाता है और उनका धैर्य उनका साथ छोड़ने की जबरदस्त धमकी दे देता है। मैं स्थिति को भाप बीच मे ही बोल पड़ता हूँ— "भाई साहब, बात क्या हुई ? आपका पढ़ने वाला कोई बच्चा बीड़ी पीने लगा है क्या ? मास्टरो के ऊपर ही इतना आदर्श बघारने की नौबत कैसे आ गई ?"

सुनकर आगंतुक थोडा सहमता है—"हां साब, क्या बताएँ, एक बच्चा है दसवी मे पढ़ता है। उसे आज उसकी माँ ने छत पर बीड़ी पीते हुए देख लिया। तभी से...।"

"अच्छा तो यह बात है; लेकिन वह बीड़ी लाया कहां से !" मैंने कुछ और कुरेदने की गरज से उनसे पूछ ही लिया।

"अजी लाया कहां से, वही कमरे में टंगे मेरे कुर्ते की जेब से ले ली उसने।" गले मे थूक गटकता हुआ सकुचाई ढीली आवाज से वह व्यक्ति बोला।

बात एक शाम की

सत्यपाल सिंह

बात मीरा नगरी की है।

मैं शाम के वक्त और दिनों की तरह खाना खाकर घर से निकल पड़ता हूँ। अस्पताल के कम्पाउंड से गुजर रहा होता हूँ तभी पीछे से एक जानी-पहचानी आवाज "मैं भी आ रहा हूँ" कानों से टकराती है। बिना पीछे मुड़कर देखे ठिठक जाता हूँ।

"आओ शर्मा जी" कहकर औपचारिकता पूरी करके धीरे-धीरे आगे की ओर कदम बढ़ाने लगता हूँ। कुछ ही क्षणों में हम दोनों बाजार की गहमागहमी के बीच पहुँच जाते हैं। मंदिर की छत से उभरता संगीत 'हरि-राम रस मीठा' इस समय कानों को बड़ा भला लगता है। मैं उसी के लोभ में मंदिर के बाहर की दुकानों के सामने वाली पटिया पर बैठ जाता हूँ।

"सिंह साहब, यार आप भी कैसे आदमी हो, सिगरेट तक नहीं पीते" रोज-मर्रा की तरह मुझ पर दोष थोपते हुए शर्मा जी अपनी जेब से एक सिगरेट निकाल लेते हैं और पास में ही खड़े एक अपरिचित बीडीबाज से माचिस माँग-कर उसे सुलगा लेते हैं। बस फिर क्या है, रईसी अंदाज में आकाश की ओर किश्तों में धुआँ छोड़ना शुरू कर देते हैं। धुएँ का अनचाहा जायका नाक-मुँह सिकोड़ते मुझे भी बरबस लेना ही पड़ता है।

"यार आप कहानी तो भाई साहब बड़े गजब की लिखते हो" सिगरेट का गुल खिराते हुए शर्मा जी अनायास कह उठते हैं।

"कहाँ मिल गई आपको मेरी कहानी पढ़ने के लिए" कहकर मैं उनकी बात को जैसे थोड़ा और आगे बढ़ा देता हूँ।

"यार इतवारी-पत्रिका में, क्या कहानी लिखी है आपने भी ! और हाँ उसका पारिश्रमिक भी खूब मिला होगा इस बार तो। हो जाय पान इसी बात पर।" कहते-कहते शर्मा जी सिगरेट का बचा-खुचा टुकड़ा फेंक देते हैं और मन में मरोड़

खाता लोभ का कीडा उन्हें अपनी बात का उत्तर पाने की गरज से मेरे चेहरे के भावों को पढ़ने के लिए मजबूर कर देता है।

"भाई, पारिश्रमिक की बात छोडो, सपादक तो वैसे ही भूखे होते है, ये किसी को क्या देंगे। इनका खुद का ही पेट भर जाये वही बहुत है।" निर्विकार भाव से सपाटबयानी करता हुआ मै उठ खडा होता हूँ। हम दोनों 'रतन पान भडार' के सामने जाकर खडे हो जाते हैं। वह यन्त्रवत् पान के टुकडे हम दोनो के हाथों मे थमा देता है।

पान का एक-एक टुकडा गालो मे दबाकर हम कुछ देर वही खडे रहते हैं। पान चबाते-चबाते पहली पीक वही पिच्च करके सडक की छाती पर वे उडेल देते है। सामने ही बड का छोटा-सा पेड़ जिसके चारो ओर पक्का गट्टा। हम दोनो उसी गट्टे पर जम जाते है। अब लोगों की आमदरफ्त कुछ कम हो चली है।

शर्मा जी आदतन फिर सिगरेट सुलगा लेते है और छोडने लगते है हवा में ऊपर की ओर धुएँ के गोलाकार छल्ले। धुएँ के गोलाकार छल्ले धूम्रपान मे अर्जित उनकी अब तक की कलाकारी को भली-भाँति प्रमाणित कर रहे होते है। तभी एक व्यक्ति मथर गति से हमारी ओर आगे बढकर ठीक सामने खड़ा हो जाता है और अपने हाथ में शेष बचा बीडी का टुकडा नीचे फेंककर जूते से मसल देता है।

"आप तो गुरुजी है, आपको तो बीडी-सिगरेट पीनी नही चाहिए।" आगतुक शर्मा जी की ओर इंगित कर अनायास ही बंदूक की गोली-सी दाग देता है।

शर्मा जी इस अप्रत्याशित प्रहार से तिलमिला जाते है और बात टालने की गरज से उत्तर मे सिर्फ "क्यो नही ?" कहकर अपने को सहेजने मे जुट जाते है।

"क्यों क्या, जब मास्टर ही बीडी-सिगरेट पियेंगे तो फिर चेले क्यो नही !" आगतुक अपने नथुनों को कुरेदता हुआ अतस मे छिपी घृणा को शब्दो के जरिये शर्मा जी पर थोपने को आमादा-सा हो जाता है।

इस बार शर्मा जी का पारा चढ जाता है और उनका धैर्य उनका साथ छोड़ने की जबरदस्त धमकी दे देता है। मैं स्थिति को भाप बीच मे ही बोल पड़ता हूँ—"भाई साहब, बात क्या हुई ? आपका पढने वाला कोई बच्चा बीडी पीने लगा है क्या ? मास्टरो के ऊपर ही इतना आदर्श बघारने की नौबत कैसे आ गई ?"

सुनकर आगंतुक थोडा सहमता है—"हाँ साब, क्या बताएँ, एक बच्चा है दसवी में पढ़ता है। उसे आज उसकी माँ ने छत पर बीडी पीते हुए देख लिया। तभी से...।"

"अच्छा तो यह बात है; लेकिन वह बीड़ी लाया कहाँ से !" मैंने कुछ और कुरेदने की गरज से उनसे पूछ ही लिया।

"अजी लाया कहाँ से, वही कमरे मे टॅगे मेरे कुर्ते की जेब मे से लो उसने।" गले में थूक गटकता हुआ सकुचाई ढीली आवाज से वह व्यक्ति बोला।

"भाई साहब, शर्म तो आनी चाहिए आपको, खुद बीड़ी पीते हो और दोष मढ़ते हो दूसरों के मत्थे। आप यह भूल जाते हो कि बच्चे की आदतों का निर्माण तो घर से ही होता है। हम लोगों के पास तो वह रहता ही कितने समय के लिए है। अधिक समय तक तो आपकी ही सारी करतूतें घर में देखता है, वही सारी बातें उसके मस्तिष्क में घर कर लेती है।"

मेरा इतना ही कहना होता है कि शर्मा जी फिर तो सवार हो जाते हैं उसके ऊपर और बेलगाम जबान से बघारने लगते हैं अपना लोकोक्ति-ज्ञान—"नौ सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली, क्यों! दूसरों पर छींटाकशी करने में ज्यादा मजा आता है क्या? पहले अपने दोष देखो फिर दूसरों के। सिर्फ दूसरों के दोष देखने से कुछ भी सुधार होने का नहीं है, समझे। चले आते है...।"

उपस्थित सभी व्यक्ति, आगंतुक व्यक्ति की ओर व्यंग्य और घृणा भरी नजरों से देखने लगते है। वह एक पिटे मोहरे की तरह तिलमिला कर रह जाता है और गर्दन झुकाये बढ़ जाता है आगे दूर तक पसरी सुनसान सड़क की ओर। बचे-खुचे लोग भी धीरे-धीरे बिखर जाते हैं।

अब सिर्फ मैं और शर्मा जी रह जाते है वहाँ। तभी शर्मा जी धीमी किन्तु गंभीर आवाज में कह उठते है—"सिंह साहब, कहा तो इस बेचारे ने भी ठीक ही था। भाई, हम लोगों को भी सिगरेट वगैरा पीना शोभा तो नहीं देता क्योंकि आखिर हमारा पेशा...आज से मैं भी...।"

मैं और शर्मा जी दोनों वहाँ से उठ खड़े होते है और रोज के घिसे-पिटे रास्ते से ही घर की ओर चल पड़ते हैं। शर्माजी के चेहरे पर ऐसे भाव हैं जैसे दिग्विजय कर लौट रहे हों।

दूसरे दिन सुबह जब शर्मा जी से स्टाफ-रूम में भेंट होती है तो पाता हूँ कि उनके चेहरे पर एक विशिष्ट गरिमा उनकी सहज मोहक-मुस्कान की संगति से द्विगुणित हो रही है। सोचने लगता हूँ—"काश! सभी इसी तरह...।" □

डायज्यो

जगदीश नागर

पात्र

रणजीत—एक पयस्या वाळो आदमी।
कुलदीप—रणजीत रो बेटो।
राधेश्याम—एक गरीब आदमी।
गीता—राधेश्याम री बहू।

पेलो दृश्य

राधेश्याम : (आपरी बहू गीता सूं) सुनीता व्याव जेड़ी व्हेगी...अब आपणो फरज है...कोई छोको लडको देख'र बेगाई अणरा हाथ पीळा करद्यां।

गीता : आपरो केवणो वाजब है......पण मू आ चाहूं क् म्हारी बेटी कोई छोका घराणां री बहू वणे।

राधेश्याम : म्हारी भी अन्दरूणी भावना आई है...पण अण भावना ने पूरी करणों नी करणों भगवान रे हाथ है।

गीता : भगवान वड़ो दयालु है...गरीब आदम्यां रो दुख आछी तरे सूं जाणे है!

राधेश्याम : आज मंगळवार रो दिन है...कोई सुभ काम करणें सारू ओ दिन ठीक मान्यो जा रे। अणं वास्ते सगाई-सबंध जेड़ा सुभ कामं गाम्ँ मू आज ही घर छोड़वो ठीक समझूं।

गीता : हां...पण एक वात रो ध्यान राखज्यो। मूं आपन फेर केऊँ क् म्हारी बेटी रो तो संबंध ऐड़ा घर मायं मो नी व्हेणों चाव्

जिणमें पेट भरण सारू दो वगत रो धान भी नी होव्...अर् ऐड़ा घर माय् भी नी व्हेणों चाव् जणमें रोज—फुलझर्‍यां उड़् । सगाई-ब्याव कोई टाबरां रो खेल थोड़ी है...पया वाळा री तो आ हाळत है क् लड़की वाळा कानीं सूं वणा न् पतरोई माल मळजाव् तो भी वणा री भूख नी बुझ् । वणां र् तो आम् दिन धन री चांपर लाग् ।

राधेश्याम : थांको केवणों बराबर है । इण्या मौका मात् तो सोच-समझ् र् चालणो चाव् । वणां पयम्या वाळा में फंसवो भी ठीक नी... आकी उमर को कमायोड़ो एक दिन माय् ठिकाण् लाग जाव् ।...फेर दुख एक दिन को हुव् तो मन कर सका...आखी उमर की बळण कुण सेन् कर ।

गीता : आपा तो गरीब आदमी हां...अणं सारू आपणी सोड माय् जतरा पग पसार सकां पतरोई ठीक रेसी । आपा दूसरा की होडाहोड गोडा नी फोडां...हां एक बात ओर याद आई । नवलगढ़ माय आपणी बिरादरी रा रणजीत सिंह जी रेव्... वणारा लड़का री खूब बड़ाई सुणी...अणी बरस वो चवदवीं री पढ़ाई पूरी करी है...वणनें भी देखवो ठीक रेसी ।

राधेश्याम : हां...नवलगढ़ मारग मायं आसी...एक दो घड़ी रुक्'र् लड़का ने देखतो आऊँगो ।

[राधेश्याम मोटर रो टेम हुयो जाणं र् घर सूं जाव् अर गीता भी घर का काम-काज मांय् लाग जाव् ।]

[पर्दो बन्द हुव्]

दूसरो दृश्य

[ठौड़—रणजीत रा घर री बैठक रो माळीयो ।
टेम—साम रा पांच बजिया है ।]

राधेश्याम : (किंवाड़ बजावतो थको)...खट्...खट्...खट्...खट् ।

रणजीत : (किंवाड़ खोलतो थको)...कुण है ?

राधेश्याम : रणजीत जी वर्मा रो मुकाम ओई है ?

रणजीत : हां सा ।

[रणजीत राधेश्याम न् आपरी बैठक मांय लेर् जाव्]

रणजीत (बिछावणों बिछा'र्) विराजो सा । (राधेश्याम बिछावणां

मग्‌ बैठ जाव्‌...रणजीत भी बणारे पागती बैठतो थको) आपरो—सुभ नाम ?

राधेश्याम : म्हारो नाम राधेश्याम वर्मा है। मैं भावनगर रो वासी हूँ।

रणजीत : (दोन्यूं हाथ जोड़तो थको) आपरी मूं कांई सेवा कर सकूं।

राधेश्याम : आपर्‌ अठ्‌ आणे री म्हारी कोई खास वजे है।

रणजीत : (अचम्भो करतो थको) खास वजे...!

राधेश्याम : हां सा।

रणजीत : खास वजे भी के, सुणाओ...सुणवास्यूंई पतो लागसी।

राधेश्याम : (चस्मों हावळ करतो थको) आपरा लडका री घणी बडाई सुणी...अणी कारण आपरा लडका न्‌ देखवा मारु भावनगर सू अठातांई आ पूग्यो।

रणजीत : आपरो केवणो तो ठीक है, पण म्हारी आ मनस्या है क्‌ धन्धा-पाणी लागवा पेली वणरो...(केवतो-केवतो रुक जाव्‌)

राधेश्याम : (उदास होवतो थको) फेर मूं हाथ हिलावतो थको पाछो जाऊं। (रणजीत कांई जबाव नीं देव्‌) कांई नी केवो (रणजीत फेर भी कांई नीं केव्‌) क्यूं, किस्या सोच—विचारा मांय पड़ग्या ?

रणजीत : (सोच माय्‌ पड़तो थको) कांई बताऊं ?

राधेश्याम : आग्‌ पाछ्‌ तो आपन्‌ आपरा लड़का रो ब्याव करणो पड़सी... फेर दो दिन पेली करवा मांय्‌ कांई नुकसाण है।

रणजीत : म्हारो भी ओई विचार है...पण दिमाग काम नी देव्‌।

राधेश्याम : (रणजीत री अन्दरुणी भावना जाणवा तांइ बणतो—थको) लमतुमार वढतो थको ओ मेगीवाड़ो कांई केवी ? कांई पयस्या वाळा अर कांई गरीव...वापडा सब दुख्यारा है।

रणजीत : जनता सुखी जादा है...अर्‌ दुखी कम। छोटा सूं छोटा गावड़ा मायं जार देखस्यो...ब्याव कतरा ठाठ-बाठ सूं व्हेरीया है। हजारूं रुप्या रो डायज्यो देरीया है...दो रोज पेली कुलदीप आपरा एक मायीडा रा ब्याव माय्‌ गयो थो... पाछो आवतांई कयो...जीसा, गाँव तो छोटो सो हो...पण बठा रा आदमी एक सूं एक लखपती देखणं मं आया। अणी कारण तो म्हारा सायीडा नं साठ हजार रो डायज्यो मळीयो।

राधेश्याम : आजरा अणं जमाना माय साठ...साठ...पचास...पचास हजार रो डायज्यो करोड़पती दे सके...परदेसा माय्‌ जिणां र्‌ बीस-तीस दुकानां चाल्‌...खूब आंधो कमाई होर्‌...अर्‌ वो

रोज एक रुप्या री चीज रा 5 रुप्या वसूल कर'र् गरीबा रो गळो घोट्...या फेर...(केवतो केवतो रुक जाव्)

रणजीत बोलो नी...चुप क्यूं होग्या ?

राधेश्याम या कोई मोटो अफसर हुव्...थर् पक्को रिस्वत खोर हुव् ।

रणजीत : आज री अण दुनियां मांय् मन् तो कोई अल्ला री गाय भी दीख्...सब रिस्वतां लेव्...बेती गंगा मांय् सब हाथ धोव् । जो घर आई गंगा रो आव आदर नीं कर...म्हारा विचारा माय् वो दुनियां रो सबसूं बडो करमफूटो है । आराम को जीवो सब चाव्...फेर अणं थोड़ी-सी तनख्वा सूं कांई हुव् ।

राधेश्याम डायज्यो देवो.. ब्याव-स्यादी माय बर्बादी करबो...मौत क् नाम लम्बो-चोडो बसेड़ो करबो.. सब सामाजिक कुरीतयां है । अणां र् मात् पावन्दी लागणी चाय्...आ पावन्दी आपां नी लगास्या.. तो देवता तो आर् लगावासू रीया ।

रणजीत पूरी उमर आपा हाथ-पग तोड र् मेनत करां...फेर वी मेनत री मौज भी तो लूटणी चायज् ।

राधेश्याम : अर् एड़ी मौज लूटबा मारु गरीब लोगां रा माचा मन री काई टा कतरी बुराया सुणनी पड् । मूं तो एडी मौज र् पगस म् कोनी ।

रतजीत : (थोड़ो सो थणतो थको) आपरो केवणो वाजब है...पण घणी कजूसी भी काई काम री ।

राधेश्याम घणा कजूस अण दुनियां मायं आपन् वोई मिळ्या जो घणां मेनती है । जो रागा रो एक-एक पयस्यो भेळो करबा सारूं आपरा सरीर न् सरीर नी गण् । जो बळबळाती सूरज री गरमी माय अर् कांपती सरदी माय आपरा सरीर नू घणी तकलीपा देव् . वै कंजूस नी पयस्यां रा सांचा साथी है ..सांचा भगत है ।

रणजीत · फेर तो अण सौदा रो पटणों मुसकळ है ।

राधेश्याम : मन् घणो दुख है क् आप सगाई-ब्याव जेडा कामां न् सौदो समझ्या बैठा हो...पेली सू ई मनें आ खबर होती क् आ तो वाणिया री दूकान है, तो मूं अणं घर कानी देखबो भी पाप समझतो ।

रणजीत : आपरा विचारा मांय् आ वाणिया री दूकान व्हे सक्...मन् तो ओ म्हारो घर दिख् ।

राधेश्याम · माफ करज्यो...वाणिया री दूकान बणी जागां न् नी केवां...

जिण जागा मात्...तेल, लूण.. अर् मिर्चो मळ ...म्हारी राय म् तो वे सब दूकानां बाणिया री दूकानां है... जठ् आप जेडा आदमी मार् जेडा गरीब आदमी सू ऐडी वाता कर्। ब्याव-स्यादी तो एक ऐडो पावन बधण है...जिण सू दो धड़कता मन न्यारा-न्यारा होता थका भी एक व्हे जाव्। (उठतो थको) अब घणो टेम होग्यो...मू तो चाळस्यू अर् आप धीरज सू म्हारी वात पर विचार करोला तो जरूर समझ म् बेठसी। (जेब सूं एक कारट निकाळर देवतो थको) अर् ओ लो म्हारा घर को पतो। आप चावो तो एक हप्ता पच् इण पता माल् आपरा विचारां री मन् जाणकारी दे सको...पण ध्यान राखबा की वात है... घणी देर नी व्हेणी चाव्।

रणजीत . (थोड़ो सो बणतो थको) फेर भी...ब्याव-स्यादी जेडा कामा माय घणी जल्दी नी करणी चाव्।

[राधेश्याम चल्यो जाव्। वणा र् जाणे रे बाद रणजीत भी बैठक मांय् सू उठ' र् आपरा मुकाम रा दूजा कमरा माय् चल्यो जाव्।

[पर्दो बन्द हुव्]

तीसरो दृश्य

[जागां—राधेश्याम रा घर री कमरो। राधेश्याम माचा मात् बैठो है...अर अणा री बहू गीता फरस मात् बैठी है। दोन्यू मांय् सुनीता रा संबंध री वाता व्हेरी है।

राधेश्याम : नवलगढ सू आया आज मन् पांच दिन व्हेग्या। हालताई वणा री कोई कागद नी आवियो। सात दिन री के' र् आयो हो। दो दिन और बाट देखां।

गीता : नवलगढ वाळा बड़ा आदमी है। वणां रा कागज री कांई ठिकाणो...आ भी जाव् अर् ना भी आव्। आज काल करता-करता यूई छोरी की उमर ढ़ळ जाई।

राधेश्याम : जितरी चिन्ता थे करो हो .अण सूं भी ज्यादा मन् है।

गीता : लडका रा रूप रो पतो लागी तो ?

राधेश्याम : लड़का रो रूप आपणी कानी व्हे तो भी वण विचारा री कांई दाळ गळ ? आखिर तो वणरा मां-बाप जो करसी वो होसी।

गीता : पण लड़का सू पूछवो भी तो जरूरी है।

राधेश्याम : जरूरी तो है...पण पयस्या वाळा रा घरां म् पयस्या क् आग् लड़का-लड़की री राय फीकी है।

[घर को बारलो किवाड़ खटखटाबा को आवाज आरी है]

राधेश्याम : (आवाज सुणर्) कुण है सा...?—(कुलदीप फेर किवाड़ खटखटातो थको)...कुण है सा? (राधेश्याम किवाड़ खोल'र् देखतो थको—कुलदीप न देख'र्)...आओ सा...माय् पधारो—(आपरा घर री बैठक मांय् ले जातो थको) आपरा कागद री घणी बाट देखी...चालो ओ भी ठीक—हुयो क्...आप खुद पधार्‌या। (कुलदीप चुपचाप बैठो है) आप रै घरे है तो सब ठीक-ठाक।

कुलदीप सब ठीक है सा।

राधेश्याम : म्हा ळोगा ताई रणजीत जी कोई संदेसो—भिजवायो है?

कुलदीप (जेब सूं कागज निकाळर देतो थको) ओ कागद—आपरी सेवा माय् भेज्यो है।

[राधेश्याम कागद खोलर् पढ़तो थको]

नवळगढ

जेठवदी तीज संवत् 2030

सिध श्री जोग लिखी श्रीनगर सू सुभसुथानेक सर्वोपमान लायक राधेश्याम जी न् रणजीत वर्मा रा राम राम बंचावसी। अठ् म्हे भगवान की किरपा सू राजी-खुसी हां। आपरी राजी खुसी ताई ईश्वर सू नेक चावा हां। अपरच समाचार एक जाणसी क् म्हारो लड़को कुलदीप कागद लेर् आपरी सेवा मांय् हाजिर व्हेरीयो है। कागद लिखवा म् देरी हुई—जिणं सारू माफी दिरावसी। आपरो संबंध मनै मंजूर है। इणं संबंध सारूं मन् सोनो...चांदी अर् डायज्यो कांई भी नी चायज्। आपरी खुसी माय् म्हारी खुशी है। म्हारी तो अन्दरुणी भावना आई है क् लड़की पढ़ी-लिखी...सुसील अर् घर का काम काज माय् ठीक व्हेणी चाव्। डायज्या री आ रीत एक सामाजिक बुराई है। इण वास्ते आप रे साथ मैं भी आ सोचन ग्याई हूँ क् अण बुराई न् समाज रै—मायऊं जड़ मूळ् सू खतम करणी है। डायज्या रो—सामाजिक बंधणं बिल्कुल बेकार है...अणं

बुराई न्‌ हटावा सारू ..लाखा...करोड़ा को घाटो भी उठाणों पड़्‌यो तो उठावंगा । वण दिन आपन्‌ म्‌ जो वाता कई...वण सारूं माफी अरज करू हूँ। वणं दिन म्‌ अपणें आपम्‌ राजा मानतो हो...अर आज यळी रो मामूली आदमी । कुण जाण कणीं बगत ठोकर लाग्‌ अर्‌ आपणों जीव निकळ जाव्‌। अर्‌ आ लाखां की धन-सम्पत्ति अठई रे जाव्‌। री ब्याव की वात – म्हारो विचार, ओ है क्‌ कुलदीप धन्धा-पाणी लाग्या पच्‌ घर-बार का पचड़ा मांय्‌ पड़्‌ तो ठीक रेसी। और कांई लिखू। कागद वेगो दिरायेजो।

आपरो
रणजीत वर्मा

राधेश्याम : (कागज पढ़ र्‌ जेब मांय्‌ मेलतो थको) आ खुसी की वात है क्‌ रणजीत जी न्‌ यो रिस्तो मजूर है। (थोड़ा ठेर'र विचार करतो थको) बेटा जमानो केडो खराब आयो है...। एक जमाना वो हो जद्‌ वाप सू पेली बेटो नीं मरतो। झूठ बोलणों सबसू बडो पाप मान्यो जातो। चोरी को नाम निसाण भी नी हो। सब सादो जीवन जीता। कोई मिलावट रो नाम भी नी जाणता। रिस्वत वणं जमाना माय न तो कोई लेता...अर्‌ न कणी आदमी री रिस्वत देवा री हिम्मत पडती।—दूसरी कानी आज चोरी, अन्यायी, झूठ, रिस्वत, मारकाट...रो जोर है।

कुलदीप : वात तो ठीक है सा।

राधेश्याम : इण सबसू मूगी है...आजकाल री पढाई। ऊंची पढ़ाई विचारा गरीब पयस्या की कमी क्‌ कारण नी कर सक्‌...अर्‌ आ पढ़ाई भी जिन्दगी माय्‌ कांई काम नी आव्‌...क्यूं क्‌ आ कोरी किताबी है। स्कूल...कालिज छोड़वा क्‌ बाद बाबूगिरी को लेणं क्‌ अलावा आजकाल का छोरा न्‌ कांई धन्धों नी दिग्‌। अफसर तो हजारा मु—इक्का-दुक्का वण्‌...बाकी सब बाबू बणता थका नजर आव्‌। अण सारू भी वणां न्‌ दो जोरदार हथकन्डा अपणावणां पड़...रिस्वत अर्‌ जाण पिछाण। ऐ दो हथकन्डाई अणं जमाना मायं नौकरी रा खास साधन है।

कुलदीप : आपरी वात वाजवी है सा।

राधेश्याम : पेळी रा साधु भी बड़ाई क्‌ लायक हा। वण साधुआं माय्‌ अनरो तपोवळ होग्‌ मर्योडा आदमी न्‌ जीवनों करणों वणा

रा वायां—हाथ रो गेल हो। ये धरमचारी भी पक्का हा। जो वात केता...वोई करता। कणी र् साथ धोको करणों तो वणां ने आवतो हो नी थो। वणां न्ं देखताई एड़ां मालूम व्हेतो क् जाण् अे तो धरमराज रा अवतार ही दीख्।...अर् आजकाल का अे साधु...सांच सूं कतराई कोस अळगा रेव्। जद् आई वात ही तो क्यूं साधु वण्यां। जटा वढ़ा'र...भसम रमा, र् क्यूं जनता न्ं धोको दियो।

कुलदीप हां...सा।

राधेश्याम (उठ'र) मुं अवार आयो...आप योड़ा—वैठज्यो। (जावतो थको)

कुलदीप : म् आपन् अरज करूं सा...मन्ं अणी गाडी सूं पाछो पूगणो है...म्हारी गाडी रो टेम व्हेग्यो।

राधेश्याम . आपन्ं आज ही पुंचवो जरूरी है तो...रोकवा सूं भी कांई फायदो। (दोन्यूं उठ'र् जाव्)

[पर्दो वन्द हुव्] □

कौमी एकता की तलाश

भगवतीलाल व्यास

हमारे मुल्क हिन्दुस्तान में जाति, मजहब, वेशभूषा, भाषा, भोजन सब तरह की अनेकताएँ मिल जाती हैं। इतनी अनेकताओं में एकता ढूँढना मुश्किल काम है। और फिर एकताओं में भी जो श्रेष्ठ किस्म की एकता होती है उसे कौमी एकता कहते हैं, यह ज्ञान हमें पिछले दो-एक सालों में ही हुआ है। अपने इस नवीनतम ज्ञान के आधार पर हमने निश्चय किया कि हम कौमी एकता को ढूँढ़कर ही दम लेंगे। एक जगह हमने देखा कई लोग जमा हो रहे थे। कुछ लोगों के हाथ में झंडे थे, कुछ के हाथ में डंडे। डंडों के एक सिरे पर गत्ते लगे हुए थे। हमने सोचा कौमी एकता जरूर इस भीड़ में मिल जायेगी। आखिर एक लाल परदे पर हमारी नजर पड़ी। वहाँ एक चीज बैठी थी। हमने उस चीज से पूछा—'क्यों भाई, क्या आप ही कौमी एकता हैं?' वह चीज हथौड़ामार स्वर में बोली—'नहीं, हम मजदूर एकता हैं।' हम चुपचाप आगे बढ़ गये।

आगे एक बड़ा मदरसा था। शायद कॉलेज रहा हो। आज यहाँ चुनाव था। सड़क की ओर रुख किये जो दीवार इस भवन की थी वहाँ माइक्रोस्कोप की सहायता से ही वह जगह ढूंढ़ी जा सकती थी जहाँ इश्तहार न चिपकाये गये हों या कुछ लिखा न हो। बाहर कुछ नेता टाइप छात्र या छात्र टाइप नेता हाथों में लाल, पीले, हरे कागज लिये मुफ्त बाँट रहे थे। हर कोई हाथ बढ़ाकर कागज ले सकता था। मुफ्त मिलने वाली चीज से कैसा परहेज! हमने भी हाथ बढ़ाया। एक गुलाबी रंग का परचा हमारी पकड़ में आ गया। परचे में सबसे ऊपर बड़े अक्षरों में लिखा था 'छात्र एकता जिंदाबाद'। हमारी बाँछें खिल गईं। हमें लगा कि इस छात्र एकता से जरूर पता लग जायेगा कि कौमी एकता कहाँ रहती है? हमने एक संजीदा से दिखने वाले छात्र नेता के पास जाकर पूछा—'क्यों भाई, तुम हमें कौमी एकता का पता दे सकते हो? हमें उससे आज ही मिलना है।' वह संजीदा दिखने वाला छात्र एकदम शांति की मुद्रा में आ गया और अपना

एक हाथ हवा में लहराते हुए बोला—'आप किस कोमा-विराम की बात कर रहे हैं ? यह छात्र एकता है साहब। छात्र एकता—एक बहता हुआ दरिया। कभी न रुकने वाला तूफान। समझे आप? जो हममें टकरायेगा...।' आगे की बात न सुनना ही बेहतर समझकर हम खिसक लिये। कौमी एकता की कसम, छात्र एकता के कहकहे तीरों की मानिंद हमारी पीठ पर काफी दूर तक चुभते रहे। इनसे बचने के लिए हम मुख्य सड़क छोड़कर एक तंग गली में घुस गये।

यह गली एक बड़े मैदान तक जाती थी। हम चलते गये। मैदान में सभा हो रही थी। यह सभा आम सभा थी। आम सभा को पहचानने में हम गलती नहीं कर सकते। आम सभा की पहली पहचान यह है कि उसमें कुछ खास आदमी भाषण देते हैं। इस आम सभा में भी जो भाषण दे रहे थे वे खास थे इसलिए हमने आसानी से पहचान लिया कि यह आम सभा ही थी। हमने सोचा हम कौमी एकता जैसी महत्वपूर्ण चीज को ढूंढने निकले हैं और बड़ी जल्दबाजी से काम ले रहे हैं। ऐसे तो सात जन्म में भी कौमी एकता मिलने वाली नहीं है। अतः हम इत्मिनान से एक बुजुर्ग सज्जन की बगल में बैठ गये। भाषणकर्ता महाशय का भाषण खत्म हुआ और लोगों ने तालियाँ बजाईं। दोनों हाथों का एक साथ समान उपयोग करने के मौके जिंदगी में बहुत कम आते हैं और जब-जब आते हैं, अच्छे लगते हैं। महज इसीलिए हम भी ताली बजाने वालों में शरीक हो गये। ताली-कर्म से निवृत्त होकर हमने उन बुजुर्गवार से पूछा—'आदरणीय, क्या मैं आपसे कौमी एकता के बारे में कुछ पूछ सकता हूँ ?' हमारे स्वर में इतनी नरमी थी कि और कोई होता तो जेब से निकाल कर कौमी एकता को हमारी हथेली पर ही रख देता मगर उन बुजुर्ग सज्जन की भौंहें हमारा सवाल सुनते ही तन गईं। रोब के साथ बोले—'अजीब सिरफिरे हो तुम। कौमी एकता का पता हमसे पूछते हो ? कौम के लीडरों के पास जाओ। हम तो कौम के खिदमतगार हैं यानी करमचारी। समझे ? यह करमचारी एकता की मीटिंग है। करमचारियों की अपनी ही मुश्किलात इतनी है कि ..खैर ! जाने दो। लगता है तुम करमचारी नहीं हो।' हमें लगा कि अब अगर एक मिनट भी यहाँ रुके तो ये महाशय हमें धक्के देकर निकलवा देंगे।

कौमी एकता की तलाश में हमें एक के बाद एक विभिन्न अनुभव हो रहे थे और लगातार असफलता मिल रही थी। मगर यह भी सच था कि कौमी एकता का पता लगाना जरूरी था। कौमी महत्व की चीज को आखिर यूं ही छोड़ा भी तो नहीं जा सकता। सुबह जब घर से चले थे तो बाकायदा घोषणा की थी कि आज हम कौमी एकता लेकर ही लौटेंगे। अब अगर खाली हाथ वापस लौट गये तो बीवी-बच्चे हँसेंगे। हमने एक बार थके मन से फिर संकल्प किया जो भी हो, कौमी एकता का पता जरूर लगाना पड़ेगा। नये सिरे से कार्य-योजना पर विचार

करने के लिए हम एक पार्क में जा पहुँचे। थोड़ा सुस्ताये, ताजगी हासिल की और फिर अभियान पर चल पड़े। सांझ हो चली थी।

चलते-चलते हम बड़े भवन के सामने से गुजरे। यहां कई कारें, स्कूटर, साइकिलें, ऑटोरिक्शा खड़े थे। बड़ा शामियाना तना था, टेबलें लगी थीं। वेयरे खाने-पीने का सामान ला रहे थे। बला की फुर्ती थी माहौल में। हमने सोचा किसी बड़े आदमी की शादी का प्रीतिभोज होगा। हम आगे बढ़ने ही वाले थे कि हमारी निगाह मुख्य द्वार पर लगे 'बेनर' पर पड़ गई। लिखा था—'कौमी-एकता सप्ताह सहभोज।' हम इस बेनर को पढ़कर कितने आनंदित हुए होंगे इसका अनुमान आप लगा सकते हैं। सहभोज का निमंत्रण पत्र तो हमारे पास नहीं था पर हम धड़धड़ाते हुए खाने की टेबल के पास पहुँच गए। न किसी ने रोका न टोका। हमने मन-ही-मन उन चिंतकों को प्रणाम किया जिन्होंने अपनी चिंतन की अक्षय पूँजी को मथकर कौमी एकता जैसा रत्न निकाला। हमने इससे भी अधिक श्रद्धा के साथ उन आयोजकों को शीश नवाया जिनकी अचूक सूझ-बूझ के तहत यह सहभोज आयोजित था। निश्चित समय पर मुख्य अतिथि की कार शामियाने के पास आकर रुकी। लोगों ने उन्हें फूलमालाओं से लाद दिया। फिर सब लोग टेबलों के पास जमा हो गये। मुख्य अतिथि जी ने एक दही-बड़ा अपनी प्लेट में रखा और देर तक उसे कुतरते रहे। अधिकांश लोगों ने यही किया। जिसने पहली बार अपनी प्लेट में जो भी चीज रख ली उसी को देर तक खाता रहा या खाने का अभिनय करता रहा। फिर लोग जाने लगे। धीरे-धीरे काफी कम लोग रह गये। हमने देखा खाद्य पदार्थों की प्लेटें लगभग ज्यों-की-त्यों रखी हैं। नाम मात्र को ही उनमें से ग्रहण किया गया है। हमने सोचा कौमी एकता शायद भूखे रहने से ही आती हो इसलिए हमने भी चुपचाप अपनी प्लेट एक तरफ रख दी और बाहर निकल आये।

बाहर दो सम्भ्रांत अतिथि वार्तालाप करते जा रहे थे।

'कैसा रहा कौमी एकता का डिनर?'

'डिनर क्या खाक रहा यार। हाजिरी देनी थी जिससे अगले चुनाव की सभा में फख्र के साथ कह तो सकें कि हमें हरिजनों के साथ खाना खाने में कोई झिझक नहीं। और इस तरह...।'

आगे की बात बिना सुने भी समझी जा सकती थी। हमें समझ में आ गया था कि आखिर कौमी एकता है क्या चीज। हम नहीं कहते कि हमारी तलाश पूरी हो चुकी मगर फिलहाल कौम के हालात देखकर हमने कौमी एकता की तलाश कुछ दिनों के लिए मुल्तवी कर दी है। □

सम्पर्क सूत्र

सवाई सिंह शेखावत, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, उदयपुर वाटी (झुंझुनू)
रूपनारायण काबरा, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, जोबनेर (जयपुर)
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी, व्याख्याता, रा० बांगड उ० मा० वि०, पाली (राज०)
श्यामलाल कौशिक, शिक्षा मंत्रालय, पो० बॉ०-64, काऊची (नाईजीरिया)
रामनिवास सोनी, कालीजी का चौक, लाडनूं (नागौर)
मोहन सिंह, प्रधानाध्यापक, रा० मा० वि०, तलवाडा झील (श्री गंगानगर)
चुन्नीलाल भट्ट, अध्यापक, रा० मा० वि०, जेठाना (डूंगरपुर)
चन्द्रदान चारण, प्रधानाचार्य, भारतीय विद्या मंदिर रात्रि उ० मा० वि०,
बीकानेर (राज०)
बसंतीलाल सुराना, महिला आश्रम, भीलवाडा (राज०)
प्रेम 'लकरधज', स० अ०, रा० मा० वि०, सिणधरी (बाड़मेर)
सोमनाथ शर्मा, स० अ०, रा० पटेल उ० मा० वि०, ब्यावर (अजमेर)
गौरीशंकर आर्य, सेवा निवृत अध्यापक, कवि कुटीर, चौमहला (झालावाड़)
श्रीकृष्ण विश्नोई, व्याख्याता, श्री जैन उ० मा० वि०, बीकानेर
आनन्द कुरेशी, सेन्ट पैट्रिक स्कूल, डूंगरपुर (राज०)
कुंदन सिंह सजल, उदय निवास, रामपुरा (पाटन) (जि० सीकर)
जगदीश नागर, अध्यापक, रा० मा० वि०, दुजाना (पाली)
भोगजी पाटीदार, स० अ०, रा० मा० वि०, पालोदा (बांसवाडा)
अर्जुन कावड़िया, द्वारा—श्री धर्मेशजी मादरेचा, पोस्ट ऑफिस के पास,
राजसमन्द (उदयपुर)
बद्रीलाल शर्मा, स० अ०, उ० प्रा० वि०, भामोलाव, वाया अरांई (अजमेर)
कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली (उदयपुर)
निशांत, द्वारा—श्री डी० राज पेन्टर, पीलीबंगा, (श्री गंगानगर)
अब्दुल मलिक खान, प्रेस रोड, सिंधी कॉलोनी, भवानी मण्डी (झालावाड़)
रामदत्त शर्मा, सी-91, रणजीतनगर, भरतपुर (राज०)
सत्य भार्गव, व्याख्याता, श्री राम उ० मा० वि०, कोटा (राज०)

शिवकुमार शर्मा, 52, गायत्री मार्ग, उदयपुर (राज०)
सत्यपाल सिंह, व्याख्याता, रा० सेठ कि० ला० कां० उ० मा० वि०, नागौर
भगवती प्रसाद गौतम, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, भवानी मंडी (राज०)
अर्जुन 'अरविंद', कालीपल्टन रोड, टोंक (राज०)
भगवतीलाल व्यास, प्राध्यापक, लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, डबोक (उदयपुर)

शिक्षक दिवस प्रकाशन

सम्पूर्ण सूची

1967

1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा) 4. सालिक ए गोहर (उर्दू), 5. बार की दावत (उर्दू)

1968 :

6. कैसे भूलूं (संस्मरण), 7. सन्निवेश (विविधा), 8. दामाने बागवां (उर्दू)

1969 :

9. प्रस्तुति-2 (कविता), 10. बिम्ब-बिम्ब चाँदनी (गीत), 11. प्रस्थिति-2 (कहानी), 12. अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14. गांधी-दर्शन और शिक्षा (शिक्षा दर्शन), 15. सन्निवेश—2 (विविधा)

1970 :

16. सूखा गाँव (गीत), 17. खिड़की (कहानी), 18. कैसे भूलूं-दो (संस्मरण), 19. सन्निवेश—3 (विविधा)

1971 :

20. प्रस्तुति-3 (कविता), 21. प्रस्थिति-3 (कहानी), 22. सन्निवेश-4 (विविधा)

1972 :

23. प्रस्तुति-4 (कविता), 24. प्रस्थिति-4 (कहानी), 25. सन्निवेश-5 (विविधा), 26. माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 .

27 धूप के पखेरू (कविता), 28. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी
29. रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30. अस्तित्व की खोज (विविधा)
31. जूना बेली : नुवां बेली (राजस्थानी विविधा)

1974 :

32. रोशनी बाँट दो (कविता) सं० रामदेव आचार्य, 33. अपने आस पास (कहानी) स० मणि मधुकर, 34. रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकांकी) स० डॉ० राजानन्द, 35. आँधी अर आस्था व भगवान महावीर, (दो राजस्थानी उपन्यास) स० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36. बारखड़ी (राजस्थानी विविधा) स० वेद व्यास

1975 .

37. अपने से बाहर अपने में (कविता) स० मंगल सक्सेना, 38. एक और अन्तरिक्ष (कहानी) सं० डॉ० नवलकिशोर, 39. संभाळ (राज० विविधा) सं० विजयदान देथा, 40. स्वर्ग भ्रष्ट (उपन्यास), ले० भगवती प्रसाद व्यास, स० डॉ० रामदरश मिश्र, 41. विविधा स० डॉ० राजेन्द्र शर्मा

1976

42. इस बार (कविता) स० नन्द चतुर्वेदी, 43. संकल्प स्वरों के (कविता) सं० हरीश भादानी, 44. बरगद की छाया (कहानी) सं० डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 45. चेहरों के बीच (कहानी व नाटक) स० योगेन्द्र किसलय, 46. माध्यम (विविधा) स० विश्वनाथ सचदेव

1977 :

47. सृजन के आयाम (निबन्ध) स० डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, 48. क्यों (कहानी व लघु उपन्यास) स० श्रवणकुमार, 49. चेते रा चितराम (राजस्थानी विविधा) स० डॉ० नारायणसिंह भाटी, 50. समय के संदर्भ (कविता) स० जुगमन्दिर तायल, 51. रङ्ग-वितान (नाटक) सं० सुधा राजहंस

1978 :

52. अँधेरे के नाम सधि-पत्र नहीं (कहानी संकलन) स० हिमांशु जोशी
53. सखाण (राजस्थानी विविधा) सं० रावत सारस्वत, 54. रचेगा संगीत

(कविता सकलन) स० नन्दकिशोर आचार्य, 55. दो गाँव (उपन्यास) ले० मुकारव खान आजाद, स० डॉ० आदर्श सक्सेना, 56. अभिव्यक्ति की तलाश (निवन्ध) स० डॉ० रामगोपाल गोयल।

1979 .

57. एक कदम आगे (कहानी संकलन) सं० ममता कालिया, 58. लगभग जीवन (कविता संकलन) स० लीलाधर जगूड़ी, 59. जीवन यात्रा का कोलाज/सं० ? (हिन्दी विविधा) स० डॉ० जगदीश जोशी, 60. कोरणी कलम री (राजस्थानी विविधा) स० अन्नाराम सुदामा, 61. यह किताब बच्चों की (वाल साहित्य) सं० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे।

1980 :

62. पानी की लकीर (कविता संकलन) सं० अमृता प्रीतम, 63. प्रयास (कहानी सकलन) स० शिवानी, 64. मंजूषा (हिन्दी विविधा) स० राकेश जैन, 65. अंतस रा आखर (राजस्थानी विविधा) स० नृसिंह राजपुरोहित, 66. खिलते रहे गुलाब (वाल साहित्य) स० जयप्रकाश भारती

1981 :

67. अंधेरों का हिसाब (कविता संकलन) सं० सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, 68. अपने से परे (कहानी सकलन) सं० मन्नू भण्डारी, 69. एक दुनिया बच्चो की (बाल साहित्य) स० पुष्पा भारती, 70. सिरजण (राजस्थानी विविधा) सं० तेजसिंघ जोधा, 71. वन्देमातरम् (हिन्दी विविधा) सं० डॉ० विवेकी राम।

1982 :

72. अपना अपना आकाश (कविता संकलन) सं० जगदीश चतुर्वेदी, 73. धर्मक्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे (कहानी सकलन) सं० मृणाल पाण्डे, 74. फूलों के ये रंग (बाल साहित्य) सं० लक्ष्मी चन्द्र गुप्त, 75. कूंपळ (राजस्थानी विविधा) स० कल्याण सिंघ शेखावत, 76. कौमी एकता की तलाश और अन्य रचनाएँ (हिन्दी विविधा) सं० शिवरतन थानवी।

—•— •